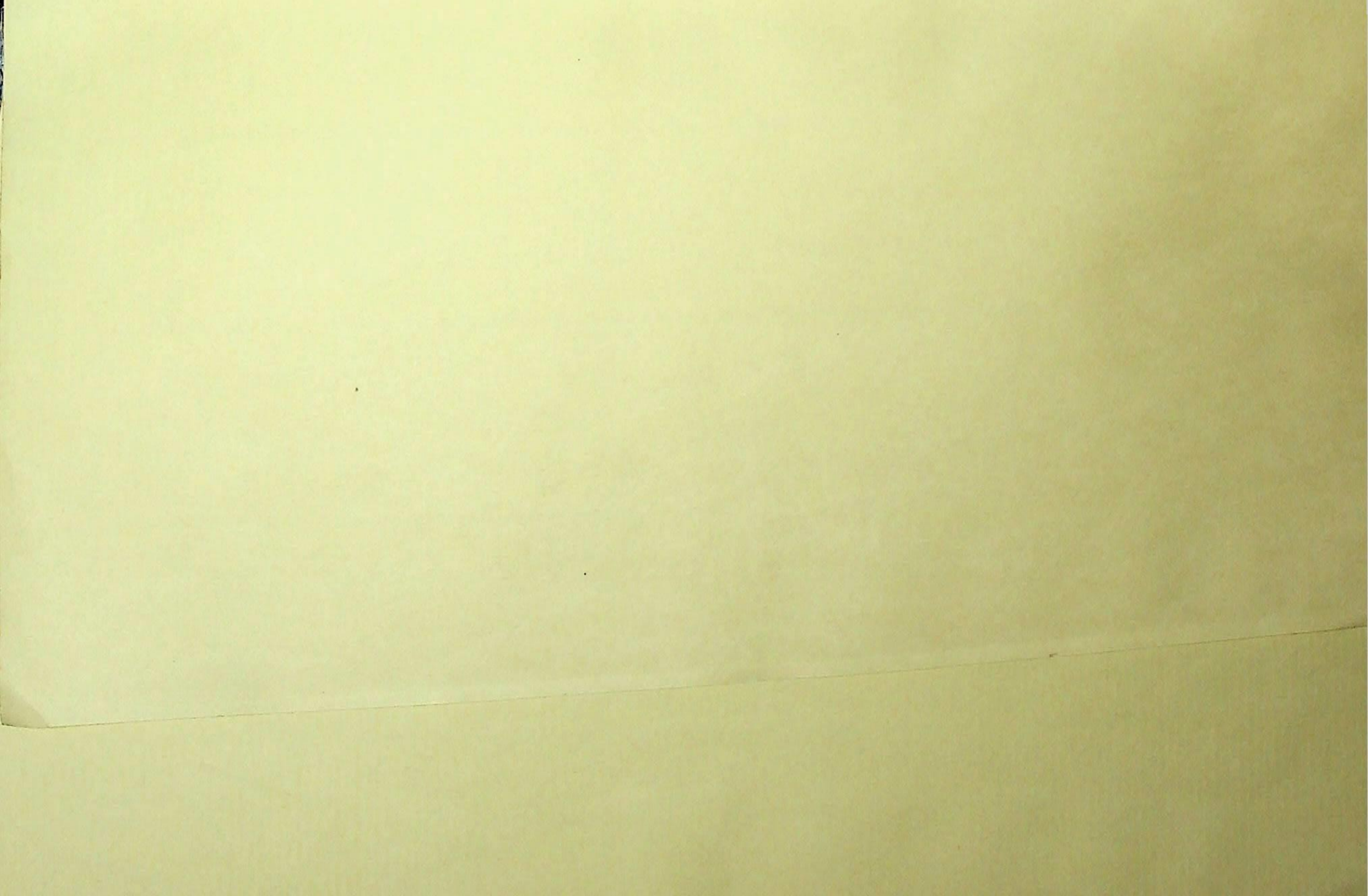


पद्म पुराणान्तर्गत

माघ मास माहात्म्यम्

भाषा टीका सहितम्

भारतीय संस्कृत भवन
जालन्धर शहर



एकादशी माहात्म्यम्

भाषा टीका सहितम्

(एकादशी व्रत कथा)

टीकाकार एवं सम्पादक :

कृष्णानन्द शास्त्री

भारतीय संस्कृत भवन

माई हीरां गेट, जालन्धर शहर–8

प्रकाशक–

भारतीय संस्कृत भवन

माई हीरां गेट, जालन्धर–144008

दूरभाष : 0181–2212532

प्रथम संस्करण

बसंत पंचमी २०६०

मूल्य : साठ रुपए मात्र

कम्पोजिंग :

सी.के. ग्राफिक्स

मिट्ठा बाजार, जालन्धर शहर

दूरभाष : 2291285

मुद्रक :

सरताज प्रिंटिंग प्रैस

जालन्धर शहर

विषय सूची

एकादशी व्रत का निर्णय

1. सूर्योदय के समय दशमी तिथि दो घड़ी भी हो, उसके बाद होने वाली एकादशी तिथि दशमी विद्धा कहलाती है, ऐसी एकादशी तिथि का व्रत नहीं करना चाहिये।
2. यदि एकादशी तिथि चौबीस घण्टे रहती है, वह एकादशी वृद्धा कहलाती है, ऐसी तिथि भी व्रत के उपयुक्त नहीं है।
3. एकादशी यदि द्वादशी युक्त है, वह शुभ है, उसका फल बहुत है।
4. एकादशी तिथि गत जाए या वृद्धा हो जाये या विद्धा हो जाये, तब भी द्वादशी का व्रत ही करना चाहिये।
5. एकादशी तिथि में अन्न नहीं खाना चाहिये। निराहार रहे बहुत अच्छा है, अन्यथा दूध लिया जा सकता है।
6. दशमी के दिन से ही इस कार्य में लगना चाहिये। उस दिन कांस्य पात्र में भोजन नहीं करना चाहिये। मांस, मसूर, चने, दूसरे का अन्न आदि नहीं खाने चाहिये। इस दिन झूठ नहीं बोलना चाहिये। रजस्वला स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिये।
7. ब्रह्मचर्य धारण करते हुए पृथ्वी पर सोना चाहिये।

8. पूर्ण विधि से कृष्ण (विष्णु) का पूजन करना चाहिये। दूध, दही, मखन, शहद, शक्कर (पञ्चगव्य) से स्नान करवाना चाहिये। अनेक प्रकार के पुष्पों से पूजन। गन्ध-अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाएं। पूजन के बाद आरती करें।
9. दिन एवं रात्रि में पुराण कथा को सुनें या स्वयं पढ़ें।
10. द्वादशाक्षर मन्त्र का यथाशक्ति जप करना चाहिये। "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"।
11. शैव, वैष्णव दोनों ही एकादशी का व्रत कर सकते हैं।
12. अशौच की स्थिति में भी एकादशी का व्रत रखा जा सकता है।
13. यदि व्रत करने वाला अशक्त है, दुर्बल है तो फलाहार कर सकता है।
14. यदि रात्रि जागरण करने में असमर्थ है तो मन्त्र जाप अवश्य करें।
15. परमात्मा की भक्ति निष्काम भाव से करनी चाहिये। नियम पालन शक्ति के अनुसार कर सकता है।
16. उपवास करना भी अत्युत्तम है।

प्रभु की आरती करने की विधि

भगवान् विष्णु की, उनके पूर्ण अवतारों श्री राम चन्द्र जी एवं श्री कृष्ण चन्द्र जी की आरती प्रतिदिन अवश्य करनी चाहिए। प्रभु की आरती उतारना बहुत की शुभ है, आरती करना एवं आरती के समय उपस्थित रहना, देखना भी बहुत ही शुभ माना गया है। भक्ति का यह भी महत्त्वपूर्ण अंग है। श्रद्धा एवं विश्वास को बढ़ाती है।

1. सर्वप्रथम जिस देवता की आरती का जी रही है, उस देवता के मन्त्र द्वारा तीन बार पुष्पांजलि अर्पण करनी चाहिये। आरती के समय शंख, घड़ियाल, नगारे, ढोल आदि महावाद्यों को बजाना चाहिए।
2. आरती की अनेक वत्तियां जगनी चाहिएं, जो विषम संख्या में हों, 3, 5, 7, 11 आदि। साधारणतया पांच वत्तियों की आरती की जाती है। इसे पंच प्रदीप भी कहते हैं।
3. प्रथम दीपमाला के द्वारा, दूसरे जल युक्त शंख से, तीसरे धुले हुए वस्त्र से, चौथे आम या पीपल के पत्तों से या चामर से या मोर पंखों से।
4. आरती उतारते समय सर्वप्रथम भगवान् की प्रतिमा के चरणों में उसे चार बार घुमाएं, दो बार नाभि देश में, एक बार मुख मण्डल पर और सात बार समस्त अंगों में।
5. वास्तव में आरती इष्ट देवता की प्रसन्नता के लिए होती है। इसमें इष्ट देव को दीपक दिखाने के साथ ही उनका स्तवन या गुणगान किया जाता है।
6. आरती के दो भाव हैं, जो क्रमशः नीराजन और आरती शब्द से व्यक्त हुए हैं। नीराजन का अर्थ है– विशेष रूप से, निःशेष रूप से प्रकाशित करना। दीप–वत्तियां जलाकर विग्रह के चारों ओर घुमाना का अभिप्राय यही है कि पूरा का पूरा विग्रह एडी से चोटी तक प्रकाशित हो उठे। अंग प्रत्यंग स्पष्ट रूप से उद्भासित हो जायें। जिससे दर्शक या उपासक भलीभान्ति देवता की रूप छटा को निहार सके। हृदयंगम कर सके।

दूसरा आरती शब्द (संस्कृत में आर्त्तिका) विशेषतः माधुर्य उपासना से सम्बन्धित है। "आरती वारना" का अर्थ है आर्त्ति निवारण, अनिष्ट से अपने प्रियतम प्रभु को वचाना। इस रूप में वह एक तान्त्रिक क्रिया है। जिससे प्रज्वालित दीपक अपने इष्ट देव के चारों ओर घुमाकर उनकी सारी विघ्न बाधा टाली जाती है। आरती लेने से भी यही तात्पर्य है–उनकी "आर्त्ति" (कष्ट) को अपने ऊपर लेना। बलिहारी जाना, बारी जाना, न्योछावर होना, आदि सभी प्रयोग इसी भाव के द्योतक हैं। इसी रूप में छोटे बच्चों की माताएं या बहनें लोक में भी आरती उतारती है। यही आरती मूल रूप में कुछ मन्त्रोच्चारण के साथ केवल कष्ट–निवारण के भाव से उतारी जाती रहीं होंगी।

"पञ्च नीराजनंकुर्यात् प्रथमं दीपमालया। द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा। चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम्। पंचमं प्रणिपातेन साष्टांगेन यथाविधि॥

आदौ चतुः पदातले च विष्णोः, द्वौ नाभि देशे मुखविम्वे एकम्। सर्वेषु चांगेषु च सप्तवारान् आरात्रिकं भक्त जनस्तु कुर्याद्॥

एकादशी के दिन पूजन विधि

एकादशी के दिन भगवान् विष्णु का शालिग्राम शिला पर या मूर्ति पर पूजन करना चाहिये। तभी व्रत का फल प्राप्त होगा।

सब से पहले शंख, चक्र धारण करने वाले, गले में वैजयन्ती माला धारण करने वाले, शेषशायी भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिये।

ध्यान– **शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं, विश्वाधारं गगन सदृशं मेघ वर्णं शुभांगम्।**
लक्ष्मीकान्तं कमल नयनं योगिभि र्ध्यानगम्यं, वन्दे विष्णुं भव भयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

हाथ में पुष्प लेकर आवाहन करें–

आवाहन–आगच्छ देव देवेश तेजो राशे जगत्पते। क्रियामाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम॥

आवाहन के पश्चात् पुष्प लेकर आसन दें–

आसन–नाना रत्न समायुक्तं कार्तस्वर, विभूषितम्। आसनं देव देवेश प्रीत्यर्थं प्रति गृह्यताम्॥

आसन पर शालिग्राम शिला को रख कर पाद्य रूप में जल दे–

पाद्य–गंगादि सर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम्। तोयमेतत्सुख स्पर्शं देवेश प्रति गृह्यताम्॥

पाद्य देने के पश्चात् अर्घ पात्र में गन्ध अक्षत–पुष्प एवं जल डालकर अर्घ दें–

अर्घ्य–नमस्ते देव देवेश नमस्ते धरणीधर। नमस्ते कमलाकान्त गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते॥

अर्घ्य देने के पश्चात् आचमन के लिये शुद्ध जल दें–

आचमन–कर्पूरं वासितं तोयं मन्दाकिन्या समाहृतम्। आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः॥

आचमन के पश्चात् शुद्ध जल से स्नान करवाएं–

स्नान—गंगा च यमुना चैव नर्मदा च सरस्वती। कृष्णा च गौतमी वेणी क्षिप्रा सिन्धुस्तथैव च॥
तापीच पयोष्णीरेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृत्म्। तोयमेत त्सुखस्पर्शं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

फिर पञ्चामृत स्नान करवाएं—पहले दूध से स्नान करवाएं।

दूध—गोक्षीरधावन् देवेश गोक्षीरेण मया कृतम्। स्नपनं देव देवेश गृहाण मधुसूदन॥

दूध चढ़ाने पर शुद्ध जल से स्नान करवाकर दही से स्नान करायें—

दधि—दध्वा चैव मया देव स्नपनं क्रियते तव। गृहाण भक्तया मया दत्तं सुप्रसन्नो भव अव्यय॥

दही चढ़ाने पर शुद्ध जल से स्नान करवाकर मखन या घृत से स्नान करवाएं।

घृत—सर्पिषा देव देवेश स्नपनं क्रियते मया। राधा कान्त गृहाणेदं श्रद्धया सुरसत्तम्॥

घृत स्नान के पश्चात् शुद्ध जल से स्नान करवाकर शहद चढ़ाएं।

शहद—इदं मधु मया दत्तं तव तुष्ट्यर्थ मेव च। गृहाण प्रभो त्वं भक्त्या मम शान्ति प्रदोभव॥

शहद चढ़ाकर शुद्ध जल से स्नान कराकर शक्कर चढ़ाएं।

शर्करा—सितया देव देवेश स्नपनं क्रियते मया। गृहाण कृष्ण मे भक्तया मम शान्तिप्रदोभव॥

शक्कर चढ़ाकर शुद्ध जल से स्नान करवाकर प्रतिमा को या शालिग्राम शिला को पुष्पों पर रखकर पूजन करें।

वस्त्र चढ़ाएं या मौली चढ़ाएं–

सर्व भूषाधिके सौम्ये लोक लज्जा निवारणे। मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रति गृह्यताम्॥

वस्त्र देने के पश्चात् यज्ञोपवीत चढ़ाएं।

यज्ञोपवीत–दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भव सागरात्। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम॥

चन्दन चढ़ाएं–श्री खण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुर श्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

चन्दन चढ़ाने के बाद फूल चढ़ाएं–

पुष्प–माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभु। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

तुलसी पत्र लेकर मूर्ति पर चढ़ाएं–

तुलसी–तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपाञ्च मंजरीम्। भव मोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयमि हरि प्रियाम्॥

दूर्वा अच्छी घास चढ़ाएं–

विष्णवादि सर्व देवानां दूर्वे त्वं प्रीतिदा सदा। क्षीर सागर सम्भूते वंश वृद्धिकरी भव॥

इसके पश्चात् आभूषण चढ़ाएं, चाहे पुष्पों से ही क्यों न बने हों।

आभूषण–रत्न कंकण वैदूर्य मुक्ता हारादिकानि च। सुप्रसन्नेन मनसा दत्तानि स्वीकुरुष्व भो॥

अवीर गुलाल आदि चढ़ाएं–

नाना परिमलैः द्रव्यैः निर्मितं चूर्ण मुत्तमम्। अवीर नामकं चूर्णं गन्धं चारु प्रगृह्यताम्॥

धूप अगरवत्ती चढ़ाएं–
धूप–वनस्पति रसोद् भूतो गन्धाद्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्व देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
दीपक दिखायें–
दीप–साज्यं च वर्तिसंयुक्तं बह्निना योजितं मया। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्य तिमिरापहम्॥
दीपक के पश्चात् सौगी, मिठाई आदि चढ़ाएं–
नैवेद्य–अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। भक्ष्य भोज्य समायुक्तं नैवेद्यं प्रति गृह्यताम्॥
आचमन–नैवेद्य के पश्चात् पीने के लिये जल दें–
एलोशीर लवंगादि कर्पूर परिवासितम्। प्राशनार्थें कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर॥
अनेक प्रकार के ऋतुफल चढ़ाएं–
ऋतुफल–वीजपूराम्र मनस खर्जूरी कदली फलम्। नारिकेल फलं दिव्यं गृहाण परमेश्वर॥
आचमन–ऋतुफल चढ़ाने के बाद आचमन के लिये जल दें–
कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम्। आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि त्त्वतः॥
ऋतुफल एवं आचमन देने के बाद पान पत्ता चढ़ाएं–
तांबूल–पूगीफलं महद्दिव्यं नागबल्ली दलैः युतम्। कर्पूरादि समायुक्तं ताम्बूलं प्रति गृह्यताम्॥
दक्षिणा–हिरण्यगर्भ गर्भस्थं हेमवीजं विभावसा। अनन्त पुण्य फलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥
आर्तिक्य–चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। तमेव सर्व ज्योतींषी आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम्॥

प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च। तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

नमस्कार—नमः सर्वहितार्थाय जगदाधार हेतवे। साष्टांगोऽयं प्रणामस्तु प्रणयेन मया कृतः ॥

द्वादशाक्षर मन्त्र के जप की विधि

मन्त्र—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ध्यान—

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले वक्षः स्थले कौस्तुभम्। नासाग्रे वरमौक्तिकं कर तले वेणुं करे कंकणम् ॥
सर्वांगे हरि चन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली। गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपाल चूड़ामणि ॥१ ॥
फुल्लेन्दी वरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसं प्रियम्। श्रीवत्सांकमुदार कौस्तुभ धरं पीताम्बरं सुन्दरम् ॥
गोपीनां नयनोत्पलार्चित तनुं गो-गोप संघावृतम्। गोविन्दं कलवेणु वादनपरं दिव्यांग भूषं भजे ॥२ ॥

ध्यान करके 108 बार मन्त्र का जाप करें। शक्ति हो तो अधिक भी किया जा सकता है।

अच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं राम नारायणं कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिका वल्लभं जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥१ ॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिका राधितम्।
इन्दिरा मन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे ॥२ ॥
विष्णवे जिष्णवे शंखिने चक्रिणे रुक्मिणि रागिणे जानकी जानये।
वल्लभी वल्लभायार्चितायात्मने कंस विध्वंसिने वेशिने ते नमः ॥३ ॥
कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारका नायक द्रौपदी रक्षक ॥४ ॥
राक्षस क्षोभितः सीतयाशोभितो दण्डकारण्यभू पुण्यता कारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो ऽगस्त्यसंपूजितो राघवः पातुमाम् ॥५ ॥
धेनुकारिष्ट्रको ऽनिष्ट कृद् द्वेषिणां केशिहा कंस हृद् वंशिका वादकः।
पूतना कोपकः सूरजाखेलनो वालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥६ ॥
विद्युदुद्योतवान् प्रस्फुरद् वाससं प्रावृडम्भोद्वत् प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्ययामालया शोभितोरः स्थलं लोहितांघ्रि द्वयं वारिजाक्षं भजे ॥७ ॥
कुंचितैः कुन्तलैः भ्राजमानाननं रत्नमौलिं सत्कुंडलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कंकणप्रोज्ज्वलं किंकिणी मंजुलं श्यामलं तं भजे ॥८ ॥
अच्युतस्याष्टकं यः पेठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषं सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भरं तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥९ ॥
इति श्री शंकराचार्य विरचितं अच्युताष्टकं संपूर्णम्।

अथ एकादशी माहात्म्य भाषा टीका।

१. मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष उत्पन्ना एकादशी

सूत उवाच–एवं प्रीत्या पुरा विप्राः श्रीकृष्णेन परं व्रतम् ॥ माहात्म्यं विधिसंयुक्तमुपदिष्टं विशेषतः ॥१ ॥ उत्पत्तिं यः शृणोत्येवमेकादश्यां द्विजोत्तम ॥ भुक्त्वा भोगानने–कांस्तु विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥२ ॥ पार्थ उवाच–उपवासस्य नक्तस्य एकभुक्तस्य च प्रभो ॥ किं पुण्यं किं विधानं च ब्रूहि सर्त्रं जनार्दन ॥३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ हेमन्ते चैव सम्प्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे ॥ शुक्लपक्षे तथा पार्थ एकादश्यामुपोषयेत् ॥४ ॥ नक्तं दशम्यां कुर्यात्तु दन्तधावनपूर्वकम् ॥

नैमिषारण्य के पवित्र क्षेत्र में हज़ारों ऋषियों की उपस्थिति में सूत जी महाराज एकादशी व्रतों के माहात्म्य को व्यक्त कर रहे हैं। सूत जी ने कहा–हे विप्रवर्ग, पूर्वकाल में श्री कृष्ण जी महाराज ने जिस उत्तम व्रत के माहात्म्य को प्रीतिपूर्वक विशेष विधि के साथ कहा था उस एकादशी व्रत की उत्पत्ति के विषय में जो मनुष्य सुनता है, वह संसार के समस्त भोगों को मुक्त करके विष्णु लोक को प्राप्त करता है। भगवान् श्री कृष्ण से अर्जुन ने विनयपूर्वक कहा, हे प्रभो, उपवास, नक्त और एक बार भोजन करने का क्या फल है और उसकी क्या विधि है, उसे कृपा करके कहिये। श्री कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ! हेमन्त ऋतु में मार्गशीर्ष (मग्घर) दशमी की रात्रि में दान्त साफ करके शुद्धता से रहे, दिन के आठवें भाग में जब सूर्य के तेज मन्द पड़ जाए उस समय के भोजन

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ॥५ ॥ तत्र नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥
ततः प्रभातसमये संकल्पं नियतश्चरेत् ॥६ ॥ मध्याह्ने च तथा पार्थ शुचिः स्नातः समाहितः ॥
नद्यां तडागे वाप्यां वा उत्तमं त्वधः ॥७ ॥ क्रमत ज्ञेयं तथा कूपे तद्भावे प्रशस्यते ॥ अश्वक्रान्ते
रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥८ ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥ त्वयाहतेन
पापेन गच्छामि परमां गतिम् ॥९ ॥ अनेन मृत्तिकास्नानं विदधीत व्रती नरः ॥ नालपेत्
पतितैश्चौरैस्तथा पाखण्डिभिः सह ॥१० ॥ मिथ्यापवादिनो देव वेदब्राह्मणनिन्दकान् ॥

का नाम नक्त भोजन है ! किन्तु रात्रि के समय किया जाने वाला भोजन नक्त भोजन नहीं है। हे अर्जुन, प्रातःकाल उठकर स्नान आदि नित्य क्रिया करके व्रत के लिये संकल्प करे। मध्याह्न काल में कुएं, तालाब, नदी आदि पर जाकर या घर पर रहते हुए स्नान से पूर्व शरीर पर मिट्टी मलें और प्रार्थना करें–हे अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, वसुन्धरे, मृत्तिके मेरे पूर्व जन्म के संचित पापों को हर लो, तुम्हारे द्वारा नष्ट किये गये पापों से मैं परम गति को प्राप्त करूंगा। ऐसा कहकर विधिपूर्वक स्नान करें। पति, चोर, पाखण्डी, झूठ बोलने वाले, दूसरों की निन्दा करने वाले, देवता, वेद और ब्राह्मण की निन्दा करने वाले, दुराचारी, दूसरे की स्त्री तथा धन का अपहरण करने वाले लोगों से बात न करे। ऐसे लोगों के दर्शन भी न करे। स्नान के पश्चात् भगवान् नारायण का विधिपूर्वक पूजन करके नैवेद्य आदि अर्पण करे। घर में दीपक का प्रकाश करे, उस दिन निद्रा का त्याग करे, ब्रह्मचर्य रखे, प्रभु के नाम का कीर्तन आदि करे, सत् शास्त्रों का पाठ करे, जो भी कार्य करे वह भक्ति युक्त मन से करे।

अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागामिनस्तथा ॥११॥ परद्रव्यापहृतांश्चैव देवद्रव्यापहारिणः ॥ न सम्भाषेत दृष्ट्वापि भास्करं चावलोकयेत् ॥१२॥ ततो गविन्दमभ्यर्च्य नैवेद्यादिभिरादरात् ॥ दीपं दद्यात् गृहे चैव भक्तियुक्तेन चेतसा ॥१३॥ तद्दिने वर्जयेत् पार्थ निद्रां मैथुनमेव च ॥ गीतशास्त्रजिवोदेन दिवारात्रं नयेद् व्रती ॥१४॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१५॥ यथा शुक्ला तथा कृष्णा मान्या वै धर्मतत्परैः ॥ एकादश्योर्द्वयोः राजन् विभेदं नैव कारयेत् ॥१६॥ एवं हि कुरुते यस्तु शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥१७॥ एकादशयुपवासस्य

भक्तिमान धर्मात्मा व्यक्ति शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष की एकादशियों में किसी प्रकार का भेद न माने। जो माहात्म्य शुक्ल पक्ष की एकादशी का है, वही माहात्म्य कृष्ण पक्ष की एकादशी का है। इस प्रकार से व्रत करने का जो फल है उसे सुनो–शंखोद्धार क्षेत्र में स्नान कर भगवान् गदाधर के दर्शन का जो फल है, वह फल एकादशी के उपवास के फल के सम्मुख सोलहवें भाग के समान भी नहीं है। व्यतिपात में दान करने का फल लाख गुना होता है। हे अर्जुन! संक्रान्ति में दान करने का फल चार लाख गुना है और सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में स्नान करने का जो फल होता है, वह फल एकादशी के व्रत को करने से होता है। जिस के घर मे आठ हज़ार वर्ष तक एक लाख तपस्वी नित्य भोजन करते हैं, उसको जितना पुण्य मिलता है, वही पुण्य मनुष्य को एकादशी का उपवास करने से प्राप्त होता है तथा वेद-वेदांग पारंगत ब्राह्मण को एक हज़ार गौ देने से जो पुण्य

कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ व्यतीपाते च दानस्य लक्षमेकं फलं स्मृतम् ॥१८॥ संक्रान्तिषु चतुर्लक्षं यो ददाति धनञ्जय॥ कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥१९॥ तत्सर्वं लभते यस्तु एकादश्यामु-पोषितः॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य करणाद्यत्फलं लभेत् ॥२०॥ ततः शतगुणं पुण्यमेकादश्यु-पवासतः॥ तपस्विनो गृहे नित्यं लक्षं यस्य च भुञ्जते ॥२१॥ षष्टिवर्षसहस्राणि तस्य पुण्यं च यद्भवेत्॥ एकादश्युपवासेन पुण्यं प्राप्नोति मानवः ॥२२॥ गोसहस्रं च यत्पुण्यं दत्ते वेदाङ्गपारगे॥ तस्मात्पुण्यं दशगुणमेकादश्युपवासिनाम् ॥२३॥ नित्यं भुञ्जन्ते यस्य दश होता है, उससे दस गुणा पुण्य एकादशी का व्रत करने वाले को मिलता है। जिसके घर में प्रतिदिन दस श्रेष्ठ ब्राह्मण नित्य प्रति भोजन करते हैं, उसके फल से भी अधिक दस गुना फल एक ब्रह्मचारी के भोजन से होता है, उससे हज़ार गुणा फल पृथ्वी दान से और हज़ार गुणा फल कन्यादान से तथा उससे दस गुणा अधिक फल विद्यादान से होता है। विद्यादान से भी दस गुणा फल भूखे को भोजन कराने से होता है। अन्न दान से अधिक न कोई दान हुआ न हो सकता है। हे कौन्तेय! अन्न के दान से पितर लोक में बैठे हुए पितर भी तृप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार एकादशी के व्रत के पुण्य की भी कोई संख्या नहीं है। इसके पुण्य का प्रभाव देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। हे पुरुष सत्तम, उपवास का आधा फल रात को और आधा फल दिन में एक बार भोजन करने वाले को होता है। उपवास के दिन एक बार रात्रि में भोजन करे, इस प्रकार कोई भी व्रत करना उचित है। यम, नियम, तीर्थ, दान और यज्ञ तभी तक गर्जते हैं जब तक एकादशी नहीं आती। इसलिये संसार के तापों से डरने

चैव द्विजोत्तमाः ॥ भवेत्तद्वै दशगुणं भोजने ब्रह्मचारिणः ॥२४॥ एतत्सहस्त्रं भूदाने कन्यादाने ततः स्मृतम् ॥ तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं विद्यादाने तथैव च ॥२५॥ विद्यादशगुणं चान्नं यो ददाति बुभुक्षिते ॥ अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥२६॥ तृप्तिमायान्ति कौन्तेय स्वर्गस्थाः पितृदेवताः ॥ एकादशीव्रतस्यापि पुण्यसंख्या न विद्यते ॥२७॥ एतत्पुण्यप्रभावश्च यत्सुरैरपि दुर्लभः । नक्तस्यार्द्धं फलं तस्य एकभुक्तस्य सत्तम ॥२८॥ एकभुक्तं च नक्तं च उपवासस्तथैव च ॥ एतेष्वन्यतमं वापि व्रतं कुर्याद्धरेर्दिने ॥२९॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि दानानि नियमाः यमाः ॥ एकादशी न सम्प्राप्ता यावत्तावन्मखा अपि ॥३०॥ तस्मादेकादशी सर्वैरुपोष्या भवभीरुभिः ।

वाले मनुष्यों को एकादशी का उपवास अवश्य करना चाहिये। हे अर्जुन, एकादशी के दिन न तो शंख से जल पीवे, न ही किसी पशु आदि की हिंसा करे। यह एकादशी-व्रत अन्य व्रतों से उत्तम है। अर्जुन ने कहा, हे प्रभो, सब तिथियों में एकादशी उत्तम एवं पवित्र है, यह आपने कैसे कहा, सब यज्ञों से भी यह उत्तम है, इसकी मैं पुरातन कथा सुनना चाहता हूं। श्री कृष्ण जी बोले, हे पार्थ! सुनो, सतयुग में देवताओं को कष्ट देने वाला, अत्यन्त अद्भुत और महाभयंकर मुर नाम का राक्षस था। वह भयानक राक्षस सभी देवताओं को कष्ट देने वाला था। उस प्रतापी दैत्य ने इन्द्र, वसु, ब्रह्मा, वायु और अग्नि आदि देवताओं पर विजय प्राप्त कर अपने वश में कर लिया था। तब इन्द्र ने दुःखी होकर अपना कष्ट भगवान् शंकर से कहा। हे देव, हम सभी देवता अपने लोक

न शंखेन पिबेत्तोयं न हन्यान्मत्स्यसूकरान् ॥३१॥ एकादश्यां न भुञ्जीत यन्मां त्वं पृच्छसेऽर्जुन ॥ एतत्ते कथितं सर्वं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥३२॥ अर्जुन उवाच ॥ एकादशीसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्त्रकम् ॥ उक्ता त्वया कथं देव पुण्येयं सर्वतस्तिथिः ॥३३॥ सर्वेभ्योऽपि पवित्रेयं कथं ह्येकादशी तिथिः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पुरा कृतयुगे पार्थ मुर नामा हि दानवः ॥३४॥ अत्यद्भुतो महारौद्रः सर्वदेव भयङ्करः ॥ इन्द्रोऽपि विनिर्जितस्तेन ह्याद्यो देवः पुरन्दरः ॥३५॥ आदित्या वसवो ब्रह्मा वायुरग्नि-स्तथैव च ॥ देवता निर्जितास्तेन ह्यत्युग्रेण च पाण्डव ॥३६॥ इन्द्रेण कथितः सर्वो वृत्तान्तः शङ्कराय वै ॥ सर्वलोकपरिभ्रष्टाः विचरामो महीतले ॥३७॥ उपायं ब्रूहि मे देव त्रिदशानां तु का गतिः ॥ ईश्वर उवाच—गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्रास्ति गरुड-

से गिरकर पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं। हे प्रभो! इन देवताओं की क्या गति होने वाली है? भगवान् शंकर ने कहा, हे इन्द्र, आप जगतपति, शरणागतवत्सल, गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु की शरण में जाओ, वही आपको मार्ग दिखाएंगे। इस प्रकार भगवान शिव के वचन सुनकर देवराज इन्द्र अपने गणों एवं देवताओं सहित जहां विष्णु भगवान् को जल में सोये हुए देखकर, इन्द्र दोनों हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—हे देवताओं से वन्दित पुरुषोत्तम आपको नमस्कार है, हे दैत्य शत्रु, कमल नयन, मधुसूदन हमारी रक्षा करो। दैत्यों से भयभीत ये सब देवतागण मेरे साथ आपकी शरण में आये हैं। हे जगन्नाथ, आप ही शरण देने वाले हैं, आप ही कर्ता हैं,

ध्वजः ॥३८॥ शरणयश्च जगन्नाथः परित्राणपरायणः॥ ईशस्य वचनं श्रुत्वा देवराजो महामनाः ॥३९॥ त्रिदशैः सहितः सर्वैर्गतस्तत्र धनञ्जय॥ यत्र देवो जगन्नाथः प्रसुप्तो हि जनार्दनः ॥४०॥ जलमध्ये प्रसुप्तं तु दृष्ट्वा देवं जगत्पतिम्॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥४१॥ ॐ नमो देवदेवाय देवदेवैः सुवन्दितः॥ दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन ॥४२॥ दैत्यभीता इमे देवा मया सह समागताः॥ शरणं त्वं जगन्नाथ त्वं कर्त्ता च कारकः ॥४३॥ त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥ त्वं स्थितिस्त्वं तथोत्पत्तिस्त्वं च संहारकारकः ॥४४॥ सहायस्त्वं च देवानां त्वं च शान्तिकरः प्रभो॥ त्वं धरा च त्वमाकाशः सर्वविश्वोपकारकः ॥४५॥ भवस्त्वं च स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्यप्रतिपालकः॥ त्वं रविस्त्वं शशाङ्कश्च

आप ही कारक हैं। आप सभी लोकों के माता हैं, आप ही संसार के पिता हैं। आप ही सब के उत्पन्न, पालन एवं संहार करने वाले हैं। हे प्रभो, आप सभी देवताओं के सहायक हैं और शान्ति देने वाले हैं। हे प्रभो, आप ही पृथ्वी हैं और आप ही आकाश हैं, आप ही चराचर संसार का उपकार करने वाले हैं। आप ही शंकर हैं और आप ही ब्रह्मा हैं। हे प्रभो, आप ही त्रिलोकी का पालन करने वाले हैं। आप ही सूर्य हैं और आप ही चन्द्रमा हैं, आप ही अग्नि देव हैं। आप ही यज्ञकर्ता हैं, आप ही यज्ञस्वरूप हैं और आप ही यज्ञ का साकल्य हैं, आप ही मन्त्र हैं, आप ही तन्त्र हैं, आप ही ऋत्विज हैं और आप ही जप हैं। हे भगवन, हे देव देवेश, हे शरणागत

त्वं च देवो हुताशनः ।।४६ ।। हव्यं होमो हुतस्त्वं च मन्त्रतन्त्रार्त्विजो जपः ।। यजमानश्च यज्ञस्त्वं फलभोक्ता त्वमीश्वरः ।।४७ ।। न त्वया रहितं किञ्चित् त्रैलोक्ये सचराचरे ।। भगवन् देवदेवेश शरणागत वत्सल ।।४८ ।। त्राहि त्राहि महायोगिन् भीतानां शरणं भव ।। दानवैर्निर्जिता देवाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ।।४९ ।। स्थानभ्रष्टाः जगन्नाथ विचरन्ति महीतले ।। इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ।।५० ।।

श्रीभगवानुवाच ।। कोऽसौ दैत्यो महामायो देवा येन विनिर्जिताः ।। किं स्थानं तस्य किं नाम किं बलं कस्तदाश्रयः ।।५१ ।। एतत्सर्वं समाचक्ष्व मघवन्निर्भयो भव ।। इन्द्र उवाच ।।

वत्सल, हे योगीश्वर, आप ही यज्ञ के यजमान हैं, और आप ही फल को भोगने वाले हैं। हे नाथ, आप भय युक्त लोगों को शरण देने वाले हैं, वैभवहीन दैत्यों से पराजित, भयभीत होकर हम आपकी शरण में आये हैं। हे प्रभो, दानवों ने देवताओं को पराजित कर दिया है, देवता लोग स्वर्ग से भ्रष्ट होकर, स्थान से भ्रष्ट होकर पृथ्वीतल पर विचर रहे हैं, हे जगन्नाथ हमारी रक्षा करो।

इन्द्र के वचनों को सुनकर भगवान् विष्णु बोले कि वह मायावी दानव कौन है, जिसने देवताओं को पराजित कर दिया है, उसका क्या नाम है, वह कहां रहता है, उसकी कितनी सेना है, कितनी शक्ति है, किसका उसे आश्रय है। हे इन्द्र, निर्भय होकर कहो। तब इन्द्र बोले, हे देव, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देव-देवेश,

भगवन् देवदेवेश भक्तानुग्रहकारक ॥५२॥ दैत्यः पूर्वं महान्नासीन्नाडी-जंघ इति स्मृतः ॥
ब्रह्मवंशसमुद्भूतो महोग्रः सुरसूदनः ॥५३॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातो मुरनामा महासुरः ॥ तस्य
चन्द्रावतीनाम नगरी च गरीयसी ॥५४॥ तस्यां वसन् स दुष्टात्मा विश्वं निर्जित्य वीर्यवान् ॥
सुरान् स्ववशमानिन्ये निराकृत्य त्रिविष्टपात् ॥५५॥ इन्द्राग्नियमवाय्वीशसोमनिर्ऋतिपाशिनाम् ॥
पदेषु स्वयमेवासीत् सूर्यो भूत्वा तपत्यपि ॥५६॥ पर्जन्यः स्वयमेवासीदजेयः सर्वदैवतैः ॥
जहि तं दानवं विष्णो सुराणां जयमावह ॥५७॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कोपाविष्टो जनार्दनः ॥

ब्रह्म वंश में देवताओं को महान् कष्ट देने वाला, महा उग्र नाड़ी जंघ नाम का दैत्य उत्पन्न हुआ था, उसी ही दैत्य का यह बलशाली मुर नाम का यह पुत्र है और विख्यात चन्द्रावती नाम की उसकी नगरी है। वह दुष्टात्मा, बलशाली दैत्य संसार को जीत करके, सभी देवताओं को अपने वश में करके, देवताओं को स्वर्ग से बाहर निकालकर उसी नगरी में रह रहा है। वह इन्द्र, अग्नि, यम, वायु, ईश, चन्द्रमा, निर्ऋति, वरुण आदि के स्थान पर आप ही स्थित है और आप ही सूर्य बनकर तप रहा है। हे प्रभो, वह आप ही मेघ हैं, सभी देवताओं से वह अजेय है। हे प्रभो, उस दुष्ट दैत्य का संहार कर देवताओं को विजयी बनाओ। इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर भगवान जनार्दन क्रोधित होकर इन्द्र से बोले, हे देवेन्द्र, तुम्हारे शत्रु उस महाबली दैत्य का मैं संहार करूंगा, आप सभी पराक्रमशील देव, उसकी नगरी चन्द्रवती में चलो। ऐसा कहकर विष्णु को आगे करके सब देवता

उवाच शक्रं देवेन्द्र हनिष्ये तं महाबलम् ॥५८॥ प्रयान्तु सहिताः सर्वे चन्द्रावत्यां महाबलाः ॥ इत्युक्ताः प्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य हरिं सुराः ॥५९॥ दृष्टो देवैस्तु दैत्येन्द्रो गर्जमानस्तु दानवैः ॥ असंख्यातसहस्त्रैस्तु दिव्यग्रहणायुधैः ॥६०॥ हन्यमानास्तदा देवा असुरैर्बाहुशालिभिः ॥ संग्रामं ते समुत्सृज्य पलायन्त दिशो दश ॥६१॥ ततो दृष्ट्वा हृषीकेशं संग्रामे समुपस्थितम् ॥ अन्वधावन्नभिक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ॥६२॥ अथ तान् प्रद्रुतान्दृष्ट्वा खड्गचक्रगदाधरः ॥ विव्याध सर्वगात्रेषु शरैराशीविषोपमैः ॥६३॥ तेनाहतास्ते शतशो दानवाः निधनं गताः ॥ एकांगो

उसकी नगरी की ओर चले। तब देवताओं ने सहस्त्रों दिव्य अस्त्रों से सुसज्जित, असंख्य दैत्यों के साथ देवेन्द्र को गर्जते हुये देखा। इस बलशाली असुर के भय से आक्रान्त सभी देवता संग्राम से भाग कर दशों दिशाओं में चले गये। तब भगवान् को अकेले देखकर वे असुर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े। उस दैत्य सेना को दौड़ते हुए देखकर शंख, चक्र, गदा को धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने सर्प के विष के समान भयंकर बाणों से उनको वेध दिया। विष्णु के हाथ से मारे गए सैंकड़ों असुर नष्ट हो गये, परन्तु एक वही दानव विचलित न होकर बार-बार युद्ध करता रहा। भगवान् ऋषीकेश के हाथों से छोड़े गए आयुधों को अपने तेज से कुण्ठित करने लगा और आयुधों को फूलों के समान समझता रहा। अर्थात् फैंके गये अस्त्र-शस्त्र उसको कोई हानि न पहुंचा सके। अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से भी जब उस दैत्य को जीतने में असमर्थ रहे, तब परिघ के समान बाहुओं

दानवः स्थित्वा युद्ध्यमानो मुहुर्मुहुः ॥६४॥ तस्योपरि हृषीकेशो यद्यदायुधमुत्सृजत्॥ पुष्पवत्तं समभ्येति कुण्ठितं तस्य तेजसा ॥६५॥ शस्त्रास्त्रैर्विध्यमानोऽपि यदा जेतुं न शक्यते॥ युयोध च तथा क्रुद्धो बाहुभिः परिघोपमैः ॥६६॥ बाहुयुद्धं कृतं तेन दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ तेन श्रान्तः स भगवान् गतो बदरिकाश्रमम्॥६७॥ तत्र हेमवती नाम्नी गुहा परमशोभना॥ तां प्रविश्य महायोगी शयनार्थं जगत्पतिः ॥६८॥ योजनद्वादशायामा एकद्वारा धनञ्जय॥ अहं तत्र प्रसुप्तोऽस्मि भयभीतो न संशयः ॥६९॥ महायुद्धेन तेनैव श्रान्तोऽहं पाण्डुनन्दन॥ दानवः पृष्ठतो लग्नः प्रविवेश स तां गुहाम्॥७०॥ प्रसुप्तं मां तदा दृष्ट्वाऽचिन्तयद्दानवो हृदि॥

से युद्ध करने लगे, अनेक वर्षों तक बाहुयुद्ध करते हुए भगवान् हृषीकेश थक कर वदरिकाश्रम को चले गये। वहां हेमवती नाम की सुन्दर गुफा में जगत् के पति महायोगी हृषीकेश ने शयन के लिये प्रवेश किया। हे अर्जुन, दश योजन विस्तार वाली उस गुफा का एक ही द्वार था। मैं उस दैत्य के भय से थका हुआ सो गया। वह दानव मेरे पीछे लगा हुआ उस गुफा में भी आ गया। वहां मुझे सोया हुआ देख वह दानव हृदय में विचार करने लगा, दानवों का नाश करने वाले इस विष्णु को मैं अब मारूंगा। वह दुर्बुद्धि ऐसा विचार मन में कर ही रहा था, उसी समय एक दिव्य तेज वाली कन्या का मेरे अंगों से प्रादुर्भाव हुआ। हे अर्जुन, उस मुर नामक दैत्य ने उस देवी को दिव्य शस्त्रों से युक्त युद्ध के लिये तैयार देखा। उस स्त्री के कहने पर उस दैत्य ने युद्ध की इच्छा की। तो

हरिमेनं हरिष्येऽहं दानवानां क्षयावहम् ॥७१॥ एवं सुदुर्मतेस्तस्य व्यावसायं व्यवस्य च ॥
समुद्भूता ममाङ्गेभ्यः कन्यैका च महाप्रभा ॥७२॥ दिव्यप्रहरणा देवी युद्धाय समुपस्थिता ॥
ईक्षिता दानवेन्द्रेण मुरुणा पाण्डुनन्दन ॥७३॥ युद्धं समीहितं तेन स्त्रिया तत्र प्रयाचितम् ॥
तेनायुध्यत सा नित्यं तां दृष्ट्वा विस्मयं गतः ॥७४॥ केनेयं निर्मिता रौद्रा अत्युग्राऽशनिपातिनी ॥
इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ युयुधे कन्यया तया ॥७५॥ ततस्तया महादेव्या त्वरया दानवो बली ॥

वह स्त्री दैत्य के साथ निरन्तर युद्ध करने लगी। उस भयंकर युद्ध के देखकर वह दैत्य विस्मित हो गया। वह सोचने लगा कि ऐसी रौद्ररूपा भयानक स्त्री किस ने बनाई है जो अति प्रबल वज्रपात कर रही है। ऐसा कहकर वह दानवेन्द्र उस कन्या के साथ युद्ध करने लगा। तब उस महादेवी ने उस बली दैत्य को तुरन्त रथ रहित करके क्षणमात्र में उसके सब अस्त्र-शस्त्र काट दिये। जब बाहु में शस्त्र लेकर महाबल पूर्वक वह दैत्य दौड़ा तब देवी ने उसकी छाती में घूंसा मार कर उसे गिरा दिया। वह फिर उठकर देवी को मारने के लिये दौड़ा। देवी ने क्रोधित होकर उसका सिर काट कर क्षणमात्र में उस असुर को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। सिर कटने पर वह दैत्य यमलोक में पहुंच गया। शेष दैत्य भय से पीड़ित होकर दीन-हीन बने हुए पाताल में चले गये। तब भगवान् हृषीकेश ने निद्रा से उठकर अपने सामने मरे हुए उस दैत्य को देखा और अपने सामने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़ी हुई कन्या को देखकर जगत् के पति विष्णु भगवान् विस्मित होकर प्रसन्न मुख हो उससे पूछने

छित्त्वा सर्वाणि शस्त्राणि क्षणेन विरथः कृतः ॥७६ ॥ बाहूप्रहरणोपेतो धावमानो महाबलात् ॥ तलेनाहत्य हृदये तया देव्या निपातितः ॥७७ ॥ पुनरुत्थाय सोऽधावत् कन्याहननकांक्षया ॥ दानवं पुनरायान्तं रोषेणाहत्य तच्छिरः ॥७८ ॥ क्षणान्निपातयामास भूमौ तत्र महासुरम् ॥ दैत्यः कृतशिरः सोऽथ ययौ वैवस्वतालयम् ॥७९ ॥ शेषा भयार्दिता दीनाः पातालं विविशुर्द्विषः ॥ ततः समुत्थितो देवः पुरो दृष्ट्वाऽसुरं हतम् ॥८० ॥ कन्यां पुरःस्थितां चापि कृताञ्जलिपुटां नताम्। विस्मयोत्फुल्लवदनः प्रोवाच जगतां पतिः ॥८१ ॥ केनायं निहतः संख्ये दानवो दुष्टमानसः ॥ येन देवाः सगन्धर्वाः सेन्द्राश्च समरुद्गणाः ॥८२ ॥ सनागाः सहलोकेशा लीलयैव

लगे कि गन्धर्व, पवन, इन्द्र सहित सब देवताओं को जीतने वाले इस दुष्टात्मा दैत्य को किसने मारा। जिस ने लोकपालों तथा नागों को क्रीड़ामात्र में ही जीत लिया था और जिससे परास्त हुआ मैं भी इस गुफा में डर के मारे शयन के लिये विवश हुआ था, किसकी दया से मैं सुरक्षित हुआ। कन्या बोली, हे प्रभो, आपके अंश से उत्पन्न मैंने ही दैत्य को मारा है। आपको शयन करते हुए देखकर मारने की इच्छा करते हुए तीनों लोकों के कण्टक इस दुष्ट दैत्य को मैंने मारकर दैत्यों को निर्भय बना दिया। हे प्रभो, सब शत्रुओं को भय देने वाली आपकी ही मैं महाशक्ति हूं। तीनों लोकों की रक्षा करने के लिये संसार के इस भयंकर दैत्य को मरा हुआ देखकर आपको आश्चर्य क्यों हुआ? हृषीकेश भगवान् बोले–हे पुण्यात्मा, इस असुर के मारने पर मैं तुमसे

च विनिर्जिताः ॥ येनाहं निर्जितो भूत्वा भीतः सुप्तो गुहामिमाम् ॥८३॥ केन कारुण्यभावेन रक्षितोऽहं पलायितः ॥ कन्योवाच ॥ मया विनिहतो दैत्यस्त्वदंशोद्भूतया प्रभो ॥८४॥ दृष्ट्वा सुप्तं हरे त्वां तु यतो हन्तुं समुद्यतः ॥ त्रैलोक्यकण्टकस्येत्थं व्यवसायं प्रबुद्ध्य च ॥८५॥ हतो माया दुरात्माऽसौ देवता निर्भयाः कृताः ॥ तवैवाहं महाशक्तिः सर्वशत्रुभयङ्करी ॥८६॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थाय हतो लोकभयङ्करः ॥ निहतं दानवं दृष्ट्वा किमाश्चर्यं वद प्रभो ॥८७॥ श्रीभगवान उवाच ॥ निहते दानवेन्द्रेऽस्मिन्सन्तुष्टोऽहं त्वयाऽनघे ॥ हृष्टाः पुष्टाश्च वै देवा आनन्दः समजायत ॥८८॥ आनन्दस्त्रिषु लोकेषु देवानां यस्त्वया कृतः ॥ प्रसन्नोऽस्म्यनघे तुभ्यं वरं वरय सुव्रते ॥८९॥ ददामि तं न सन्देहो यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥

प्रसन्न हूं, हृष्ट-पुष्ट होकर देवता आनन्दित हुए हैं। तुमने जो यह भलाई का काम किया है, उससे तीनों लोकों में आनन्द छा गया है। हे पवित्रात्मा मैं तुम से प्रसन्न हूं, हे सुव्रते तुम वर मांगो, मैं तुम्हें ऐसा वर दूंगा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ हो।

कन्या बोली, हे प्रभो, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो ऐसा वर दें जिससे व्रत करने वाले मनुष्यों को मैं महापापों से छुड़ा दूं। उपवास का जो फल है उसका आधा फल नक्तभोजन करने वाले को और उसका आधा फल एक बार भोजन करने वाले को हो। इस प्रकार दिन भर भक्तिपूर्वक,

कन्योवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम ॥९० ॥ तारयेऽहं महापापादुपवासपरं नरम् ॥ उपवासस्य यत्पुण्यं तस्यार्द्धं नक्तभोजने ॥९१ ॥ तदर्द्धं च भवेत्तस्य एकभुक्तं करोति यः ॥ करोति व्रतं भक्त्या दिने मम जितेन्द्रियः ॥९२ ॥ स गत्वा वैष्णवं स्थानं कल्पकोटिशतानि च ॥ भुञ्जानो विविधान् भोगानुपवासी जितेन्द्रियः ॥९३ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन भवत्वेष वरो मम। उपवासं च नक्तं च एकभुक्तं करोति यः ॥९४॥ तस्य धर्मञ्च वित्तञ्च मोक्षं देहि जनार्दन ॥ श्री भगवानुवाच ॥ यत्त्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति ॥९५ ॥ मम भक्ताश्च ये लोकास्तव भक्ताश्च ये नराः ॥ त्रिषु लोकेषु विख्याताः प्राप्स्यन्ति मम सन्निधिम् ॥९६ ॥ एकादश्यां समुत्पन्ना मम शक्तिः परा यतः ॥ अत एकादशीत्येवं तव नाम भविष्यति ॥९७॥

जितेन्द्रिय होकर व्रत करने वाला अनेक प्रकार के भोगों को भोगने वाला हो। वह अनन्तकाल तक वैकुण्ठ में निवास करता रहे। हे प्रभो, आपकी कृपा से यह वरदान मुझे प्राप्त हो। उपवास, नक्त, एक भक्त व्रत को जो व्यक्ति करे उसे धर्म का लाभ हो, उसे धन की प्राप्ति हो, हे जनार्दन, उसे आप मोक्ष की प्राप्ति करायें। भगवान् हृषीकेश बोले, हे कल्याणि, तुम ने जो कहा है, वैसा ही होगा। जो लोग मेरे भक्त हैं और जो लोग तुम्हारे भक्त हैं, वे तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर मेंरे निकट निवास करेंगे। हे पराशक्ति, तुम एकादशी के दिन उत्पन्न हुई हो इसलिये तुम्हारा नाम एकादशी होगा। तुम्हारे भक्तों के समस्त पापों का नाश होकर अव्यय पद प्राप्त होगा।

दग्ध्वा पापानि सर्वाणि दास्यामि पदमव्ययम् ॥ तृतीया चाष्टमी चैव नवमी च चतुर्दशी ॥९८ ॥ एकादशी विशेषेण तिथियो मे महाप्रियाः ॥ सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं सर्वदानाधिकं फलम् ॥९९ ॥ सर्वव्रताधिकं चैव सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ एवं दत्त्वा वरं तस्यास्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०० ॥ हृष्टा पुष्टा तु सा जाता तदा एकादशी तिथिः ॥ इमामेकादशीं पार्थ करिष्यन्ति नरास्तु ये ॥१०१ ॥ तेषां शत्रुं हनिष्यामि दास्यामि परमां गतिम् ॥ अन्येऽपि ये करिष्यन्ति एकादश्या महाव्रतम् ॥१०२ ॥ हरामि तेषां विघ्नांश्च सर्वसिद्धिं ददामि च ॥ एवमुक्ता समुत्पत्तिरेकादश्याः

तृतीया, अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तथा विशेष रूप से एकादशी ये तिथियां मुझे अधिक प्रिय हैं। मैं यह स्वयं कहता हूं, सब तीर्थों से, सब दानों से, सब व्रतों से अधिक पुण्य एकादशी व्रत का है। भगवान् विष्णु उस कन्या को यह वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय से एकादशी तिथि हृष्ट पुष्ट हो गई अर्थात् उस समय से संसार में पूज्य हो गई। हे अर्जुन, जो मनुष्य एकादशी का व्रत करेंगे, उनके काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं का नाश हो जायेगा और उन्हें परमगति प्राप्त होगी और भी जो लोग इस व्रत का पालन करेंगे, उनके विघ्नों का नाश हो जाएगा और सब सिद्धियों की प्राप्ति होगी। हे कुन्तीपुत्र, इस प्रकार एकादशी की उत्पत्ति हुई। यह एकादशी सब पापों का नाश करने वाली, सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाली परम पवित्र एक ही तिथि संसार में उदित हुई है। हे अर्जुन, शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष का इसमें भेद नहीं करना चाहिये। दोनों पक्षों का व्रत एक

पृथासुत ॥१०३ ॥ इयमेकादशी नित्या सर्वपापक्षयङ्करी ॥ एकैव च महापुण्या सर्वपापानि-षूदनी ॥१०४ ॥ उदिता सर्वलोकेषु सर्वसिद्धिकरी तिथिः ॥ शुक्ला वाऽप्यथवा कृष्णा इति भेदं न कारयेत् ॥ कर्त्तव्ये तूभये पार्थ न तुल्या द्वादशीतिथिः ॥१०५ ॥ अन्तरं नैव कर्त्तव्यं समस्तंव्रतकारिभिः ॥ तिथिरेका भवेत्सर्वा पक्षयोरुभयोरपि ॥१०६ ॥ उपवासं प्रकुर्वन्ति एकादश्यां नराश्च ये ॥ ते यान्ति परमं स्थानं यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥१०७ ॥ धन्यास्ते मानवाः लोके विष्णु भक्तिपरायणाः । एकादश्यास्तुमाहात्म्यंसर्वकालं तु यः पठेत् ॥१०८ ॥ अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तदाप्नोति न संशयः ॥ एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहं च परेऽहनि ॥१०९ ॥ भोक्ष्यामि

समान करने योग्य है। द्वादशी युक्त एकादशी सबसे उत्तम है, इसलिये सब व्रत करने वालों को इसमें अन्तर नहीं करना चाहिये। दोनों पक्षों की तिथि एक जैसी ही है। एकादशी का व्रत जो मनुष्य करते हैं, वे गरुड़ ध्वज भगवान् के वैकुण्ठ धाम को प्राप्त करते हैं। संसार में वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो विष्णु की भक्ति में संलग्न हैं और इस एकादशी के माहात्म्य को समझते हैं। एकादशी को निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करने वाले अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त करते हैं। विद्वान् भक्त पुष्पांजलि सहित भोजन की प्रार्थना करे, हे पुण्डरीकाक्ष, हे अच्युत, मैं आपकी शरण में हूं, मेरी रक्षा करो। व्रत के फल की इच्छा करने वाला मनुष्य अष्टाक्षर मन्त्र से तीन वार अभिमन्त्रित पात्र के जल का पान करे। इस व्रत के आठ नियम हैं, दिन में शयन न करना, दूसरे का

पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्॥११०॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जपेनाभिमन्त्रितम्॥ उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम्॥१११॥
दिवा निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने॥ क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत्॥११२॥
असंभाष्य हि संभाष्य भक्षयेत्तुलसीदलम्॥ आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुद्ध्यति॥११३॥ आमध्याह्नाच्च राजेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये॥ स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः॥११४॥ संकटे विषमे प्राप्ते द्वादश्याः पारणं कथम्॥ अद्भिस्तु पारणं कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत्॥११५॥ यः श्रृणोति दिवारात्रौ नरो विष्णु परायणः॥ तद्भक्तमुखन्निष्पन्नां कथां विष्णोः-सुमंगलाम्॥११६॥ कल्पकोटिसमायुक्तो विष्णुलोके

अन्न न खाना, दूसरी वार भोजन न करना। स्त्री संग न करना, मधु, कांस्य पात्र में भोजन, मांस और तेल ये आठ वस्तुएं वर्जित हैं। जो पुरुष वार्तालाप के योग्य नहीं हैं, पतित हैं, उनसे भाषण न करें, यदि बात कर लें तो शुद्धि हेतु तुलसी का पत्र मुंह में रखे, पारणे के समय आमले के फल को भक्षण करना भी अच्छा है। हे राजन्, एकादशी के मध्याह्न काल से द्वादशी के अरुणोदय तक स्नान, पूजन, दान और होम आदि कार्य करना उचित है। यदि कोई महासंकट में पड़ा हो तो द्वादशी में जल से पारणा कर ले। और पुनः भोजन कर लेने से भी भोजन का दोष नहीं होता। विष्णु की भक्ति करने वाला विष्णु भक्त के मुख से जो मनुष्य मंगलदात्री कथा

महीयते ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं पादमेकं शृणोति यः ॥११७॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ विष्णुधर्मं समं नास्ति व्रतं नाम सनातनम् ॥११८॥

सुनते हैं, वे अनन्त काल तक वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं। जो एकादशी के माहात्म्य का एकपाद भी श्रवण करता है, उसके पाप निस्सन्देह दूर हो जाते हैं। क्योंकि वैष्णव धर्म के समान सत्य सनातन पवित्र व्रत कोई नहीं है।

इति श्री भविष्योत्तर पुराणे श्री कृष्ण अर्जुन संवादे मार्ग शीर्ष कृष्ण पक्षस्य उत्पन्ना एकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ॥

२. मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष मोक्षदा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ वन्दे विष्णु प्रभुं साक्षाल्लोकत्रयसुखप्रदम् ॥ विश्वेशं विश्वकर्त्तारं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥१॥ पृच्छामि देव देवेश संशयोऽस्ति महान्मम ॥ लोकानां तु हितार्थाय पापानां च क्षयाय च ॥२॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे किं नामैकादशी भवेत् ॥ कीदृशश्च विधिस्तस्याः

महाराज युधिष्ठिर बोले–संसार की रचना करने वाले विश्व के स्वामी, पुराण पुरुषोत्तम, तीनों लोकों के सुख देने वाले, साक्षात् विष्णु रूप आपकी मैं वन्दना करता हूं। हे देव, देवताओं के स्वामी, मुझे एक बड़ा सन्देह है, संसार के उपकारार्थ तथा पापों के क्षय के लिये आप से पूछता हूं कि मार्ग–शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष

को देवस्तत्र पूज्यते ॥३ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण यथातथम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् साधु ते विपुलं यशः ॥४ ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र हरिवासरमुत्तमम् ॥ उत्पन्ना साऽसिते पक्षे १ द्वादशी (एकादशी) मम वल्लभा ॥५ ॥ मार्गशीर्षे समुत्पन्ना मम देहान्नराधिप ॥ मुरासुरवधार्थाय प्रख्याता मम वल्लभा ॥६ ॥ कथिता सा मया चैव त्वदग्रेराजसत्तम ॥ पूर्वमेकादशी राजंस्त्रै लोक्ये सचराचरे ॥७ ॥ मार्गशीर्षेऽसिते पक्षे चोत्पत्तिरिति नामतः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्गशीर्षसितां तथा ॥८ ॥ मोक्षदा नाम्नाऽतिविख्यातां सर्वपापहरां पराम् ॥ देवं दामोदरं तस्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥९ ॥ तुलस्याः मुञ्जरीभिश्च धूपदीपैर्मनोरमैः ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥१० ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं

की एकादशी का क्या नाम है, उसके व्रत की विधि किस प्रकार है और उसमें किस देवता का पूजन होता है, हे स्वामिन् मुझे विस्तार पूर्वक इसका वर्णन कहिये। श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्, तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया, इसी कारण तुम्हारा विपुल यश संसार में हो रहा है। हे राजेन्द्र, मैं तुम्हें एकादशी (हरिवासर) की कथा कहूंगा। मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम उत्पन्ना है, वह मुझे बहुत प्रिय है। हे राजन् वह मुर नाम के असुर के वध के कारण मार्ग-शीर्ष मास में मेरे शरीर में उत्पन्न हुई थी, इसीलिये वह मेरे लिये परम प्रिय है। हे राजन्, मैं तुम्हारे सम्मुख तीनों लोकों और चराचर जगत् के निमित्त पहले ही कह चुका हूं। मार्ग-शीर्ष मास में उत्पन्न होने के कारण इसे उत्पन्ना कहा गया है। अब मैं अगहन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के

भवेत् ॥ अधोगतिं गता ये वै पितृमातृसुतादयः ॥११ ॥ अस्याः पुण्य-प्रभावेण स्वर्गं यान्ति न संशयः। एतस्मात्कारणाद्राजन्महिमानं शृणुष्व तत् ॥१२ ॥ चम्पके नगरे रम्ये वैष्णवैस्सु-विभूषिते ॥ वैखानसेतिराजर्षिः पुत्रवत् पालयन्प्रजाम् ॥१३ ॥ द्विजाश्च न्यवसंस्तत्र चतुर्वेद-परायणाः ॥ एवं स राज्यं कुर्वाणो रात्रौ तु स्वप्नमध्यतः ॥१४ ॥ ददर्श जनकं स्वं तु अधोयोनिगतं नृपः ॥ एवं दृष्ट्वा तु तं तत्र विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१५ ॥ कथयामास वृत्तान्तं द्विजाग्रे स्वप्नसम्भवम् ॥ राजोवाच ॥ मया तु स्व पिता दृष्टो नरकं पतितो द्विजाः ॥१६ ॥ तारयस्वेति

विषय में कहता हूं। सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाली, इस एकादशी का नाम मोक्षदा है। इसमें तुलसी की मंजरियों से, सुन्दर धूप दीप से दामोदर भगवान् का विधिपूर्वक पूजन करे। हे राजेन्द्र, इस विषय में मैं पौराणिक शुभ कथा को कहता हूं जिसके सुनने मात्र से वाजपेय यज्ञ का फल होता है। जिसके माता-पिता अथवा पुत्र अधोगति में हों, वे इसके प्रभाव से निस्सन्देह स्वर्ग को जाते हैं। हे राजन्, इस कारण इसकी महिमा को सुनो। वैष्णवों से विभूषित सुन्दर चम्पक नगर था। वहां राजाओं में श्रेष्ठ, पुत्र के समान प्रजा का पालन करने वाला वैखानस नाम का राजा राज्य करता था, उस राज्य में चारों वेदों को जानने वाले ब्राह्मण रहते थे। एक दिन रात को आये स्वप्न को राजा ने ब्राह्मणों के समक्ष कहा कि मैंने स्वप्न में अपने पिता को नरक में पड़े हुए देखा है। पिता ने कहा, हे पुत्र, मैं नरक में पड़ा हुआ हूं, मेरा उद्धार कर, मैं अधोयोनि को प्राप्त हो गया हूं। हे ब्राह्मणों, जब से मैंने यह स्वप्न देखा है तब से मैं बहुत दुःखी हूं। मेरा यह विशाल राज्य और उसका सुख

मां तात अधोयोनिगतं सुत ॥ इति ब्रुवाणः स तदा मया दृष्टः पिता स्वयम् ॥१७॥ तदा प्रभृति भो विप्राः नाहं शर्म लभाम्यहो ॥ एतद्राज्यं मम महदसह्यमसुखं तथा ॥१८॥ अश्वा गजा रथाश्चैव न मां रोचन्ति सर्वथा ॥ न कोशोऽपि सुखायेति न किञ्चित् सुखदं मम ॥१९॥ न दारा न सुता मह्यं रोचन्ते द्विजसत्तमाः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि शरीरं मे तु दह्यते ॥२०॥ दानं व्रतं तपो योगो येनैव मम पूर्वजाः ॥ मोक्षमायान्ति विप्रेन्द्रस्तदेव कथयन्तु मे ॥२१॥ किं तेन जीवता लोके सुपुत्रेण बलीयसा ॥ पिता तु यस्य नरके तस्य जन्म निरर्थकम् ॥२२॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पर्वतस्य मुनेरत्र आश्रमो निकटे नृप ॥ गम्यतां राजाशार्दूल भूतं भव्यं विजानतः ॥२३॥ तेषां श्रुत्वा ततो वाक्यं विषण्णो राजसत्तमः ॥ जगाम तत्र यत्राऽसौ आश्रमे पर्वतो मुनिः ॥२४॥

असह्य लग रहा है। हाथी, घोड़े, रथ मुझे अच्छे नहीं लग रहे। स्त्री, पुत्र, धान आदि कभी अच्छे नहीं लगते। मैं क्या करूं, कहां जाऊँ, मेरा शरीर जल रहा है। हे ब्राह्मणों, दान, व्रत, योग आदि कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मेरे पूर्वज मोक्ष को प्राप्त कर सकें। जिसका पिता नरक में पड़ा हो, उस बलवान पुत्र के जीवन से क्या फल? जिसका पिता नरक में हो उसका जीवन निरर्थक है। ब्राह्मणों ने कहा, हे राजन, यहां समीप ही पर्वत मुनि का आश्रम है। वे भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ जानते हैं। उनके पास जाओ। ब्राह्मणों के वचन सुनकर राजा का मन बहुत खिन्न हुआ। तब वैखानस राजा ब्राह्मणों एवं प्रजा के साथ पर्वत मुनि के आश्रम में गया। वह

ब्राह्मणैर्वेष्टितः शान्तैः प्रजाभिश्च समन्ततः॥ आश्रमो विपुलस्तस्य मुनिभिः सन्निषेवितः॥२५॥ ऋग्वेदिभिर्याजुषैश्च सामाथर्वणकोविदैः॥ वेष्टितो मुनिभिस्तत्र द्वितीय इव पद्मजः॥२६॥ दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलं राजा वैखानसस्तदा॥ जगाम चावनिं मूर्ध्ना दण्डवत्प्रणनाम च॥२७॥ पप्रच्छ कुशलं तस्य सप्तस्वंगेष्वसौ मुनिः॥ राज्ये निष्कण्टकत्वं च राजसौख्यसमन्वितम्॥२८॥ राजोवाच॥ तव प्रसादाद् भो विप्र कुशलं मेऽङ्गसप्तके॥ विभवेष्वनुकूलेषु कश्चिद्विघ्न उपस्थितः॥२९॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वां च समागतः।

आश्रम बहुत विशाल था। चारों वेदों को जानने वाले शान्त प्रकृति ब्राह्मण वहां रह रहे थे। अनेक मुनियों से भरा हुआ था, वे मुनि ब्रह्मा के समान ब्राह्मणों एवं मुनियों से घिरे हुए दिखाई दे रहे थे। राजा वैखानस ने उस पर्वत मुनि के देखकर दण्डवत् प्रणाम किया। मुनिराज ने सातों अंगों का कुशल पूछ कर राजा से कहा, राजन् तुम्हारा राज्य निष्कण्टक तो है। राज्य में सुख शान्ति तो है। तब राजा ने कहा, हे मुनिराज, आप की कृपा से मेरे सातों अंगों में कुशलता है, विभव एवँ ऐश्वर्य अनुकूल होने पर भी कुछ विघ्न उपस्थित हो गया है। हे मुने, मुझ को संशय है, इस कारण मैं आप से पूछने आया हूं। राजा का वचन सुनकर श्रेष्ठ पर्वत मुनि ध्यानावस्थित होकर, नेत्र मूंद कर भविष्य का विचार करते हुए एक मुहूर्त तक ध्यान करके श्रेष्ठ राजा से बोले, हे राजेन्द्र, हमने तुम्हारे कुकर्मी पिता के पाप को जान लिया है। पूर्व जन्म में तुम्हारे पिता ने द्वेष के कारण एक स्त्री में कामासक्त हो, दूसरी स्त्री की रक्षा करो, ऋतुदान दो, इस प्रकार कहने पर भी तुम्हारे पिता ने ऋतुभंग किया। इस पाप से वह

एवं श्रुत्वा नृपवचः पर्वतो मुनिसत्तमः ॥३० ॥ ध्यानस्तिमितनेत्रोऽसौ भूतं भव्यं व्यचिन्तयन् ॥ मुहूर्तमेकं ध्यात्वा च प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥३१ ॥ मुनिरुवाच ॥ जानेऽहं तव राजेन्द्र पितुः पापं विकर्मणः ॥ पूर्वजन्मनि ते पित्रा सपत्नीकृतद्वेषतः ॥३२ ॥ कामासक्तेन चैकस्या ऋतुभंगः कृतः स्त्रियाः ॥ त्राहि देहीति जल्पन्त्या ऋतुदानं नराधिप ॥३३ ॥ तेन वै तव पित्रा तु न दत्तो ऋतुराग्रहात् ॥ कर्मणा तेन सततं नरके पतितो ह्ययम् ॥३४ ॥ राजोवाच ॥ केन व्रतेन दानेन मोक्षस्तस्य भवेन्मुने ॥ निरयात्पापसंयुक्तात्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥३५ ॥ मुनिरुवाच ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे मोक्षदा नाम्नी हरेस्तिथिः ॥ सर्वैस्तु तद्व्रतं कृत्वा पित्रे पुण्यं प्रदीयताम् ॥३६ ॥

नरक में पड़ा है। राजा ने कहा, हे मुनि, किस व्रत और दान के करने से पाप युक्त नरक से उद्धार होगा। वह उपाय मुझसे कहो। मुनिराज बोले, अगहन मास के शुक्ल पक्ष में मोक्षदा नाम की हरितिथि होती है, तुम सब लोग उसका व्रत करो उसका पुण्य दान कर दो। उस पुण्य के प्रभाव से आपके पिता को मोक्ष मिलेगा। तब मुनि का वचन सुनकर राजा अपने महल में आये। हे भरत कुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर, जब राजा को अगहन मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी प्राप्त हुई, तब उस एकादशी का व्रत राजा ने पुत्र, स्त्री, सेवक और पूर्ण रनिवास के साथ विधिपूर्वक व्रत किया और उसके पुण्य का दान कर दिया। उस महापुण्य के दान करने से आकाश में पुष्प वृष्टि हुई। उस पुण्य के प्रभाव से वैखानस राजा का पिता देवदूतों से प्रशंसित होता हुआ स्वर्ग को गया और आकाश

तस्याः पुण्यप्रभावेण मोक्षस्तस्य भविष्यति ।। मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा नृपः स्वगृहमागतः ।।३७ ।।
आग्रहायणिकी शुक्ला प्राप्ता भरतसत्तम ।। अन्तःपुरचरैः सर्वैः पुत्रैर्दारैस्तथा नृपः ।।३८ ।। व्रतं
कृत्वा विधानेन पुण्यं दत्त्वा नृपाय तत्।। तस्मिन् दत्ते महापुण्ये पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ।।३९ ।।
वैखानसपिता तेन गतः स्वर्गं स्तुतो गणैः ।। राजानमन्तरिक्षाच्च शुद्धां गिरमभाषत ।।४० ।।
स्वस्त्यस्तु ते पुत्र सदेत्युक्त्वा स त्रिदिवं गतः ।। एवं यः कुरुते राजन् मोक्षदैकादशीमिमाम् ।।४१ ।।
तस्य पापं क्षयं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।। नातः परतरा काचिन्मोक्षदा विमला शुभा ।।४२ ।।
पुण्यसंख्यां तु तेषां वै न जानेऽहं तु यैः कृताः चिन्तामणिसमा ह्येषा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी ।।४३ ।।

से राजा वैखानस को स्पष्ट शब्दों में कहा कि हे पुत्र, तुम्हारा सदा कल्याण हो, तुमने जो पुण्य कार्य किया है वह प्रशंसनीय है। हे राजन, इस प्रकार जो मनुष्य इस मोक्षदा एकादशी का व्रत करते हैं, उस के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्त में वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इससे बढ़कर मोक्षदात्री, निर्मल और शुभ एकादशी कोई नहीं है। जिन लोगों ने इसका व्रत किया है, उनके पुण्य की संख्या हम जानते हैं। स्वर्ग और मोक्ष को प्रदान करने वाली यह चिन्तामणि के समान है। इस दिन श्रीमदभगवद् गीता के पाठ का भी बहुत माहात्म्य है। इसी एकादशी को गीता जयन्ती का भी महत्त्व प्राप्त है जिससे यह तिथि अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाली है।

इति श्री ब्रह्माण्ड पुराणे मार्गशीर्ष शुक्ला मोक्षदा एकादशी माहात्म्यं संपूर्णम् ।।

३. पौष कृष्णपक्ष सफला एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु केयमेकादशी भवेत् ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥१ ॥ एतदाचक्ष्व मे स्वामिन् विस्तरेण जनार्दन। श्रीकृष्ण उवाच। कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहकारणात् ॥२ ॥ तथा तुष्टिर्न मे राजन् क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥ यथा तुष्टिर्भवेन्मह्यमेकादश्या व्रतेन वै ॥३ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो हरिवासरः ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे तु द्वादशी या भवेन्नृप ॥४ ॥ तस्याश्चैव च माहात्म्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ गदितायाश्च च राजन्नेकादश्यो भवन्ति हि ॥५ ॥ तासामपि हि सर्वासां विकल्पं नैव कारयेत् ॥

महाराज युधिष्ठिर पूछने लगे कि पौष मास के कृष्ण पक्ष की कौन सी एकादशी होती है, उसका नाम और विधि क्या है और किस देवता का पूजन किया जाता है। यह विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये। श्रीकृष्ण जी कहने लगे, हे राजन्, तुम्हारे स्नेह के कारण मैं इसे कहूंगा। मैं जितना संतुष्ट एकादशी के व्रत से होता हूं, वैसा मैं अनेक दक्षिणा वाले यज्ञ से भी नहीं होता। इसलिय सम्पूर्ण यत्न से हरिवासर एकादशी का व्रत करना चाहिये। हे राजन्, पौष कृष्ण पक्ष में द्वादशी युक्त जो एकादशी होती है उसका माहात्म्य एकाग्रचित्त होकर सुनना चाहिये। सब महीनों में होने वाली किसी भी एकादशी को छोटी-बड़ी नहीं जानना चाहिये। सभी एकादशियों

एकादश्यास्तथाऽप्यस्याः शृणु राजन् कथान्तरम् ॥६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पौषस्यैकादशी तव ॥ लोकानां च हितार्थाय कथयिष्ये विधिं तव ॥७ ॥ पौषस्य कृष्णपक्षे या सफला नाम नामतः ॥ नारायणो-ऽधिदेवोऽस्याः पूजयेत्तं प्रयत्नतः ॥८ ॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्त्तव्यैकादशी जनैः ॥ नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा ॥९ ॥ याश्वमेधो यज्ञानां नदीनां जाह्नवी यथा ॥ देवानां च यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ व्रतानां च तथा राजन् प्रवरैकादशी तिथिः ॥१० ॥ ते जना भरतश्रेष्ठ मम पूज्याश्च सर्वशः ॥ हरिवासरसंयुक्ताः वर्त्तन्ते ये जनाः भृशम् ॥११ ॥ सफला नाम या प्रोक्ता तस्याः पूजाविधिं शृणु ॥ फलैर्मां पूजयेत्तत्र

का महत्त्व एक समान होता है। अब मैं लोगों के हित के लिये पौष मास के कृष्ण पक्ष की विधि को आपसे कहता हूं। इस पक्ष की एकादशी का नाम सफला है। इसके अधिदेव नारायण हैं। इस दिन इसी नाम से पूजन करना चाहिये। पहली बतलाई गई विधि के अनुसार सारा काम करना चाहिये। हे राजन्, नागों में जैसे शेष का महत्त्व है, पक्षियों में गरुड़ का महत्त्व है। यज्ञों में अश्वमेध का, नदियों में गंगा का, देवताओं में विष्णु का, दो पैर वालों में ब्राह्मणों का महत्त्व है। उसी प्रकार सभी तिथियों में एकादशी सर्वश्रेष्ठ है। हे युधिष्ठिर, जो लोग एकादशी का व्रत करते हैं, वे मुझे बहुत प्रिय हैं। सफला एकादशी के पूजन की विधि को सुनो। देश और काल के अनुसार उत्पन्न होने वाले फलों, नारियल, बिजौरा, जम्बीर, अनार, सुपारी, लौंग, आम तथा अनेक प्रकार

कालदेशोद्भवैः शुभैः ॥१२॥ नारिकेलफलैः शुद्धैस्तथा वै बीजपूरकः ॥ जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा पूगीफलैरपि ॥१३॥ लवंगैर्विविधैश्चान्यैस्तथा चाम्रफलादिभिः ॥ पूजयेद्देवदेवेशं धूपैर्दीपैर्यथाक्रमम् ॥१४॥ सफलायां दीपदानं विशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ रात्रौ जागरणं तत्र कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥१५॥ यावदुन्मीलयेन्नेत्रं तावज्जागर्ति यो निशि ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१६॥ तत्समो नास्ति वै यज्ञस्तीर्थं तत्सदृशं नहि ॥ तत्समं न व्रतं किञ्चिदिह लोके नराधिप ॥१७॥ पञ्चवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा च यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति सफलाया व्रतेन वै ॥१८॥ श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथानकम् ॥ चम्पावतीति विख्याता

के फलों, धूप, दीप नैवेद्य से विष्णु भगवान की पूजा करनी चाहिये। इस एकादशी की रात्रि को जागरण करना चाहिये और दीप दान देना चाहिये। हे राजन्, अनन्त काल तक तपस्या करने का भी वह फल नहीं हो सकता जो सफला एकादशी के व्रत को करने का है। हे राजन्, इस एकादशी की कथा को सुनो। माहिष्मत राजा की चम्पावती नाम की प्रसिद्ध नगरी थी। उस माहिष्मत राजा के चार पुत्र थे। उनमें दूसरा पुत्र महापापी, दुराचारी, परस्त्रीगमन करने वाला, वेश्याओं के संग में रहने वाला, ब्राह्मण, वैष्णवों और देवताओं का निन्दक था। तब माहिष्मत राजा ने उस लुम्बक नाम के पुत्र को राज्य के बाहर निकाल दिया। राजा के भय से उसके बन्धु लोगों एवं परिवार के लोगों ने भी उसे त्याग दिया। राज्य से निकाले जाने पर लुम्बक अपने मन में विचार करने लगा,

पुरी माहिष्मतस्य च ॥१९॥ माहिष्मतस्य राजर्षेश्चत्वारश्चाभवन् सुताः॥ तेषां मध्ये तु यो ज्येष्ठः स महापापसंयुतः ॥२०॥ परदाराभिगामी च द्यूतवेश्यारतः सदा॥ पितुर्द्रव्यं स पापिष्ठो गमयामास सर्वशः ॥२१॥ असद्वृत्तिरतो नित्यं देवताद्विजनिन्दकः॥ वैष्णवानां च देवानां नित्यं निन्दारतः स वै ॥२२॥ इदृग्विधं तदा दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः॥ नाम्ना स वै लुम्पकं तु कृतवानत्यमर्षितः ॥२३॥ राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैवापि बन्धुभिः॥ परिवारजनैः सर्वैस्त्यक्तो राज्ञो भयादिति ॥२४॥ लुम्पकोऽपि तदा त्यक्तश्चिन्तयामास चैकलः॥ मयाऽत्र किं प्रकर्त्तव्यं त्यक्तेन पितृबान्धवैः ॥२५॥ इति चिन्तापरोभूत्वा मतिं पापे तदाऽकरोत्॥ मया तु गमनं कार्यं वने त्यक्त्वा पुरीं पितुः ॥२६॥ दिवा वने चरिष्यामि रात्रावपि पितुः पुरे॥

मुझे परिवार एवं बन्धुओं ने छोड़ दिया है, अब मेरा क्या कर्त्तव्य है। इस प्रकार की चिन्ता में मगन हो अपनी बुद्धि को पाप में संलग्न कर सोचने लगा कि मैं दिन में जंगल में रहूंगा, रात को नगर में प्रवेश कर पिता के धन को चुरा कर ले जाऊँगा। इस प्रकार दुर्मति, सदा पाप से लिप्त रहने वाला वह लुम्बक सघन वन में चले गया। वह पापी प्रतिदिन जीवों की हत्या करने एवं लोगों के धन को हरण करने लगा। चोरी करते हुए जब गृहस्थी लोग उसे पकड़ भी लेते, तो राजा के भय से छोड़ देते। जन्म-जन्मान्तर के पापों के कारण वह पापी सदैव के लिये राज्य से भ्रष्ट हो गया। वह लुम्बक नित्य मांस का सेवन करता था और जंगल के फलों को खाता

तस्माद्वनात्पितुःसर्वं व्यापयिष्ये पुरं निशि ॥२७॥ इत्येवं स मतिं कृत्वा लुम्पको दैवपातितः ॥
निर्जगाम पुरात्तस्माद्गतोऽसौ गहनं वनम् ॥२८॥ जीवघातकरो नित्यं नित्यं स्तेयपरायणः ॥
सर्वं च नगरं तेन मुषितं पापकर्मणा ॥२९॥ गृहीतश्च परित्यक्तो राज्ञो माहिष्मतेर्भयात् ॥
जन्मान्तरीयपापेन राज्यभ्रष्टः स पापकृत् ॥३०॥ आमिषाभिरतो नित्यं नित्यं वै फलभक्षकः ॥
आश्रमस्तस्य दुष्टस्य वासुदेवस्य सम्मतः ॥३१॥ अश्वत्थो वर्तते तत्र जीर्णो बहुलवार्षिकः ॥
देवत्वं तस्य वृक्षस्य वर्तते तद्वने महत् ॥३२॥ तत्रैव निवसंश्चासौ लुम्पकः पापबुद्धिमान् ॥
एवं कालक्रमेणैव वसतस्तस्य पापिनः ॥३३॥ दुष्कर्मनिरतस्यास्य कुर्वतः कर्म निन्दितम् ॥
पौषस्य कृष्णपक्षे तु सम्प्राप्तं सफला दिनम् ॥३४॥ दशमीदिवसे राजन् निशायां शीतपीडितः ॥

था। जिस स्थान पर वह लुम्बक रहता था, वहां बहुत वर्षों पुराना पीपल का महान् वृक्ष था। उस जंगल में भी वह वृक्ष देवता भाव को प्राप्त हो गया था। इस प्रकार अनेक वर्षों तक उस पीपल के वृक्ष के नीचे रहते हुये समय व्यतीत करता रहा। दुष्कर्म एवं निन्दित कर्म को करते हुए एक दिन पौष मास के कृष्ण पक्ष की सफला एकादशी का समय आ गया। दशमी की रात्रि को वस्त्रहीन होने से ठण्ड के कारण पीपल वृक्ष के नीचे वह बेहोश हो गया। शीत के कारण इतना कष्ट हुआ कि सारी रात उसको नींद भी नहीं आई और ऐसी स्थिति हो गई जैसे प्राण निकलने वाले हों। रात की ठंडक से दांत भी बजने लगे। इसी हालत में उसकी सारी रात व्यतीत

लुम्पको वस्त्रहीनो वै निश्चेष्टो ह्यभवत्तदा ॥३५॥ पीड्यमानस्तु शीतेन अश्वत्थस्य समीपतः।
न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत् ॥३६॥ पीडयन्दशनैर्दन्तानेवं च गमिता निशा॥
भानूदयेऽपि तस्याथ न संज्ञा समजायत ॥३७॥ लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलादिवसे तदा॥
मध्याह्नसमये प्राप्ते संज्ञां लेभे स लुम्पकः ॥३८॥ प्राप्तसंज्ञो मुहूर्तेन चोत्थितोऽसौ तदाऽऽसनात्॥
प्रस्खलश्च पदन्यासैः पंगुवच्चलितो मुहुः ॥३९॥ वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्तृषापीडितोऽभवत्॥ न
शक्तिर्जीवघातेऽस्य लुम्पकस्य दुरात्मनः ॥४०॥ फलानि भूमौ पतितान्याजहार स लुम्पकः।
यावत्स चागतस्तत्र तावदस्तमगाद्रविः ॥४१॥ किं भविष्यति तातेति विललापातिदुःखितः॥
फलानि तानि सर्वाणि वृक्षमूले न्यवेदयत् ॥४२॥ प्रत्युवाचफलैरेभिः प्रीयतां भगवान् हरिः॥

हो गई। सफला एकादशी के प्रातःकाल भी सूर्य निकलने पर उसको होश नहीं आई। मध्याह्न काल में सूर्य के ताप में उसको कुछ चेतना हुई। चैतन्य होने पर क्षणभर के पश्चात् धीरे-धीरे उठते हुए पग-पग पर लंगड़ाते हुए चलने लगा। क्षुधा और प्यास से पीड़ित हो जाने पर भी जीव हत्या करने की शक्ति नहीं रही। भूमि पर पड़े हुए फलों को उठाकर ले आया। जंगल से लौट कर जब वह वापिस आया तो सूर्य अस्ताचल को चले गया था। उठाये हुए फलों को उसने वृक्ष के मूल में रख दिया। दुःखी होकर विलाप करने लगा। हे पिता, हे तात, पता नहीं अब इस जीवन का क्या होगा। लाचार होकर कहने लगा, इन फलों से भगवान हरि प्रसन्न हों।

उपविष्टो लुम्पकश्च निद्रां लेभे न वै निशि ।।४३ ।। तेन जागरणं जातं भगवान् मधुसूदनः ।।
फलानां पूजनं मेने सफलायास्तथा व्रतम् ।।४४।। कृतमेवं लम्पकेन ह्यकस्माद्व्रतमुत्तमम् ।
तेन व्रतप्रभावेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।।४५ ।। पुण्यांकुरोदयाद्राजन् यथा प्राप्तं तथा शृणु ।।
रविरुदयवेलायां दिव्योऽश्वश्चाजगाम ह ।।४६ ।। दिव्यवस्तुपरावारो लुम्पकस्य समीपतः ।।
तस्थौ स तुरगो राजन् वागुवाचाशरीरिणी ।।४७ ।। प्राप्नुहि त्वं नृपसुत स्वं राज्यं हतकण्टकम् ।।
वासुदेवप्रसादेन सफलायाः प्रभावतः ।।४८ ।। पितुः समीपं गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।।
तथेत्युक्त्वा त्वसौ तत्र दिव्यरूपधरोऽभवत् ।।४९ ।। कृष्णे मतिश्च तस्यासीत्परमा वैष्णवी

लुम्बक उस रात भी सर्दी के कारण जागता रहा। उस जागरण से भगवान मधुसूदन ने सफला एकादशी का व्रत और फलों के पूजन को स्वीकार कर लिया। इसके कारण उस व्रत के प्रभाव से उस लुम्बक को अकस्मात् राज्य की प्राप्ति हो गई। हे राजन्, पुण्य का अंकुर जैसे उदय होकर लुम्बक को मिला, वह सुनिये। दूसरे दिन सूर्य उदय होने पर एक दिव्य अश्व उस लुम्बक के सामने आकर खड़ा हो गया। उसी समय आकाश से वाणी हुई, हे राजपुत्र, भगवान वसुदेव की कृपा एवं सफला एकादशी के प्रभाव से तेरा राज्य अकण्टक होगा। तुम पिता के समीप जाओ और राज्य के भोगों को भोगो। उसने अपनी बुद्धि को भगवान विष्णु के चरणों में लगा दिया। दिव्य आभूषणों से विभूषित हो पिता को नमस्कार कर घर में रहने लगा। उस वैष्णव ने बहुत समय तक

तथा ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यस्तातं नत्वा स्थितो गृहे ॥५०॥ वैष्णवाय ततो दत्तं पित्रा राज्यमकण्टकम् ॥ कृतं राज्यं तु तेनैव वर्षाणि सुबहून्यपि ॥५१॥ हरिवासरतल्लीनो विष्णु-भक्तिरतः सदा ॥ मनोज्ञास्तस्य पुत्राः स्युर्दाराः कृष्णप्रसादतः ॥५२॥ ततः स वार्धके प्राप्ते राज्यं पुत्रे निवेश्य च ॥ वनं गतः संयतात्मा विष्णुभक्तिपरायणः ॥५३॥ साधयित्वा तथात्मानं विष्णुलोकं जगाम ह ॥ गतः कृष्णस्य सान्निध्ये यत्र गत्वा न शोचति ॥५४॥ एवं ये वै प्रकुर्वन्ति सफला एकादशीव्रतम् ॥ इह लोके यशः प्राप्य मोक्षं यास्यन्त्यसंशयम् ॥५५॥ धन्यास्ते मानवाः लोके सफलाव्रतकारिणाः ॥ तस्मिञ्जन्मनि ते मोक्षं लभन्ते नात्र संशयः ॥५६॥ सफलायाश्च माहात्म्यं श्रवणाद्धि विशाम्पते ॥ राजसूयफलं प्राप्य वसेत् स्वर्गे च मानवः ॥५७॥

राज्य किया। हरिवासर में विष्णु भक्ति में लीन रहने लगा। भगवान नारायण की कृपा से उसको सुन्दर स्त्री की प्राप्ति हुई और सुन्दर पुत्र मिला। इसके पश्चात् वृद्ध अवस्था प्राप्त होने पर अपने राज्य को पुत्र को सौंप कर स्वयं विष्णु भक्ति में संलग्न होकर स्त्री के साथ वन में रहने लगा और अपने मन को वश में करके विष्णुलोक को प्राप्त हुआ। इसलिये सफला एकादशी का जो व्रत करेंगे वे इस लोक में यश एवं परलोक में मोक्ष को प्राप्त करेंगे। सफला एकादशी का व्रत करने वाले संसार में धन्य हैं। वे इसी जन्म में मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

यह पौष कृष्ण पक्ष की सफला एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

४. पौष मास के शुक्लपक्ष पुत्रदा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा॥ कथयस्व प्रसादेन शुक्ला पौषस्य या भवेत्॥१॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते। कस्मै तुष्टौ हृषीकेशः त्वमेव पुरुषोत्तम॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत्॥ तस्याः विधिं महाराज लोकानां च हिताय वै॥३॥ पूर्वेण विधिना राजन् कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः॥ पुत्रदेति च नाम्नाऽसौ सर्वपापहरा परा॥४॥ नारायणोऽधिदेवोऽस्याः कामदः सिद्धिदायकः॥ नातः परतरा काचित् त्रैलोक्ये सचराचरे॥५॥ विद्यावन्तं यशस्वन्तं करोति च नरं हरिः॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम्॥६॥ पुरी भद्रावती नाम्नी राजा तत्र

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण, आपने सफला एकादशी के माहात्म्य को कहा है, अब पौष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी की महिमा कहिये। उसका क्या नाम है और उसकी क्या विधि है। किस देवता की पूजा की जाती है। हे पुरुषोत्तम, आप किस एकादशी से प्रसन्न होते हैं। तब श्री कृष्ण जी बोले, हे राजन्, लोगों के उपकार के लिये पौष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी की विधि को कहता हूं। हे राजन् इस व्रत को पहले बताई गई विधि के अनुसार ही करना चाहिये। इसका नाम पुत्रदा एकादशी है। यह समस्त पापों को हरने वाली है।

सुकेतुमान्॥ तस्य राज्ञोऽथ राज्ञी च शैव्या नाम्नीति विश्रुता॥७॥ पुत्रहीनेन राज्ञा च कालो नीतो मनोरथैः॥ नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्त्तारमेव च॥८॥ तेनैव राज्ञा धर्मेण चिन्तितं बहुकालतः॥ किं करोमि क्व गच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत्॥९॥ न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान्॥ शैव्यया कान्तया सार्द्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवन्॥१०॥ तावुभौ दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ॥ पितरस्तु जलं दत्तु कवोष्णमुपभुञ्जते॥११॥ राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्मान्सन्तर्पयिष्यिति॥ इत्येवं संस्मरन्तोऽस्य पितरो दुःखिनोऽभवन्॥१२॥ तेषां तद्दुःखमूलं च ज्ञात्वा राजाऽप्यतप्यत॥ न बान्धवा न मित्राणि नामात्याः सुहृदस्तथा॥१३॥ रोचन्ते तस्य भूपस्य न गजाश्वपदातयः॥ नैराश्यं भूपतेस्तस्य मनस्येवमजायत॥१४॥ नरस्य पुत्रहीनस्य

सिद्धिको एवं काम को देने वाले नारायण इसके देवता हैं। चर और अचर तीन लोकों में इससे अधिक फल देने वाला कोई नहीं है। हे राजन्, पापों को हरण करने वाली जिस कथा के सुनने और करने से नारायण भगवान् मनुष्य को विद्वान् एवं यशस्वी कर देते हैं, उस कथा को सुनो। पहले भद्रावती नाम की पुरी थी, वहां सुकेतु नाम राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम शैव्या था। पुत्रहीन उस राजा ने सन्तान के लिये अनेक मनोरथों के साथ समय व्यतीत किया, परन्तु उसके सन्तान नहीं हुई। इसलिये राजा चिरकाल तक धर्म की चिन्ता करता रहा। किस उपाय से सन्तान हो, किस कार्य को करने से पुत्र की प्राप्ति हो, कहां जाऊँ, क्या करूँ, किस उपाय

नास्ति वै जन्मनः फलम् ॥ अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा ॥१५ ॥ पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः ॥१६ ॥ इह लोके यशस्तेषां परलोके शुभा गतिः ॥ येषां तु पुण्यकर्तॄणां पुण्यं जन्मशतोद्भवम् ॥१७ ॥ आयुरारोग्यसम्पच्च तेषां गेहे प्रवर्तते ॥ पुत्राः पौत्राश्च लोकाश्च भवेयुःपुण्यकर्मणाम् ॥१८ ॥ पुण्यं विना न च प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना तथा ॥ पुत्राणां सम्पदो वाऽपि विद्यायाश्चेति मे मतिः ॥१९ ॥ एवं विचिन्त्यमानोऽसौ राजा शर्म न लब्धवान् ॥ प्रत्यूषेऽचिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्तथा ॥२० ॥ ततश्चात्मविनाशं वै विचार्याऽथ सुकेतुमान् ॥ आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः ॥२१ ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मदेहं प्रक्षीणमपुत्रत्वं तथैव च ॥ पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या ह्यात्मनो हितकारणम् ॥२२ ॥

से सन्तति हो, इसकी चिन्ता करता रहा। राष्ट्र और पुर में उसको सुख दिखाई नहीं दिया। इसी कारण अपनी पत्नी शैव्या के साथ दुःखी रहता था। रानी और राजा नित्य चिन्ता एवं शोक में मग्न रहते थे। पितरों को दिया गया जल भी गरम ही रहता था। राजा को यह चिन्ता थी कि हमारे मर जाने पर इस राज्य के भार को कौन उठाएगा। कौन हमारा तर्पण करेगा। इस प्रकार पितर भी दुःखी थे कि इस राजा के बाद हमें कौन जल देगा। पितरों के दुःख से भी राजा दुःखी था। राजा अपने मन से बहुत निराश हो गया था। अनेक प्रकार के उपायों में फंसा हुआ राजा कभी आत्मघात की सोचता, कभी आत्मा के हित के बारे में विचार करता रहता। एक दिन राजा घोड़े पर

अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम्॥ पुरोहितादयः सर्वे न जानन्ति गतं नृपम्॥२३॥
गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते। विचचार तदा तस्मिन् वने वृक्षान् विलोकयन्॥२४॥
वटानश्वत्थ-बिल्वांश्च खर्जूरान् पनसांस्तथा॥ बकुलान् सप्तपर्णांश्च तिन्दुकांस्तिलका-
नपि॥२५॥ शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः। इङ्गुदीककुमांश्चैव श्लेष्मातक-
विभीतकान्॥२६॥ शल्लकीकरमर्दांश्च पाटलान् खदिरानपि॥ शाखाश्चैव पलाशांश्च
शोभितान् ददृशे पुनः॥२७॥ मृगव्याघ्रवराहांश्च सिंहाञ्छाखामृगानपि॥ ददर्श भुजगान् राजा
वल्मीकादभिनिस्सृतान्॥२८॥ तथा वनगजान् मत्तान् कलभैः सह संगतान्॥ गवयान्
कृष्णसारांश्च श्रृगालाञ्छशकानपि॥२९॥ वनमार्जारकान् क्रूरान् भल्लूकांश्चमरानपि॥

चढ़ कर घोर जंगल की ओर चल पड़ा। वन में जाने की बात अपने पुरोहित मन्त्री आदि से भी नहीं की। मृग आदि पक्षियों से युक्त उस गंभीर वन में वृक्षों को देखता हुआ घूमने लगा। अनेक प्रकार के वृक्षों को राजा ने देखा, अनेक प्रकार के हिंसक जानवरों को भी देखा। विह्वल मन से घूमते हुए दोपहर का समय हो गया। भूख-प्यास के व्याकुल इधर-उधर घूमने लगा। राजा अपने मन में सोचने लगा कि मैंने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण मैं इतना दुःख भोग रहा हूं। मैंने देवताओं की पूजा की है, यज्ञ किये हैं, मिष्ठान एवं दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया है। हर समय मैंने सन्तान की तरह प्रजा का पालन किया है। फिर मुझे

यूथपांश्च चतुर्दन्तान् करिणीगणमध्यगान् ॥३०॥ तान् दृष्ट्वा चिन्तयामास आत्मनः स गजान् नृपः॥ तेषां स विचरन् मध्ये राजा शोकमवाप ह ॥३१॥ महदाश्चर्य-संयुक्तं ददर्श विपिनं नृपः॥ क्वचिच्छिवारुतं शृण्वन्नुलूकविरुतं तथा ॥३२॥ तांस्तान् पक्षिगणान् पश्यन् बभ्राम वनमध्यगः॥ एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यगते रवौ ॥३३॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति॥ चिन्तयामास नृपतिः संशुष्कगल-कन्धरः ॥३४॥ मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम्॥ मया च तोषिता देवाः यज्ञैः पूजाभिरेव च ॥३५॥ तथैव ब्राह्मणा दानैस्तोषिता मिष्ठान्नभोजनैः॥ प्रजाश्चैव यथाकालं पुत्रवत्परिपालिताः ॥३६॥ कस्माद्दुखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत्॥ इति चिन्तापरो राजा जगामाथाऽग्रतो वनम् ॥३७॥ सुकृतस्य प्रभावेण सरो

ऐसा दुःख किस कारण से मिला। इसी चिन्ता में डूबा हुआ राजा उदास होकर घोर जंगल में चला गया। आगे जाकर पुण्य के प्रभाव से कुमुदिनी से सुशोभित मान सरोवर के समान एक मनोहर सरोवर को देखा, जिसमें बहुत से मगर, मछलियां जलचर थे, खिले हुए कमलों से सुशोभित था, राजहंस, चकोर, चक्रवातों से शोभायमान था। सरोवर के समीप राजा ने मुनियों के आश्रमों को देखा। राजा को शुभ लक्षण दिखाई देने लगे, राजा का दाहिना नेत्र और दाहिनी भुजा फड़कने लगे। शुभ लक्षणों के कारण सरोवर के तट पर मुनियों को वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए देखा। घोड़े से उतर कर राजा उन मुनियों के समक्ष खड़े हो गए फिर व्रत करने

दृष्टं मनोरमम्।। मानसं स्पर्धमानं च पद्मिनीपरिशोभितम्।।३८।। कारण्डवैश्चक्रवाकैः राजहंसैश्च नादितम्। मकरैर्बहुभिर्युक्तं मत्स्यैर्जलचरैर्युतम्।।३९।। समीपे सरसस्तत्र मुनीनामाश्रमान् बहून्।। ददर्श राजा लक्ष्मीवान्निमित्तैः शुभशंसिभिः।।४०।। सव्यात्परतरं चक्षुरपसव्यस्तथाकरः।। स्फुरितस्तस्य राज्ञश्च शंसतिं शुभलक्षणम्।।४१।। तस्य तीरे मुनीन् दृष्ट्वा कुर्वाणान्नैगमं जपम्।। अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः।।४२।। पृथक्पृथक् वबन्दे स मुनींस्ताञ्शंसितव्रतान्।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च प्रणम्य सः।।४३।। हर्षेण महताऽऽविष्टो बभूव नृपसत्तमः।। तमूचुस्तेऽपि मुनयः प्रसन्नाः स्मो वयं तव।।४४।। कथयस्वाद्य वै राजन् यत्ते मनसि वर्तते।। राजोवाच।। के यूयमुग्रतपसः का आख्या भवतामपि।। किमर्थमागता यूयं वदन्तु मम तत्त्वतः। मुनयुः ऊचुः।। विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह

वाले मुनियों को पृथक्-पृथक् हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम किया। प्रणाम करके राजा बहुत प्रसन्न हुआ। मुनिगण भी प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे, हे राजन्, तुम्हारी जो इच्छाएं हैं उन्हें कहो। यह सुनकर राजा कहने लगा, हे तपस्वियो, आप कौन हैं, आपका क्या नाम है, किस लिये आप आये हैं। मुनि बोले, हे राजन्, हम विश्वदेव हैं। स्नान के लिये यहां आए हैं। आज से पांचवें दिन मकर संक्रान्ति अर्थात् माघ का आरम्भ होने जा रहा है। आज पुत्रदा नाम की एकादशी है। यह पौषमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी पुत्र की इच्छा करने वाले

चागताः ॥ माघो निकटमायात एतस्मात्पंचमेऽहनि ॥४५ ॥ अद्य ह्येकादशी राजन्पुत्रदा नाम नामतः ॥ पुत्रं ददात्यसौ शुक्ला पुत्रदा पुत्रमिच्छताम् ॥४६ ॥ राजोवाच ॥ एष वै संशयो मह्यं सुतस्योत्पादने महान्॥ यदि तुष्टा भवन्तो मे पुत्रो वै दीयतां तदा ॥४७॥ मुनयः ऊचुः ॥ अस्मिन्नेव दिने राजन्पुत्रदा नाम वर्त्तते ॥ एकादशीति विख्याता क्रियतां व्रतमुत्तमम् ॥४८ ॥ आशीर्वादेन चास्माकं केशवस्य प्रसादतः ॥ अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति ॥ इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतं शुभम् ॥४९ ॥ द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः ॥५० ॥ आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भं समादधौ ॥ मुनीनां वचनेनैव पुत्रदायाः प्रभावतः ॥५१ ॥ पुत्रो जातस्तथा काले तेजस्वी पुण्यकर्मकृत्॥ पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः ॥५२ ॥

को पुत्र देती है। राजा बोले, हे विश्वेदेवो, पुत्र के उत्पन्न होने में मुझे बहुत सन्देह है। आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पुत्र प्राप्ति का वर दीजिए। मुनि बोले, हे राजन्, आज ही के दिन पुत्रदा नाम की विख्यात एकादशी है, आज इसका व्रत कीजिए, हमारे आशीर्वाद से और भगवान् की कृपा से अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी। इस प्रकार उन मुनीश्वरों के वचन से राजा ने उत्तम व्रत किया और द्वादशी के दिन राजा ने पारणा करके बारम्बार मुनीश्वरों को प्रणाम किया, फिर अपने घर वापिस आया। व्रत के कारण राजा की पत्नी गर्भवती हुई और समय पर तेजस्वी तथा पुण्य कर्म करने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पिता को सन्तुष्ट कर प्रजा पालन में संलग्न हुआ। भगवान

एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्त्तव्यं पुत्रदा-व्रतम् ॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥५३ ॥
एतद् व्रतं तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदाभिधम् ॥ तेषां चैव भवेत्पुत्रो ह्यवश्यं मोक्षभागिनाम् ॥५४ ॥
पठानाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥५५ ॥

बोले, हे राजन्, इस कारण से पुत्रदा एकादशी का व्रत करना चाहिये, सब के हित के लिये मैने तुम्हें इसकी महिमा कही है। जो मनुष्य इस एकादशी का व्रत करते हैं उन मोक्षगामी मनुष्यों को अवश्य पुत्र की प्राप्ति होती है। हे राजन्, इसके पढ़ने एवं व्रत करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल की प्राप्ति होती है।

पौष मास के शुक्ल की पुत्रदा एकादशी की कथा पूर्ण हुई ॥

५. माघ कृष्णपक्ष षट्तिला एकादशी

दालभ्य उवाच ॥ मर्त्यलोके तु संप्राप्ताः पापं कुर्वन्ति जन्तवः ॥ ब्रह्महत्यादिपापैश्च ह्यन्यैश्च विविधैर्युताः ॥१ ॥ परद्रव्यापहाराश्च परव्यसनमोहिताः ॥ कथं न यान्ति नरकान् ब्रह्मंस्तद् ब्रूहि तत्त्वतः ॥२ ॥ अनायासेन भगवन्दानेनाल्पेन केनचित् ॥ पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तु-

दालभ्य ऋषि बोले, कि मर्त्यलोक में जीव पाप करते हैं, ब्रह्महत्या आदि दुष्कृत्य करते हैं, दूसरे के धन का अपहरण करते हैं, दूसरों के व्यसनों से मोहित होते हैं। हे ब्राह्मण, ऐसे मनुष्यों को नरक से बचने का उपाय

मर्हसि ॥३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ साधु साधु महाभाग गुह्यमेतदुदाहृतम् ॥ यन्न कस्यचिदाख्यातं ब्रह्मविष्णिवन्द्रदैवतैः ॥४ ॥ तदहं कथयिष्यामि त्वया पृष्टो द्विजोत्तम ॥ ततो माघे तु संप्राप्ते शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ॥५ ॥ कामक्रोधाभिमानेर्ष्यालोभपैशून्यवर्जितः ॥ देवदेवं च संस्मृत्य पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ॥६ ॥ भूमावपतितं ग्राह्यं गोमयं तत्र मानवः ॥ तिलान् प्रक्षिप्य कार्पासं पिण्डकांश्चैव कारयेत् ॥७ ॥ अष्टोत्तरशतं चैव नात्र कार्या विचारणा ॥ ततो माघे च संप्राप्ते ह्यादौ चैव भवेद्यदि ॥८ ॥ मूले वा कृष्णपक्षस्यैकादश्यां नियतं ततः ॥ गृह्णीयात्पुत्रफलदं विधानं तत्र मे शृणु ॥९ ॥ देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ॥ कृष्णनामानि संकीर्त्य क्षुज्जृंभासु

कहिये। जो छोटे से प्रयास करने से पाप शान्त हो जाएं। पुलस्त्य मुनि बोले, हे महाभाग, आपने बहुत अच्छी बात पूछी। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं ने भी इस रहस्य को कभी नहीं कहा। हे द्विजोत्तम, तुम्हारे पूछने पर गुप्त व्रत को मैं तुम से कहता हूं। माघ मास के आने पर शुद्ध हो, स्नान करके, जितेन्द्रिय होकर, काम, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लोभ और चुगली से बचकर भगवान विष्णु का स्मरण कर भूमि पर न गिरा हुआ गोबर लेकर उसमें तिल एवं कपास मिलाकर गोल-गोल पिंड बनावें। उसके बाद माघ मास आने पर आरम्भ से ही नियमपूर्वक रहे। माघ कृष्ण पक्ष की एकादशी से पुत्र रूप फल को देने वाले नियम को ग्रहण करें, स्नान करके शुद्ध मन से देवों के देव भगवान् नारायण का पूजन करें, जंभाई या छींक आने पर कृष्ण के नाम का कीर्तन करें

च सर्वदा ॥१०॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्रात्रौ होमं च कारयेत्॥ अर्चयेद्देवदेवेशं शंखचक्रगदा-धरम्॥११॥ चन्दनागरुकर्पूरैनैवेद्यैः शर्करादिभिः॥ संस्मृत्य नाम्ना च ततः कृष्णाख्येन पुनः पुनः॥१२॥ कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च ह्यथवा बीजपूरकैः॥ सर्वाभावेऽपि विप्रेन्द्र शस्तं पूगीफलं तदा॥१३॥ अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम्॥ कृष्ण कृष्ण कृपालो त्वमगतीनां गतिप्रद॥१४॥ संसारार्णवमग्नानां प्रसीद परमेश्वर॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्व-भावन॥१५॥ सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥ गृहाणर्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते॥१६॥ ततस्तु पूजयेद्विप्रमुदककुम्भं प्रदापयेत्॥ छत्रोपानहवस्त्रैश्च कृष्णो मे प्रीयता-

और रात्रि में जागरण करें और रात में ही उन एक सौ आठ पिंडों से हवन करें, हवन करते हुए देव देवेश भगवान् का ध्यान करें। चन्दन, अगर, कपूर तथा शर्करा आदि नैवेद्य से भगवान् का पूजन करें। शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण करने वाले नारायण को नारियल या सुपारी भेंट करके अर्घ्य प्रदान करे। भगवान् से प्रार्थना करे, हे कृष्ण, हे कृपालो, तुम गतिरहित लोगों को गति प्रदान करने वाले हो, संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए मनुष्य पर प्रसन्न हो। हे पुण्डरीकाक्ष, हे विश्वभावन तुम को नमस्कार है। हे महापुरुष, हे पूर्वज, हे सुब्रह्मण्य मेरे द्वारा दिये गए अर्घ्य को लक्ष्मी सहित ग्रहण करो। उसके बाद छाता, जूता तथा वस्त्र लेकर ब्राह्मण का पूजन करे। हे कृष्ण, आप मुझ पर प्रसन्न हों, ऐसा कह कर जल से भरा घट दान करें। हे मुने, स्नान में श्वेत तिल तथा

मिति ॥१७॥ कृष्णा धेनुः प्रदातव्या यथाशक्त्या द्विजोत्तम। तिलपात्रं द्विजश्रेष्ठाय दद्यात्तत्र विचक्षणः ॥१८॥ स्नानप्राशनयोः शस्ताः श्वेताः कृष्णास्तिला मुने॥ तान् प्रदद्यात्प्रयत्नेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥१९॥ तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गेलोके महीयते॥ तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥२०॥ तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशकाः ॥ नारद उवाच॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो नमस्ते भक्तभावन ॥२१॥ षट्तिलैकादशीभूतं कीदृशं फलमश्नुते॥ सोपाख्यानं मम ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि यादव ॥२२॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु ब्रह्मन्यथावृत्तं दृष्टं तत्कथयामि ते॥ मृत्युलोके पुरा ह्यासीद् ब्राह्मणी तत्र नारद ॥२३॥ व्रतचर्यरता नित्यं देवपूजारता

भोजन में काले तिल उत्तम हैं। वैसे दोनों प्रकार के तिल उत्तम हैं। हे द्विजोत्तम, तिल में स्नान करना, तिल पीस कर उबटन मलना, तिल को होम करना, तिल मिला कर जल पीना, तिल का भोजन करना, तिल का दान करना, यह छः प्रकार का तिल पापों को नाश करता है। जितने तिलों का दान करे, उतने हज़ार वर्ष तक स्वर्ग लोक में आनन्द से रहे। नारद जी कहने लगे, हे कृष्ण, महावाहो, हे भक्तभावन, आप को नमस्कार है। षट्तिला एकादशी से उत्पन्न फल कैसे प्राप्त होता है, हे यदुकुल भूषण इसका उपाख्यान मुझसे कहें। श्री कृष्ण बोले, हे नारद, पहले समय में मृत्यु लोक में एक ब्राह्मणी रहती थी। वह सदा व्रतों को करने में एवं देव पूजन करने में ही समय व्यतीत करती थी। वह भक्त स्त्री महीने भर के व्रत करने में तत्पर रहती थी। हे नारद, सदा व्रत

सदा ॥ मासोपवासनिरता मम भक्ता च सर्वदा ॥२४ ॥ कृष्णोपवाससंयुक्ता मम पूजापरायणा ॥
शरीरं क्लेशितं नित्यमुपवासैर्द्विजोत्तम ॥२५ ॥ दीनानां ब्राह्मणानां च कुमारीणां च भक्तितः ॥
गृहादिकं प्रयच्छन्ती सर्वकालं महामतिः ॥२६ ॥ अतिकृच्छ्ररता सा तु सर्व कालेषु वै द्विज ॥
शुद्धमस्याः शरीरं हि व्रतैः कृच्छ्रैर्न संशयः ॥२७ ॥ अर्थिनं वैष्णवं लोकं कायक्लेशेन वै तया ।
न दत्तमन्नदानं हि येन तृप्तिः परा भवेत् ॥२८ ॥ एतज्जिज्ञासया ब्रह्मन्मृत्युलोकमुपागतः ॥
कापिलं रूपमास्थाय भिक्षापात्रेण याचिता ॥२९ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ कस्मात्त्वमागतो ब्रह्मन्वद
यस्मात्समागतः ॥ पुनरेव मया प्रोक्तं देहि भिक्षां च सुन्दरि ॥३० ॥ तया कोपेन महता मृत्पिण्ड-

करने से उसका शरीर शिथिल पड़ गया था। वह अति भक्तिमती, बुद्धिमती, स्त्री दीन-ब्राह्मणों को और कुमारियों को यथा शक्ति दान देती रहती थी। हे द्विज, वह अति कठिन व्रतों में तत्पर व्रतों को करने से तन, मन से शुद्ध हो गई थी। इसमें कोई संशय नहीं है। परन्तु उसने काया क्लेश से किसी वैष्णव ब्राह्मण को अन्नदान नहीं दिया था, जिससे उसकी तृप्ति हो सकती। हे नारद, इस जिज्ञासा से मैंने मृत्यु लोक में जाकर कपिल ब्राह्मण का रूप धारण कर भिक्षापात्र हाथ में लेकर उससे भिक्षा मांगी। ब्राह्मणी बोली, हे ब्राह्मण, तुम कहां से आये हो? मैंने उससे फिर कहा, हे सुन्दरी मुझे भिक्षा दो, उसने क्रोध में आकर मुझे मिट्टी का पिण्ड दे दिया। उसे लेकर हम वापिस आ गये। बहुत काल के पश्चात् व्रत करने वाली वह तापसी व्रत के प्रभाव से स्वर्ग लोक

स्ताम्रभाजने ॥ क्षिप्तो यावत्तया देव्या पुनः स्वर्गं गतो द्विज ॥३१ ॥ ततः कालेन महता तापसा सुमहाव्रता। कदाचित्स्वर्गमायाता व्रतचर्यप्रसादतः ॥३२ ॥ मृत्पिण्डस्य प्रभावेण गृहं प्राप्तं मनोरमम् ॥ संजातं चैव विप्रर्षे धान्यकोषादिवर्जितम् ॥३३ ॥ गृहं यावन्निरीक्षेत न किंचित्तत्र पश्यति ॥ तावद्गृहाद्विनिष्क्रान्ता ममान्ते चागता द्विज ॥३४ ॥ क्रोधेन महताविष्टा त्विदं वचनम ब्रवीत् ॥ मया व्रतैश्च कृच्छ्रैश्च उपावासैरनेकशः ॥३५ ॥ पूजयाऽऽराधितो देवः सर्वलोकस्य भावनः ॥ न धनं दृश्यते किंचिद् गृहे मम जनार्दन ॥३६ ॥ ततश्चोक्ता मया सा तु गृहं गच्छ यथागतम् ॥ आगमिष्यन्ति सुतरां कौतूहलसमन्विताः ॥३७ ॥ देवपत्न्यस्तु त्वां द्रष्टुं विस्मयेन समन्विताः ॥ द्वारं नोद्घाटनीयं हि षट्तिलापुण्यवाचनात् ॥३८ ॥ एवमुक्ता गता सा तु यदा वै

को गयी। मिट्टी के पिण्ड के प्रभाव से उसे सुन्दर घर तो मिला, मगर किसी प्रकार का धान्य नहीं था। शून्य घर से बाहर निकलकर वह मेरे पास आई। क्रोध से भरकर उसने कहा कि मैंने अनेक कृच्छ्र व्रत किये, जगत् के स्वामी श्री विष्णु का भक्तिपूर्वक पूजन किया है, परन्तु मेरे घर में किञ्चित भी धान्य नहीं है। तब मैंने उससे कहा,तुम शीघ्र अपने घर में जाओ, बड़े कौतुहल से तुम्हें देखने के लिये देवताओं की स्त्रियां आएंगी, विस्मययुक्त जब देव स्त्रियां आएं तो तुम अपना द्वार मत खोलना। उनसे षट्तिला एकादशी का पुण्य मांगना। मेरे कहने पर जब वह अपने घर गई तो देवपत्नियां वहां पहुंच गईं। उन्होंने कहा कि हे मानुषी तुम्हें देखने के

मानुषी तदा ॥ अत्रान्तरे समायाता देवपत्न्यश्च नारद ॥३९ ॥ ताभिश्च कथितं तत्र त्वां द्रष्टुं हि समागताः ॥ द्वारमुद्घाटय त्वं च पश्यामस्त्वां शुभानने ॥४० ॥ मानुष्युवाच ॥ यदि द्रष्टुं मया कार्यं सत्यं वाच्यं विशेषतः ॥ ददन्तु षट्तिलापुण्यं द्वारोद्घाटनकारणात् ॥४१ ॥ एकाऽपि तत्र नावादीत्षट्तिलाव्रतनाशतः ॥ अन्यया कथितं तत्र द्रष्टव्या मानुषी मया ॥४२ ॥ ततो द्वारं समुद्घाट्य दृष्ट्वा ताभिश्च मानुषी ॥ न देवी न च गन्धर्वी नासुरी न च पन्नगी ॥ दृष्टा पूर्वं मया नारी ईदृशी सा द्विजर्षभ ॥४३ ॥ रूपकान्तिसमायुक्ता क्षणेन समपद्यत ॥ धनं धान्यं च वस्त्रादि सुवर्णं रौप्यमेव च ॥४४ ॥ सर्वं गृहं सुसम्पन्नं षट्तिलायाः प्रसादतः । अतितृष्णा न कर्तव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥४५ ॥ आत्मवित्तानुसारेण तिलान्वस्त्रादि दापयेत् ॥ लभते

लिये हम आई हैं, अपना द्वार खोलो। मानुषी ने कहा, आप मुझे षट्तिला एकादशी का पुण्य दो, तो मैं द्वार खोलूंगी। षट्तिला एकादशी के व्रत से नष्ट हो जाने से वहां एक भी न बोली। उनमें से एक देवी ने कहा, हमें मानुषी देखनी है, इसलिये मैं पुण्य दूंगी। उसके बाद द्वार खोलकर उन्होंने मानुषी देखी, देवी नहीं है, गन्धर्वी नहीं है, न आसुरी है न पन्नगी है। हे द्विज श्रेष्ठ, पहले तो मुझे वह साधारण स्त्री दिखाई दी, फिर वह क्षणमात्र में ही रूप और कान्ति से युक्त हो गई। उसके घर में धन, धान्य, वस्त्र, सुवर्ण आदि सब हो गये। षट्तिला के प्रभाव से उसका घर सब वस्तुओं से सम्पन्न हो गया। हे द्विज, अति तृष्णा नहीं करनी चाहिये, धन की शठता के वर्जित रहे। अपनी

चैवमारोग्यं ततो जन्मनि जन्मनि ॥४६ ॥ दारिद्र्यं न च कष्टं वै न दौर्भाग्यमेव च ॥ न भवेद्वै-द्विजश्रेष्ठ षट्तिलाया उपोषणात् ॥४७ ॥ अनेन विधिना राजंस्तिलदानादसंशयः । मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा ॥४८ ॥ दानं च विधिना सम्यक् सर्वपापप्रणाशनम् । नानर्थभूतो नायासः शरीरे मुनि सत्तम ॥४९ ॥

सामर्थ्य के अनुसार तिल वस्त्र आदि दान करें, उससे जन्म-जन्म में आरोग्यता को प्राप्त होता है। दरिद्रता नहीं होती, न दुर्भाग्य होता है। हे द्विज श्रेष्ठ, षट्तिला का व्रत करने से नष्ट नहीं होता। तिल का दान करने से सब पातक छूट जाते हैं। तिल का दान सर्वश्रेष्ठ है।

माघ मास के कृष्ण पक्ष की षट्तिला एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ॥

६. माघ शुक्लपक्ष जया एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ साधु कृष्ण त्वया प्रोक्ता आदिदेव जगत्पते ॥ स्वेदजा अण्डजाश्चैव उद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥१ ॥ तेषां कर्ता विकर्त्ता च पालकः क्षयकारकः ॥ माघस्य कृष्णपक्षे

युधिष्ठर बोले, हे आदिदेव, हे कृष्ण, स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज ये चार प्रकार के सृष्टि के जीव हैं। उनके कर्ता, पालक और क्षय करने वाले आप ही हैं। माघ मास के कृष्ण पक्ष की षट्तिला एकादशी का माहात्म्य आपने कहा, अब माघ मास के शुक्ल पक्ष की कौन सी एकादशी होती है, उसे प्रसन्नता से कहिये।

तु षट्तिला कथिता त्वया ॥२ ॥ शुक्ले चैकादशी या च कथयस्व प्रसादतः ॥ किं नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते ॥३ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र शुक्ले माघस्य या भवेत् ॥ जया नाम्नीति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥४ ॥ पवित्रा पापहंत्री च पिशाचत्व-विनाशिनी ॥ न च तस्या व्रते चीर्णे प्रेतत्वं जायते नृणाम् ॥५ ॥ नातः परतरा काचित्पापघ्नी मोक्षदायिनी ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्येयं प्रयत्नतः ॥६ ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ पङ्कजे च पुराणेऽस्याः महिमा कथिता मया ॥७ ॥ एकदा नागलोके वै इन्द्रो राज्यं चकार ह । देवाश्च तत्र सौख्येन निवसन्ति मनोरमे ॥८ ॥ पीयूषपाननिरता ह्यप्सरोगणसेविताः ॥ नन्दनं तु वनं तत्र पारिजातोपशोभितम् ॥९ ॥ रमयन्ति रमंत्यत्र ह्यप्सरोभिर्दिवौकसः ॥ एकदा

इस पक्ष की एकादशी का क्या नाम है, उसकी क्या विधि है और उसमें किस देवता का पूजन होता है। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, माघ मास में होने वाले शुक्लपक्ष में सब पापों को हरने वाली जया नाम की विख्यात एकादशी होती है। वह पवित्र और पापों को दूर करने वाली और पिशाच योनि से छुड़ाने वाली है। उसका व्रत करने से मनुष्य प्रेत नहीं होता। इस के सिवाये और कई पापों को दूर करने वाली और मोक्ष को देने वाली नहीं है। हे राजन, इसलिये इसको यत्नपूर्वक इसे करना चाहिये। इस विषय में पुराण सम्बन्धी जो कथा है, उसको धैर्यपूर्वक सुनो। एक बार स्वर्ग लोक में इन्द्र राज्य करते थे और उस मनोहर स्थान में देवता सुख पूर्वक निवास

रममाणोऽसौ देवेन्द्रः स्वेच्छया नृप ॥१०॥ नर्तयामास हर्षात्स पञ्चाशत्कोटि नायिकाः ॥ गन्धर्वास्तत्र गायन्ति गन्धर्वः पुष्पदन्तकः ॥११॥ चित्रसेनश्च तत्रैव चित्र सेनसुता तथा ॥ मालिनीति च नाम्ना तु चित्रसेनस्य कामिनी ॥१२॥ मालिन्यां तु समुत्पन्नः पुष्पवानिति नामतः ॥ पुष्पदन्तस्य पुत्रो वै माल्यवान्नाम नामतः ॥१३॥ गन्धर्वी पुष्पवत्याख्या माल्यवत्यतिमोहिता ॥ कामस्य च शरस्तीक्ष्णैर्विद्धांगी सा बभूव ह ॥१४॥ तया भावैः कटाक्षैश्च माल्यवांश्च वशीकृतः । लावण्यरूपसम्पन्ना तस्या रूपं नृप शृणु ॥१५॥ बाहू तस्यास्तु कामेन कण्ठपाशौ कृताविव ॥ चन्द्रवद्वदनं तस्या नयने श्रवणायते ॥१६॥ कर्णौ तु शौभितौ तस्याः कुण्डलाभ्यां नृपोत्तम ॥ कम्बुग्रीवायुता चैव दिव्याभरणभूषिता ॥१७॥ पीनोन्नतौ कुचौ तस्या मुष्टिमात्रं

करते थे। अमृतपान करने में तत्पर और अप्सराओं के समूह का सेवन करने वाले थे। कल्प वृक्ष से सुशोभित वहां नन्दन वन था। वहां देवता अप्सराओं के साथ विहार करते थे। हे राजन, एक बार इन्द्र अपनी इच्छा से विहार कर रहे थे। वे एक बार बड़े आनन्द से पचास करोड़ नायिकाओं को नाच नचा रहे थे और पुष्पदन्त समेत सब गन्धर्व वहां गा रहे थे। वहां चित्रसेन गन्धर्व एवं चित्रसेन की लड़की तथा मालिनी नाम की चित्रसेन की पत्नी भी थीं और मालिनी से उत्पन्न पुष्पवान नामक चित्रसेन का पुत्र भी था। वहीं माल्यवान् नामक पुष्पदन्त का पुत्र भी था। वहां पुष्पवान् नाम के गन्धर्व की कन्या पुष्पवती माल्यवान् पर मोहित हो गई। वह

च मध्यमम् ॥ नितम्बौ विपुलौ तस्या विस्तीर्णं जघनस्थलम् ॥१८॥ चरणौ शोभमानौ तौ रक्तोत्पलसमुद्यतौ। ईदृश्या पुष्पवत्यां च माल्यवानतिमोहितः ॥१९॥ शक्रस्य परितोषाय नृत्यार्थं तौ समागतौ। गायमानौ च तौ तत्र ह्यप्सरोगणसंगतौ ॥२०॥ शुद्धं गानं न गायेतां चित्तभ्रम-समन्वितौ ॥ बद्धदृष्टी तथाऽन्योऽन्यं कामबाणवशं गतौ ॥२१॥ ज्ञात्वा लेखर्षभस्तत्र संगतं मानसं तयोः ॥ तालकालक्रियामानलोपाद्गीतावभुञ्जनात् ॥२२॥ चिन्तयित्वा तु मघवा ह्यवज्ञानं तथात्मनः ॥ कुपितश्च तयोरित्थं शापं दास्यन्निदं जगौ ॥२३॥ धिग्वां पापरतौ मूढावाज्ञाभंगकरौ मम ॥ युवां पिशाचौ भवतां दम्पतीरूपधारिणौ ॥२४॥ मृत्युलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जानौ कर्मणः फलम् ॥ एवं मघवता शप्तावुभौ दुःखितमानसौ ॥२५॥ हिमवन्तमनुप्राप्ता-

काम बाणों से विद्ध सी गई। उसने हाव-भाव दिखाकर कटाक्षों से माल्यवान् को वश में कर लिया। वह पुष्पवती सुन्दर एवं रूप में सम्पन्न थी। उसकी भुजायें जैसे काम के गले में डालने के लिये ही बनी हों। चन्द्रमा के समान उसका मुख था, उसके नेत्र कानों तक विस्तृत थे। उसके कान कुण्डलों से सुशोभित थे। दिव्य आभूषणों से भूषित उसका गला था। पुष्ट एवं ऊंचे कुच थे। मुट्ठी में आ जाए ऐसी उसकी कमर थी और बड़े भारी उसके नितम्ब थे और जघन स्थल विस्तीर्ण था। लाल कमल के समान सुन्दर उसके चरण थे। ऐसी सुन्दर लड़की पर माल्यवान् अत्यन्त मोहित हो गया। इन्द्र की प्रसन्नता के लिये वे दोनों नाचने लगे। अप्सराओं के

विन्द्रशापिविमोहितौ ॥ उभौ पिशाचतां प्राप्तौ दारुणं दुःखमेव च ॥२६ ॥ सन्तप्तमानसौ तत्र महाकृच्छ्रगतावुभौ ॥ गन्धं रसं च स्पर्शं न जानन्तौ विमोहितौ ॥२७॥ पीड्यमानौ तु दाहेन देहपातकरेण च॥ तौ न निद्रासुखं प्राप्तौ कर्मणा तेन पीडितौ ॥२८ ॥ परस्परं वादमानौ चेरतुर्गिरिगह्वरम् ॥ पीड्यमानौ तु शीतेन तुषारप्रभवेण तौ ॥२९ ॥ दन्तघर्षं प्रकुर्वाणौ रोमांचित-वपुर्धरौ ॥ ऊचे पिशाचः शीतार्त्तः स्वपत्नीं तां दुष्कृतकर्मणा ॥३० ॥ किमावाभ्यां कृतं पापमत्यन्तं दुःखदायकम् ॥ येन प्राप्तं पिशाचत्वं स्वेन दुष्कृतकर्मणा ॥३१ ॥ नरकं दारुणं मन्ये पिशाचत्वं च गर्हितम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैव समाचरेत् ॥३२ ॥ इति चिन्तापरौ तत्र ह्यास्तां दुःखेन कर्शितौ ॥ दैवयोगात्तयोः प्राप्ता माघस्यैकादशी सिता ॥३३ ॥ जया नाम्नीति विख्याता

समूहों में जाकर गाने लगे। उनका चित्त भ्रमित होने के कारण ठीक ढंग से गा नहीं रहे थे। काम के वाणों से वशीभूत परस्पर दृष्टि मिलने से शुद्धगान करने में असमर्थ रहे। उन दोनों के मन को परस्पर मिले देखकर लय और ताल की संगति न बैठने से, संगीत में विच्छेद के कारण इन्द्र ने अपना अपमान समझा। क्रोधित होकर उन दोनों को शाप दे दिया, मेरी आज्ञा को भंग करने वाले तुम दोनों अपराधी हो, इसलिये स्त्री–पुरुष रूप धारण कर दोनों पिशाच हो जाओ, मृत्युलोक में जाकर दोनों अपने किये का फल भोगो। इन्द्र के शाप से शापित वे दोनों हिमालय पर्वत में चले गये और दुःख को प्राप्त हुए। गन्ध, रस, स्पर्श को न जानते हुए वे दोनों कष्ट को

तिथिनामुत्तमा तिथिः ॥ तस्मिन्दिने तु सम्प्राप्ते तावाहारविवर्जितौ ॥३४॥ आसाते तत्र नृपते जलपानविवर्जितौ ॥ न कृतो जीवघातश्च न पत्रफलभक्षणम् ॥३५॥ अश्वत्थस्य समीपे तु पतितौ दुःखसंयुतौ ॥ रविरस्तं गतो राजंस्तथैव स्थितयोस्तयोः ॥३६॥ प्राप्ता चैव निशा घोरा दारुणा शीतकारिणी ॥ वेपमानौ तु तौ तत्र हिमेन च जडीकृतौ ॥३७॥ परस्परेण संलग्नौ गात्रयोर्भुजयोरपि ॥ न निद्रां न रतिं तत्र न तौ सौख्यमविन्दताम् ॥३८॥ एवं तौ राजशार्दूल शापेनेन्द्रस्य पीडितौ ॥ इत्थं तयोर्दुःखितयोर्निर्जगाम तदा निशा ॥३९॥ जयायास्तु व्रते चीर्णे रात्रौ जागरणे कृते ॥ तयोर्व्रतप्रभावेण यथा ह्यासीत्तथा शृणु ॥४०॥ द्वादशी दिवसे प्राप्ते

प्राप्त हुए। देहपात करने वाले दाह से पीड़ित हो निद्रा के सुख से भी वंचित हो गए। परस्पर वार्तालाप करते हुए गिरि-गह्वरों में घूमने लगे। भयंकर शीत के कारण उनके दांत बजने लगे। उनका शरीर सर्दी से रोमांचित हो गया। सोचने लगे पता नहीं किन पापों के कारण अपने बुरे कर्म से पिशाच योनि को प्राप्त हो गये हैं। चिन्ता में डूबे हुए उन दोनों को दैव योग से माघ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी प्राप्त हो गई। उस दिन वे दोनों बिना आहार के रहे। जल-पान भी उन्होंने नहीं किया, न उन्होंने कोई जीव-हत्या की, न ही फल खाये, दुःख से ग्रस्त वे दोनों पीपल के वृक्ष के नीचे पड़े रहे। यहां पड़े हुए उन दोनों को सूर्य अस्त हो गया। दारुण शीत के कारण वे दोनों परस्पर आलिंगित ही पड़े रहे। रात भर उनको नींद भी नहीं आई। हे राजन, इस प्रकार इन्द्र के

ताभ्यां चीर्णे जयाव्रते ।। विष्णोः प्रभावान्नृपते पिशाचत्वं तयोर्गतम् ।।४१ ।। पुष्पवती माल्यवांश्च पूर्वरूपौ बभूवतुः ।। पुरातनस्नेहयुतौ पूर्वालंकारसंयुतौ ।।४२ ।। विमानमधिरूढौ तावप्सरोगण-सेवितौ ।। स्तूयमानौ गन्धर्वैस्तुम्बुरुप्रमुखैस्तथा ।।४३ ।। हावभावसमायुक्तौ गतौ नाके मनोरमे ।। देवेन्द्रस्याग्रतो गत्वा प्रणामं चक्रतुर्मुदा ।।४४ ।। तथाविधौ तु तौ दृष्ट्वा मघवा विस्मितोऽब्रवीत् ।। इन्द्र उवाच ।। वद त्वं केन पुण्येन पिशाचत्वं विनिर्गतम् ।।४५ ।। मम शापवशं प्राप्तौ केन देवेन मोचितौ ।। माल्यवानुवाच ।। वासुदेवप्रसादेन जयायाः सुव्रतेन च ।।४६ ।। पिशाचत्वं गतं स्वामिन् सत्यं भक्तिप्रसादतः । इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्युवाच सुरेश्वरः ।।४७ ।। इन्द्र उवाच ।। पवित्रौ पावनौ जातौ वन्दीनीयौ ममापि च ।। हरिवासरकर्तारौ विष्णुभक्तिपरायणौ ।।४८ ।। हरिभक्तिरता

शाप से शापित उन दोनों की रात्रि व्यतीत हो गई। उस जया एकादशी के प्रभाव से उनका पिशाचत्व छूट गया। एकादशी के दिन पुष्पवती एवं माल्यवान् का शरीर पहले जैसा हो गया। पुराने स्नेह से परिपूरित अनेक अलंकारों से विभूषित वे दोनों स्वर्ग लोक में चले गये। इन्द्र के आगे जाकर प्रसन्नतापूर्वक उन दोनों ने प्रणाम किया। इस प्रकार उन दोनों को देखकर विस्मित होकर इन्द्र बोले, किस पुण्य के प्रभाव से आपका पिशाच योनि से छुटकारा हुआ। माल्यवान् ने कहा कि वासुदेव भगवान् की कृपा से जयाव्रत के प्रभाव से एवं भक्ति के प्रताप से हमारा पिशाचत्व दूर हुआ। इन्द्र बोले, हरि वासर को करने वाले, विष्णु भक्ति में परायण आप

ये च शिवभक्तिरतास्तथा ॥ अस्माकमपि ते मर्त्याः पूज्या वन्द्या न संशयः ॥४९ ॥ विहरस्व यथासौख्यं पुष्पवत्या सुरालये ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्कर्तव्यो हरिवासरः ॥५० ॥ जयाव्रतं तु राजेन्द्र ब्रह्महत्याऽपहारकम् ॥ सर्वदानानि दत्तानि यज्ञास्तेन कृता नृपा ॥५१ ॥ सर्वतीर्थेषु स स्नातः कृतं येन जयाव्रतम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या श्रद्धायुक्तो जयाव्रतम् ॥५२ ॥ कल्प-कोटिशतं यावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५३ ॥

पवित्र हो गये हैं, दूसरों को भी पवित्र करने वाले हो गये हो, मेरे लिये वन्दनीय हो। जो मनुष्य हरि भक्ति में या शिव भक्ति में संलग्न है, वह मनुष्य मेरे लिये पूज्य है। तुम आनन्दपूर्वक पुष्पवती के साथ विहार करो। हे राजन, इस कारण से हरिवासर करना बहुत पवित्र है। जया एकादशी का माहात्म्य बहुत फलदायी एवं पुण्य को देने वाला है।

माघ मास के शुक्ल पक्ष की जया एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

7. फाल्गुण कृष्ण पक्ष विजया एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ वासुदेव प्रसादेन कथयस्व ममाग्रतः ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयिष्यामि राजेन्द्र कृष्णे या फाल्गुने भवेत् ॥ विजयेति

युधिष्ठर बोले, फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का क्या नाम है, वह मुझसे कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन, फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम विजया है। व्रत करने वाले को सदा विजय

च सा प्रोक्ता कर्त्तृणां जयदा सदा ॥२॥ तस्याश्च व्रतमाहात्म्यं सर्वपापहरं परम्॥ नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्माणं कमलासनम् ॥३॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजया नाम या तिथिः॥ तस्या व्रतं सुरश्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ॥४॥ इति पृष्टो नारदेन प्रत्युवाच पितामहः॥ ब्रह्मोवाच॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् ॥५॥ पुरातनं व्रतं ह्येतत्पवित्रं पापनाशनम्॥ यन्न कस्यचिदाख्यातं मयैतद्विजयाव्रतम् ॥६॥ जयं ददाति विजया नृणां चैव न संशयः॥ रामस्तपोवनं यातो वर्षाण्येव चतुर्दश ॥७॥ न्यवसत्पञ्चवट्यां तु ससीतश्च सलक्ष्मणः॥ तत्रैव वसतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥८॥ रावणेन हृता भार्या सीतानाम्नी तपस्विनी॥ तेन दुःखेन रामोऽसौ मोहमभ्यागतस्तदा ॥९॥ भ्रमञ्जटायुषं तत्र ददर्श विगतायुषम्॥ कबन्धो निहतः पश्चाद्-

प्रदान करती है। सब पापों को हरने वाले माहात्म्य को सुनो। एक बार कमलासन पर बैठे हुए नारदमुनि ने ब्रह्मा जी से पूछा कि फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के माहात्म्य को कहिए। इस प्रकार नारद के पूछे जाने पर पितामह बोले, हे नारद सुनो, उत्कृष्ट पापों को हरने वाली कथा मैं तुम से कहूंगा। यह व्रत परम-पवित्र है। पापों का नाश करने वाला है। यह एकादशी मनुष्य को विजय प्रदान करती है। इसकी पुरातन कथा को कहता हूं। चौदह वर्ष के वनवास में सीता एवं लक्ष्मण के साथ श्री रामचन्द्र जी निवास कर रहे थे। वहां रहते हुए दैव योग से रावण ने सीता का हरण कर लिया। उस दुःख से दुःखी राम मोह को प्राप्त हुए। वहां घूमते हुए उन्होंने

भ्रमतोऽरण्यमध्यतः ॥१०॥ राज्ञे विज्ञाप्य तत्सर्वं सोऽपि मृत्युवशं गतः ॥ सुग्रीवेण समं सख्यं रामस्य समजायत ॥११॥ वानराणामनीकानि रामार्थं संगतानि वै ॥ ततो हनुमता दृष्ट्वा लंकोद्याने तु जानकी ॥१२॥ रामसंज्ञापनं तस्यै दत्तं कर्म महत्कृतम् ॥ समेत्य रामेण पुनः सर्वं तत्र निवेदितम् ॥१३॥ अथ श्रुत्वा रामचन्द्रो वाक्यं चैव हनूमतः ॥ सुग्रीवानुमतेनैव प्रस्थानं समरोचयत् ॥१४॥ स गत्वा वानरैः सार्धं तीरं नदनदीपतेः। दृष्ट्वाऽब्धिं दुस्तरं रामो विस्मितोऽभूत्कपिप्रियः ॥१५॥ प्रोत्फुल्लोचनो भूत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रतीत्। सौमित्र ! केन पुण्येन तीर्यते वरुणालयः ॥१६॥ अगाधसलिलैः पूर्णो नक्रैर्मीनैः समाकुलः। उपायं नैव पश्यामि येनायं सुतरो भवेत् ॥१७॥ लक्ष्मण उवाच ॥ आदिदेवस्त्वमेवासि पुराणपुरुषोत्तम ॥

जटायु को देखा। वन में घूमते हुए उन्होंने कबन्ध राक्षस को मारा। वह सब रहस्य कहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। सुग्रीव के साथ रामचन्द्र की मित्रता हुई। श्री रामचन्द्र के लिये वानरों की सेना इकट्ठी हुई। उसके बाद हनुमान जी ने जाकर जानकी को देखा। श्री रामचन्द्र जी की अंगूठी जानकी को दी। वापिस जाकर श्री रामचन्द्र जी को वहाँ का पूरा वृत्तान्त कहा। हनुमान ने सारा वृत्तान्त जानकर श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव की सम्मति से युद्धयात्रा की ओर चल पड़े। वानरों के साथ श्री रामचन्द्र जी सागर के तट पर आकर बैठ गये। विस्तृत समुद्र को देखकर बहुत विस्मित होकर लक्ष्मण से कहने लगे कि किस पुण्य के प्रभाव से इस समुद्र को पार किया जा सकता है।

वकदाल्भ्यो मुनिश्चात्र वर्तते द्वीपमध्यतः ॥१८ ॥ अस्मात्स्थानाद्योजनार्धमाश्रमस्तस्य राघव। अनेन दृष्ट्वा बहवो ब्रह्माणो रघुनन्दन ॥१९ ॥ तं पृच्छ गत्वा राजेन्द्र पुराणमृषिपुंगवम्। इति वाक्यं ततः श्रुत्वा लक्ष्मणस्यातिशोभनम् ॥२० ॥ जगाम राघवो द्रष्टुं वकदाल्भ्यं महामुनिम्। प्रणनाम मुनिं मूर्ध्ना रामो विष्णुमिवापरम् ॥२१ ॥ मुनिर्ज्ञात्वा ततो रामं पुराण पुरुषोत्तमम् ॥ उवाच स ऋषिस्तत्र कुतो राम तवागमः ॥२२ ॥ राम उवाच ॥ त्वत्प्रसादादहो विप्र वरुणालय-सन्निधिम् ॥ आगतोऽत्र ससैन्योऽस्मि लंकां जेतुं सराक्षसाम् ॥२३ ॥ भवतश्चानुकूल्येन तीर्यते-ऽब्धिर्यथा मया ॥ तमुपायं वद मुने प्रसादं कुरु सुव्रत ॥२४ ॥ मुनिरुवाच ॥ कथयिष्याम्यहं

यह अगाध समुद्र जल से पूर्ण, जल जीव जन्तुओं से भरा हुआ है, ऐसा कोई उपाय दिखाई नहीं देता जिससे इस विस्तृत समुद्र को पार किया जा सके। लक्ष्मण जी बोले, हे महाराज, आदि देव और पुराण पुरुषोत्तम आप ही हैं। इस द्वीप के मध्य में वकदाल्भ्य नाम के मुनि निवास करते हैं। हे राघव, इस स्थान से दो कोस की दूरी पर उनका आश्रम है। हे रघुनन्दन, उस मुनि ने अनेक ब्रह्माओं को देखा है, वहां जाकर उस श्रेष्ठ मुनि जी से पूछिये। लक्ष्मण का अति सुन्दर वचन सुनकर श्री रामचन्द्र वकदाल्भ्य मुनि जी के दर्शनों को गये। दूसरे श्री विष्णु के समान बैठे हुए उन मुनि राज को प्रणाम किया। मुनिराज श्री रामचन्द्र जी को पुराण पुरुषोत्तम जानकर बोले, हे राम, आपका आगमन किस कारण से हुआ। श्री रामचन्द्र बोले, हे विप्रवर, आपके प्रसाद से लंका पर विजय पाने के

राम व्रतानां व्रतमुत्तमम्॥ कृतेन येन सहसा विजयस्ते भविष्यति ॥२५॥ लङ्कां जित्वा राक्षसांश्च दीर्घां कीर्तिमवाप्स्यसि॥ एकाग्रमानसो भूत्वा व्रतमेतत् समाचर ॥२६॥ फाल्गुनस्यासिते पक्षे विजयैकादशी भवेत्॥ तस्या व्रते कृते राम विजयस्ते भविष्यति ॥२७॥ निस्संशयं समुद्रं च तरिष्यति सवानरः॥ विधिश्च श्रूयतां राम व्रतस्यास्य फलप्रदः ॥२८॥ दशमीदिवसे प्राप्ते कुम्भमेकं च कारयेत्॥ हैमं वा राजतं वापि ताम्रं वाप्यथ मृन्मयम्॥२९॥ स्थापयेच्छोभितं कुम्भं जलपूर्णं सपल्लवम्॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं हैमं नारायणं प्रभुम्॥३०॥ एकादशीदिने प्राप्ते प्रातः स्नानं समाचरेत्॥ निश्चले स्थापिते कुम्भे गन्धमालानुलेपिते ॥३१॥ दाडिमैर्नारिकेलै-श्च

लिये सेना सहित मैं समुद्र पर आया हूं, आपकी अनुकूलता से जैसे समुद्र को पार किया जाए, वैसा उपाय कहिये। मुनिराज बोले, हे राघव, सब व्रतों में उत्तम व्रत को मैं कहता हूं जिसके करने से आप को विजय प्राप्त होगी और राक्षस समेत सम्पूर्ण लंका को जीतकर बड़ी कीर्ति को प्राप्त करोगे। फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष में विजया एकादशी तिथि होती है। आप उस एकादशी का व्रत करें। एकाग्रमन से इस व्रत को करो। इसकी विधि को सुनो। जब दशमी का दिन आये एक कलश की स्थापना करें। कलश में जल भर कर अश्वत्थ आदि वृक्षों के पत्ते डालें। सप्त धान्य पर कलश को रखकर चन्दन एवं पुष्प की माला चढ़ाएं। कलश पर अनार के फूल एवं नारियल रखें। वहां भगवान् नारायण की प्रतिमा रखकर पूजन करें। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप-दीप तथा नाना प्रकार के नैवेद्यों से अर्चना करें। एकादशी के दिन व्रत करते हुए रात्रि को जागरण करें।

पूजयेच्च विशेषतः ॥ सप्तधान्यान्याधस्तस्य यवानुपरि विन्यसेत् ॥३२ ॥ गन्धैर्धूपैस्तथा दीपै-र्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ कुम्भाग्रे तद्दिनं राम नेतव्यं भक्तिभावतः ॥३३ ॥ रात्रौ जागरणं चैव तस्याग्रे कारयेद् बुधः ॥ द्वादशे दिवसे प्राप्ते मार्तंडस्योदये सति ॥३४ ॥ नीत्वा कुम्भं जलोद्देशे नद्यां प्रस्त्रवणे तथा ॥ तडागे स्थापयित्वा वा पूजयित्वा यथाविधिः ॥३५ ॥ दद्यात्सदैवतं कुम्भं ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ कुम्भेन सह राजेन्द्र महादानानि दापयेत् ॥३६ ॥ अनेन विधिना राम यूथपैस्सह संगतः ॥ कुरु व्रतं प्रयत्नेन विजयस्ते भविष्यति ॥३७ ॥ इति श्रुत्वा वचो रामो यथोक्तमकरोद्व्रतम् ॥ कृते व्रते स विजयी बभूव रघुनन्दनः ॥३८ ॥ अनेन विधिना राजन् ये कुर्वन्ति नराः व्रतम् ॥ इहलोके जयस्तेषां परलोके सदा जयः ॥३९ ॥ एतस्मात्कारणात्पुत्र कर्त्तव्यं विजयाव्रतम् ॥ पठनाच्छ्रवणात्तस्य वाजपेयफलं लभेत् ॥४० ॥

द्वादशी के दिन सूर्य उदय होने पर उस कुम्भ को नदी, तालाब अथवा झरने आदि पर ले जाकर स्थापित करें, फिर उस कुम्भ को विद्वान् ब्राह्मण के दान कर दें। हे राजेन्द्र, कुम्भ के साथ महादान को भी दें। हे राम, इस विधि से अपनी सेना, सेनाधिकारियों सहित यत्नपूर्वक व्रत करो। तुम्हारी विजय होगी। मुनि के वचन को सुनकर श्री राम चन्द्र जी ने विजया एकादशी का व्रत किया और व्रत करने पर रघुनन्दन की विजय हुई। हे राजन, जो लोग इस विधि से व्रत को करेंगे, उनकी इस लोक एवं परलोक में जय होगी। ब्रह्मा ने नारद मुनि से कहा, हे पुत्र इस कारण से इस व्रत को करना चाहिये।

फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की विजया एकादशी का माहात्म्य पूर्ण हुआ।

८. फाल्गुन शुक्ल पक्ष आमलकी एकादशी

मान्धातोवाच। वद ब्रह्मन्महाभाग येन श्रेयो भवेन्मम ॥ ईदृग्व्रतं ब्रह्मयोने तेऽनुकम्पाऽस्ति चेन्मयि ॥१ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ सरहस्यं सेतिहासं व्रतानां व्रतमुत्तमम्। कथयाम्यधुना तुभ्यं सर्वभूतफलप्रदम् ॥२ ॥ आमलक्या व्रतं राजन् महापातकनाशनम् ॥ मोक्षदं सर्वलोकानां गोसहस्त्रफलप्रदम् ॥३ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीमामितिहासं पुरातनम् ॥ यथा मुक्तिमनुप्राप्तो व्याधो हिंसासमन्वितः ॥४ ॥ वैदिशं नाम नगरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च समलंकृतम् ॥५ ॥ रुचिरं नृपशार्दूल ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ न नास्तिको न दुर्वृत्तस्तस्मिन् पुरवरे सदा ॥६ ॥ तत्र सोमान्वये राजा विख्यातः शशबिन्दुकः ॥ राजा चैत्ररथो नाम धर्मात्मा

मान्धाता बोले, हे ब्रह्मयोनि, हे महाभाग, यदि आप की हम पर कृपा है तो ऐसे व्रत के विषय में कहिये जिससे हमारा कल्याण हो। वसिष्ठ मुनि बोले, सभी पापों को नाश करने वाले, सब लोगों का कल्याण करने वाले उत्तम व्रत को कहता हूं। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में होने वाली आमलकी एकादशी का व्रत सहस्त्रगौओं के दान के फल को देने वाला है। इस विषय में पुरातन इतिहास को कहता हूं, सुनें। हृष्ट पुष्ट, स्वस्थ लोगों से सम्पूर्ण एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सब जातियों से सुशोभित वैदिश नाम का नगर था। उस नगर में वेद-मन्त्रों की ध्वनि गुंजायमान रहती थी। उस नगर में कोई नास्तिक नहीं था। दुराचारी भी नहीं था।

सत्यसंगरः ॥७॥ नागायुतबलः श्रीमान् शस्त्रशास्त्रार्थपारगः॥ तस्मिन् शासति धर्मज्ञे धर्मात्मनि धरां प्रभो ॥८॥ कृपणो नैव कुत्रापि दृश्यते नैव निर्धनः॥ सुकालः क्षेममारोग्यं तस्मिन् राज्यं प्रशासति ॥९॥ विष्णुभक्तिरता लोकास्तस्मिन् पुरवरे सदा॥ हरपूजारताश्चैव राजा चापि विशेषतः ॥१०॥ न कृष्णायां न शुक्लायां द्वादश्यां भुञ्जते जनाः॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य हरिभक्तिपरायणाः ॥११॥ एवं संवत्सरा जग्मुर्बहवो राजसत्तम॥ जनस्य सौख्ययुक्तस्य हरिभक्तिरतस्य च ॥१२॥ अथ कालेन संप्राप्ता द्वादशी पुण्यसंयुता॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे नाम्ना ह्यामलकी स्मृता ॥१३॥ तामवाप्य जनाः सर्वे बालकास्स्थविरा नृप॥ नियमं चोपवासं च सर्वे चक्रुर्नरा विभो ॥१४॥ महाफलं व्रतं ज्ञात्वा कृत्वा स्नानं नदीजले॥ तत्र देवालये राजा

उस सुन्दर नगर में चन्द्रवंशी शशविन्दु नाम का विख्यात राजा था। उस वंश में सत्य प्रतिज्ञा वाला, धर्मात्मा, चैत्ररथ नाम का राजा राज्य करता था। शास्त्र और शस्त्रविद्या में पारगामी राजा में दस हज़ार हाथियों का बल था। उसके राज्य में कोई कृपण नहीं था, न ही धनहीन था। समय पर वर्षा होती थी, कभी अकाल उस राज्य में नहीं पड़ा था। पूर्ण रूप से सुख शान्ति थी। राजा सहित सारी प्रजा भगवान् विष्णु की पूजा में संलग्न रहती थी। वह राजा विशेष विधि से पूजा में लगा रहता था। शुक्ल पक्ष की द्वादशी युक्त एकादशी में कोई भी भोजन नहीं करता था। सब कामों को छोड़कर हरि भक्ति में तत्पर रहते थे। हे राजन, इस प्रकार राज्य करते हुए अनेक

लोकयुक्तो महाप्रभुः ॥१५॥ पूर्णकुम्भमवस्थाप्य छत्रोपानहसंयुतम्॥ पंचरत्नसमायुक्तं दिव्यगन्धाधिवासितम्॥१६॥ धात्रि धातृसमुद्भूते सर्वपातकनाशिनि॥ आमलकि नमस्तुभ्यं गृहाणार्घोदकं मम॥१७॥ धात्रि ब्रह्मस्वरूपाऽसि त्वं तु रामेण पूजिता॥ प्रदक्षिणविधानेन सर्वपापहरा भव॥१८॥ तत्र जागरणं चक्रुर्जनाः सर्वे सभक्तितः॥ एतस्मिन्नेव काले तु व्याधस्तत्र समागतः॥१९॥ क्षुधाश्रमपरिव्याप्ता महाभारेण पीडितः॥ कुटुम्बार्थं जीवघाती सर्व धर्मबहिष्कृतः॥२०॥ जागरणं तत्र सोऽपश्यदामलक्यां क्षुधान्वितः॥ दीपमालाकुलं दृष्ट्वा तत्रैव निषसाद सः॥२१॥ किमेतदिति संचिन्त्य प्राप्तो विस्मयतां भृशम्॥ ददर्श कुम्भं तत्रस्थं

वर्ष बीत गये। एक बार फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की आमलकी नाम की एकादशी आई, बाल-वृद्ध सभी लोगों ने व्रत रखा। महाफलयुक्त व्रत को जानकर राजा नदी में स्नान करने सब लोगों के साथ देवालय में गया। वहां छाता, वस्त्र पञ्चरत्न युक्त गन्ध आदि से सुगन्धित घट की स्थापना की। हे ब्रह्मा से उत्पन्न धात्री (आमले का वृक्ष), हे सब पापों का नाश करने वाली आमलकी, तुम्हें मेरा नमस्कार है। मेरे द्वारा दिये गये अर्घ को स्वीकार करो। हे धात्री, तुम ब्रह्म स्वरूप हो और तुम श्री राम चन्द द्वारा पूजित हो। मैं आपकी प्रदक्षिणा करता हूं, मेरे पापों का नाश करो। वहीं मन्दिर में सब लोगों ने रात को भक्तिपूर्वक जागरण किया, उसी समय वहाँ एक बहेलिया (शिकारी) आ गया। वह भूख और श्रम से व्याकुल था, भारी बोझ से पीड़ित था। कुटुम्ब के पालन हेतु जीवों को मारने वाला धर्म से विमुख था। भूख से व्याकुल उसने आमलकी के समीप जागरण होते

देवं दामोदरं तथा ॥२२॥ ददर्शामलकीवृक्षं तत्रस्थांश्चैव दीपकान्॥ वैष्णवं च तथाऽख्यानं सुश्राव पठतां नृणाम्॥२३॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं सुश्राव क्षुधितोऽपि सन्॥ जाग्रतस्तस्य सा रात्रिर्गता विस्मितचेतसः॥२४॥ ततः प्रभातसमये विविशुर्नगरं जनाः। व्याधोऽपि गृहमागत्य बुभुजे प्रीतिमानसः॥२५॥ ततः कालेन महता व्याधः पंचत्वमागतः॥ एकादश्याः प्रभावेण रात्रौ जगरणेन च॥२६॥ राज्यं प्रपेदे सुमहच्चतुरंगबलान्वितम्॥ जयन्ती नाम नगरी तत्र राजा विदूरथः॥२७॥ तस्मात्स तनयो जज्ञे नाम्ना वसुरथो बली॥ चतुरंगबलोपेतो धनधान्य-समन्वितः॥२८॥ दशायुतानि ग्रामाणां बुभुजे भयवर्जितः॥ तेजसाऽऽदित्यसङ्काशः कांत्या चन्द्रसमप्रभः॥२९॥ पराक्रमे विष्णुसमः क्षमया पृथिवीसमः॥ धार्मिकः सत्यवादी च विष्णु-

हुए देखा और जलते हुए दीपकों के प्रकाश को देखा। उन लोगों के बीच में ही वह बैठ गया। यह क्या हो रहा है, यह देखकर वह विस्मित हो गया। एक कलश पर भगवान् विष्णु की प्रतिमा को देखा, आमलकी के वृक्ष को देखा, उन लोगों से भगवान् विष्णु की कथा सुनी। भूखे रहकर एकादशी का माहात्म्य सुना, रात्रि जागरण से उसकी वह रात व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल सभी लोग नगर में चले गये। व्याध ने भी घर जाकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया। बहुत काल के पश्चात् वह व्याध मृत्यु को प्राप्त हुआ। एकादशी के प्रभाव से, रात्रि जागरण से वह व्याध चतुरंग सेना से युक्त सेना का स्वामी हुआ। जयन्ती नामक नगरी का वह राजा बना

भक्तिपरायणः ॥३०॥ ब्रह्मज्ञः कर्मशीलश्च प्रजापालनतत्परः ॥ यजते विविधान् यज्ञान्स राजा परदर्पहा ॥३१॥ दानानि विविधान्यथ प्रददाति च सर्वदा ॥ एकदा मृगयां यातो दैवान्मार्ग-परिच्युतः ॥३२॥ न दिशो नैव विदिशो वेत्ति तत्र महीपतिः ॥ उपधाय च दोमूर्लमेकाकी गहने वने ॥३३॥ श्रान्तश्च क्षुधितोऽत्यन्तं संविवेश महीपतिः अत्रान्तरे म्लेच्छगणाः पर्वतान्तरवा-सभाक् ॥३४॥ आययौ तत्र यत्रास्ते राजा परबलार्दनः ॥ कृतवैरास्तु ते राज्ञा सर्वदैवोप-तापिताः ॥३५॥ परिवार्य ततस्तस्थू राजानं भूरिदक्षिणम् ॥ हन्यतां हन्यतां चायं पूर्ववैर-विरुद्धधीः ॥३६॥ अनेन निहताः पूर्वं पितरो भ्रातरः सुताः ॥ पौत्राश्च भागिनेयाश्च मातुलाश्च निपातिताः ॥३७॥ निष्कासिताश्च स्वस्थानाद्विक्षिप्ताश्च दिशो दश ॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे

और उसका नाम विदूरथ हुआ। उस राजा के वसुरथ नाम का पुत्र हुआ। वह निर्भय होकर दस हज़ार ग्रामों का भोग करने लगा। वह सूर्य के समान तेजस्वी था, चन्द्रमा के समान कान्ति वाला था। पराक्रम में विष्णु के समान तथा क्षमा में पृथ्वी के समान था। धर्मात्मा, सत्यवक्ता तथा विष्णु की भक्ति से युक्त था। प्रजापालन में तत्पर, कर्म करने वाला, ब्रह्मज्ञानी, शुत्रु के गर्व को दूर करने वाला वह राजा नाना प्रकार के राजसूय यज्ञ करने लगा। वह नाना प्रकार से दान करने वाला राजा एक बार शिकार को गया हुआ दैव योग से रास्ता भूल गया। वहां राजा को दिशा-विदिशा का ज्ञान नहीं रहा। वह उस भयानक जंगल में अकेला अपने सिर के नीचे भुजा रखकर लेट गया। अत्यन्त थका हुआ वह राजा भूखा ही सो गया। इसी बीच पर्वतों के निवासी म्लेच्छों का समूह वहां आ

तत्रैनं हन्तुमुद्यता: ।।३८ ।। पाशैश्च पट्टिशैः खड्गैर्बाणैर्धनुषि संस्थितैः ।। सर्वतोऽरिगणास्ते च राजानं हन्तुमुद्यता: ।।३९ ।। सर्वाणि शस्त्राणि समा द्रवन्ति न वै शरीरे प्रविशन्ति तस्य ।। ते चापि सर्वे हतशस्त्रसंघा म्लेच्छा बभूवुर्गतदेहजीवाः ।।४० ।। पदापि चलितुं तत्र न शेकुस्तेऽरयो भृशम् ।। शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुः सर्वेषां हतचेतसाम् ।।४१ ।। दीनाः बभूवुस्ते सर्वे ये तं हन्तुं समागता: ।। एतस्मिन्नेव काले तु तस्य राज्ञः शरीरतः ।।४२ ।। निःसृता प्रमदा ह्येका सर्वावयव-शोभना ।। दिव्यगन्धसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिता ।।४३ ।। दिव्यमाल्याम्बरधरा भ्रुकुटीकुटि-लानना । सस्फुलिंगं च नेत्राभ्यां वसन्तं पावकं बहु ।।४४ ।। चक्रोद्यतकरा चैव कालरात्रिरिवा-परा ।। अभ्यधावत संक्रुद्धा म्लेच्छानत्यन्तदुःखितान् ।।४५ ।। निहताश्च यदा म्लेच्छास्ते विकर्म-

गया, जहां शत्रुओं की सेना का नाश करने वाला राजा सो रहा था। पहले बैर के कारण बुद्धिहीन उन लोगों ने कहा, कि मारो, मारो, ऐसा कहकर अस्त्र-शस्त्रों से राजा पर प्रहार करने लगे। सब प्रकार से शस्त्र चलाने पर भी स्वतः नष्ट हो गये। शस्त्रों के समूह से युक्त सभी म्लेच्छ थक कर निष्प्राण हो गये। वे एक पग भी चलने में समर्थ नहीं हो सके और उन म्लेच्छों के शस्त्र भी कुण्ठित हो गये। राजा को मारने के लिये आये थे मगर वे सब दीनहीन अवस्था को प्राप्त हो गये। उसी समय राजा के उस शरीर से शोभायमान एक स्त्री प्रकट हुई। वह दिव्य गन्ध से शोभित एवं दिव्य भूषण से विभूषित थी। दिव्य माला तथा दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए

रतास्तथा॥ ततो राजा विबुद्धः सन् ददर्श महदद्भुतम्॥४६॥ हतान् म्लेच्छगणान्दृष्ट्वा राजा हर्षमवाप सः॥ इह केन हता म्लेच्छा अत्यन्तं वैरिणो मम॥४७॥ केन चेदं महत्कर्म कृतमस्माद्धितार्थिना॥ एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी॥४८॥ तं स्थितं नृपतिं दृष्ट्वा निष्कामं विस्मयान्वितम्॥ शरणं केशवादन्यो नास्ति कोऽपि द्वितीयकः॥४९॥ वनात्तस्मात्स कुशली समायातोऽपि भूमिभुक्॥ राज्यं चकार धर्मात्मा धरायां देवतेशवत्॥५०॥ वशिष्ठ उवाच॥ तस्मादामलकीं राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः॥ ते यान्ति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥५१॥

थी। क्रोध के कारण उसकी भौहें टेढ़ी हो रही थीं। नेत्रों से चिंगारियां निकल रही थीं। दूसरी कालरात्रि के समान वह क्रोधित हो हाथ में चक्र लेकर म्लेच्छों पर टूट पड़ी। निषिद्ध कर्मों में लगे हुए म्लेच्छ उस स्त्री द्वारा मारे गए। तब राजा ने जागकर यह अद्भुत कर्म देखा। राजा म्लेच्छों को मरा देखकर आनन्द को प्राप्त हुआ और कहने लगा कि मेरे बड़े वैरी इन म्लेच्छों को किस ने मारा? हमारे हित को चाहने वाले कौन है, जिसने यह महान् कार्य किया। उसी समय आकाशवाणी हुई। विस्मय युक्त बैठे हुए राजा ने यह वाणी सुनी। केशव भगवान् के बिना दूसरा कोई नहीं है। उस वन से लौटे हुए राजा ने इन्द्र के समान राज्य किया। वसिष्ठ मुनि बोले, हे राजन, इसलिये जो उत्तम पुरुष आमलकी एकादशी का व्रत करता है, वह विष्णु लोक में जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है।

फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

९. चैत्र कृष्णपक्ष पापमोचनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ फाल्गुनस्य सिते पक्षे श्रुता साऽऽमलकी मया ॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि पापमोचनिकाव्रतम् ॥ यल्लोमशोऽब्रवीत्पृष्टो मान्धात्रा चक्रवर्तिना ॥२ ॥ मान्धातोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि लोकानां हितकाम्यया ॥ चैत्रमासासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥३ ॥ को विधिः किं फलं तस्याः कथयस्व प्रसादतः ॥ लोमश उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कामदा सिद्धिदा तथा ॥ कथा विचित्रा शुभदा पापहा धर्मदायिनी ॥४ ॥ पुरा चैत्ररथोद्देशे ह्यप्सरोगणसेविते । वसन्तसमये प्राप्ते पुष्पैराकुलिते वने ॥५ ॥ गन्धर्वकन्यास्तत्रैव रमन्ते सह किन्नरैः ॥ पाकशासनमुख्याश्च

युधिष्ठिर जी ने कहा, भगवन्, चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का क्या नाम है। उसका क्या माहात्म्य है, वह कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजेन्द्र, पापों से छुड़ाने वाली यह पापमोचनी एकादशी है। पहले समय में चक्रव्रती राजा मान्धाता ने यही प्रश्न महर्षि लोमश से किया, वह मैं तुमसे कहता हूं। मान्धाता बोले, हे भगवन्, लोगों की हितकामना से चैत्रमास के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसके विषय में मैं जानना चाहता हूं। उसकी क्या विधि है, उसका क्या फल है। लोमश ऋषि बोले, हे राजन, कामना के देने वाली, पापों को नाश

क्रीडन्ते च दिवौकसः ॥६ ॥ नापरं सुन्दरं किंचिद्वनाच्चैत्ररथाद्वनम् ॥ तस्मिन्वने तु मुनयस्तपन्ति बहुलं तपः ॥७ ॥ सह देवैस्तु मघवा रमन्ते मधुमाधवे ॥ एको मुनिवरस्तत्र मेधावी नाम नामतः ॥८ ॥ अप्सरास्तं मुनिश्वरं मोहनायोपचक्रमे ॥ मंजुघोषेति विख्याता भावं तस्य विचिन्वती ॥९ ॥ क्रोशमात्रं स्थिता तस्य भयादाश्रमसन्निधौ ॥ गायन्तो मधुरं साधु पीडयन्ती विपञ्चिकाम् ॥१० ॥ गायन्ती तामथालोक्य पुष्पचन्दनवेष्टिताम् ॥ कामोऽपि विजयाकांक्षी शिव भक्तं मुनीश्वरम् ॥११ ॥ तस्याः शरीरसंसर्गं शिववैरमनुस्मरन् ॥ कृत्वा भ्रु वोर्धनुः कोटिगुणं कृत्वा कटाक्षकम् ॥१२ ॥ मार्गणौ नयने कृत्वा पक्षयुक्तौ यथाक्रमम् ॥ कुचौ कृत्वा पटकुटी

करने वाली एवं धर्म को देने वाली जो विचित्र कथा है, उसे सुनो। पहले समय में वसन्त ऋतु के आगमन पर फूलों के खिलने पर चैत्ररथ नाम के कुवेर के उपवन में अप्सराओं के समूह विहार करते थे। गन्धर्व कन्याएं किन्नरों के साथ विहार करती थीं। इन्द्र आदि देवता उसमें क्रीड़ा करते थे। उस चैत्ररथ वन से सुन्दर कोई वन नहीं था। उस वन में बहुत मुनीश्वर तपस्या करते थे। देवताओं के साथ इन्द्र चैत्र वैसाख मास में वहां विहार करते थे। मुनियों में श्रेष्ठ मेधावी नामक मुनि वहां रहते थे। अप्सराएं उस मुनिवर को मोहित करने का उपाय करने लगीं। उनमें मंजुघोषा नाम की अप्सरा मुनि के मन के अभिप्राय को जानने का प्रयत्न करने लगी। मुनि के भय से उस आश्रम से दूर मधुर वीणा पर मधुर स्वर से गाने लगी तथा फूल तथा चन्दन से लिपटी हुई उन

विजयायोपसंस्थितः ॥१३॥ मंजुघोषाऽभवत्तत्र कामस्यैव वरूथिनी॥ मेधाविनं मुनिं दृष्ट्वा साऽपि कामेन पीडिता ॥१४॥ यौवनोद्भिन्नदेहोऽसौ मेधाव्यतिविराजते॥ सितोपवीतसंवीतो दण्डी स्मर इवापरः ॥१५॥ मेधावी वसतिस्मासौ च्यवनस्याश्रमे शुभे॥ मंजुघोषा स्थिता तत्र दृष्ट्वा तं मुनिपुंगवम् ॥१६॥ मदनस्य वशं प्राप्ता मन्दं मन्दमगायत॥ रणद्वलयसंयुक्ता शिंजन्नूपुरमेखलाम् ॥१७॥ गायन्तीं भावसंयुक्तां विलोक्य पुनिपुंगवः॥ मदनेन ससैन्येन नीतो मोहवशं बलात् ॥१८॥ मंजुघोषा समागम्य मुनिं दृष्ट्वा तथा विधम्॥ हाव भावकटाक्षैस्तु

अप्सराओं को गाती हुई देखकर कामदेव भी शिवभक्त मुनियों को जीतने की इच्छा करने लगा। कामदेव भी शिव से हुए वैर का स्मरण करके उन शिवभक्त मुनि को जीतने की इच्छा करके, उन अप्सराओं की भौहों को धनुष बनाकर, उनमें कटाक्ष की प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। इसी क्रम से नेत्रों को पक्ष युक्त करके अप्सराओं के कुचों को पट्टकुटी बनाकर विजय के लिये उपस्थित हो गया। वहां मंजुघोषा अप्सरा भी काम की सेना की अप्सरा बनी, और वह मेधावी मुनि को देखकर काम पीड़ा से व्यथित हो गई। युवावस्था के कारण एवं सुगठित शरीर के कारण मेधावी मुनि सुशोभित हुए दिखाई दिये, सफेद यज्ञोपवीत पहने हुए दूसरे कामदेव के समान प्रतीत होने लगे। मेधावी मुनि च्यवन मुनि के आश्रम में विराजमान् थे। मंजुघोषा उन श्रेष्ठमुनि को देखकर वहां ठहर गई। कामदेव के वश में गई हुई वह अप्सरा धीरे-धीरे गाने लगी। हाथों में पहनी हुई चूड़ियां खन-खन ध्वनि

मोहयामास चांगना ॥१९॥ अधः संस्थाप्य वीणां सा सस्वजे तं मुनीश्वरम्॥ वल्लीवाकुलिता वृक्षं वातवेगेन वेपिता ॥२०॥ सोऽपि रेमे तया सार्द्धं मेधावी मुनिपुंगवः॥ तस्मिन्नेव वनोद्देशे दृष्ट्वा तद्देहमुत्तमम् ॥२१॥ शिवतत्त्वं गतं तस्य कामतत्त्ववशं गतः॥ न निशां न दिनं सोऽपि रमञ्जानाति कामुकः ॥२२॥ बहुलश्च गतः कालो मुनेराचारलोपकः॥ मंजुघोषा देवलोकं गमनायोपचक्रमे ॥२३॥ गच्छन्ती प्रत्युवाचाथ रमन्तं मुनिपुंगवम्॥ आदेशो दीयतां मह्यं स्वधामगमनाय मे ॥२४॥ मेधाव्युवाच॥ अद्यैव त्वं समायाता प्रदोषादौ वरानने॥ यावत्प्रभात-संध्या स्यात्तावत्तिष्ठ ममान्तिके ॥२५॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं भयभीता बभूव सा॥ पुनर्वै

करने लगीं। पैरों में पड़े हुए नूपुर गुंजायमान होने लगे, मेखला में वन्धी घण्टियां शब्द करने लगीं। ऐसे हाव-भावों से युक्त मंजुघोषा अप्सरा धीरे-धीरे काम के वश में हो गई। भाव के साथ गाती हुई उस अप्सरा को देखकर वह श्रेष्ठ मुनि धीरे-धीरे बलपूर्वक काम के वश में हो गये। मंजुघोषा ने मुनि को काम के वश में होते हुए देखकर हाव-भाव और कटाक्ष करके मोहित कर लिया। उसने वीणा को नीचे रखकर, मुनि को गाढ़ालिंगन में ले लिया। जैसे व्याकुल हुई लता वायु के वेग से वेपित वृक्ष का आलिंगन कर लेती है। वह मेधावी मुनि उस अप्सरा के साथ रमण करने लगा। शिवतत्त्व को भुलाकर काम तत्त्व के वश में गये हुए वे दोनों दिन-रात के समय को भी भूल गये। मुनि के आचार के लोप हो जाने पर बहुत समय व्यतीत हो गया और वह मंजुघोषा

रमयामास तं मुनिं मुनिसत्तमम् ॥२६ ॥ मुनेः शापभयाद्भीता बहुलान्परिवत्सरान् ॥ वर्षाणां पंचपंचाशन्नवमासान् दिनत्रयम् ॥२७ ॥ सा रेमे मुनिना तेन निशार्द्धमिव चाभवत् ॥ सा च तं प्रत्युवाचाथ तस्मिन् काले गते मुनिम् ॥ आदेशो दीयतां ब्रह्मन् गन्तव्यं स्वगृहं मया ॥२८ ॥ मेधाव्युवाच ॥ प्रातःकालोऽधुनैवास्ते श्रूयतां वचनं मम ॥ कुर्वे सन्ध्यामहं यावत्तावत्त्वं वै स्थिरा भव ॥२९ ॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा भयेन च समाकुला ॥ स्मितं तु सा किंचित् प्रत्युवाच सुविस्मिता ॥३० ॥ अप्सरा उवाच ॥ कियत्प्रमाणी विप्रेन्द्र तव संध्या गता न वा ॥ मयि प्रसादं कृत्वा तु गतः कालो विचार्यताम् ॥३१ ॥ इति तस्याः वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥

अप्सरा भी देव लोक में जाने को उद्यत हुई, रमण करते हुए उस मुनि से बोली, हे मुने, मुझे अब अपने स्थान को जाने की आज्ञा दीजिये। तब मेधावी बोले, कि हे वरानने, तुम अभी सन्ध्या समय में ही आई हो, जब तक प्रभात सन्ध्या न हो जाए तब तक मेरे समीप ठहर। इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर वह अप्सरा भयभीत हो गई, वह फिर मुनि के साथ रमण करने लगी। मुनि के शाप के भय से डरी हुई वह अप्सरा बहुत वर्षों तक विहार करती रही। उतना समय मुनि को आधी रात के समान व्यतीत हुआ। उस काल के बीत जाने पर वह मुनि से फिर बोली कि अब आज्ञा दीजिये, मुझे घर जाना है। मेधावी बोले, मेरे वचन के अनुसार प्रातःकाल तो है, जब तक मैं सन्ध्या करूं तब तक ठहर। मुनि का यह वचन सुनकर वह भय से व्याकुल हो गई। मन्द

सा ध्यात्वा हृदि विप्रेन्द्रः प्रमाणमकरोत्तदा ॥३२॥ समाश्च सप्तपचाशद्गता मम तया सह ॥ नेत्राभ्यां विस्फुलिंगान्स मुंचमानोऽतिकोपनः ॥३३॥ कालरूपां च तां दृष्ट्वा तपसः क्षय-कारिणीम् ॥ दुःखार्जितं मम तपो नीतं तदनया क्षयम् ॥३४॥ संकपोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचा-कुलेन्द्रियः ॥ स तां शशाप मेधावी त्वं पिशाची भवेति च ॥३५॥ धिक्त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये ॥ तस्य शापेन सा दग्धा विनयावनतस्थिता ॥३६॥ उवाच वचनं सुभ्रुः प्रसादं वाञ्छतो मुनिम् ॥ प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र शापस्यानुग्रहं कुरु ॥ सतां संगो हि फलति वचोभिः सप्तमे पदे ॥३७॥ त्वया सह मम ब्रह्मन् गताः सुबहवः समाः ॥ एतस्मात् कारणात्स्वा-

मुसकान से मुस्करा कर वह फिर बोली, हे मुने, तुम्हारी सन्ध्या का क्या प्रमाण है? मेरे साथ व्यतीत हुए समय पर विचार कीजिये। उसके वचन सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों से हृदय में ध्यान करते हुए विचार करने पर समय का अनुमान लगाया, तो रमण करते हुए सत्तावन वर्ष व्यतीत हो गये थे। उस समय का विचार करके मुनि की आंखों में क्रोध से अंगारे निकलने लगे। तप का भक्षण करने वाली वह अप्सरा काल स्वरूप नज़र आने लगी, कष्ट से इकट्ठा हुआ मेरा तप इसने नष्ट कर दिया। कांपते हुए होंठों से व्याकुल इन्द्रिय वाले मुनि ने उसे शाप दे दिया, वह मुनि, स्वयं पतित मुनि उसे अनाप-शनाप वाणी से धिक्कारने लगा। उस पतित मुनि के शाप से दग्ध वह विनयपूर्वक उस मुनि की कृपा चाहने लगी, हे स्वामी तुमने मेरे साथ इतने वर्षों तक संभोग

मिन्प्रसादं कुरु सुव्रत ॥३८ ॥ मुनिरुवाच ॥ शृणु मद्वचनं भद्रे शापानुग्रहकारणम् ॥ किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं महत्तपः ॥३९ ॥ चैत्रस्य कृष्णपक्षे या भवत्येकादशी शुभा ॥ पापमोचनिका नाम सर्वपापक्षयङ्करी ॥४० ॥ तस्या व्रते कृते सुभ्रु पिशाचत्वं प्रयास्यति ॥ इत्युक्त्वा तां स मेधावी जगाम पितुराश्रमम् ॥४१ ॥ तमागतं समालोक्य च्यवनः प्रत्युवाच ह ॥ किमेतद्विहितं पुत्र त्वया पुण्यक्षयः कृतः ॥४२ ॥ मेधाव्युवाच ॥ पापं कृतं महत्तात रमिता चाप्सरा मया ॥ प्रायश्चित्तं ब्रूहि तात येन पापक्षयो भवेत् ॥४३ ॥ च्यवन उवाच ॥ चैत्रस्य चासिते पक्षे नाम्ना वै पापमोचिनी ॥ यस्याः व्रते कृते पुत्र पापराशिः क्षयं व्रजेत् ॥४४ ॥ इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं

किया है, मेरे साथ दिन एवं रात्रियां व्यतीत की हैं। सज्जन पुरुष जिस के साथ सात पग भी चल लेता है, वह उसका अनिष्ट नहीं सोचता है। तुम्हारे साथ तो मेरे बहुत वर्ष व्यतीत हुये हैं। इसलिये अपनी सज्जनता का त्याग मत करो। मेरे साथ आनन्द में बिताए हुए समय का विचार करो, हे स्वामी, मुझ पर प्रसन्न हो, मेरा अहित मत करो। मुनि बोले, हे भद्रे, शाप का अनुग्रह करने वाला मेरा वचन सुनो। चैत्रमास के कृष्ण पक्ष में होने वाली पापमोचनी एकादशी का व्रत करो, जिसके करने से तुम्हारा पिशाचत्व दूर हो जाएगा। ऐसा कहकर वह मुनि अपने पिता च्यवन के आश्रम में चले गया। उसे आया हुआ जानकर च्यवन ऋषि ने कहा, हे पुत्र, तुमने यह पाप कर्म करके अपने तप को नष्ट कर दिया। पिता के वचन सुनकर वह मुनि बोला, हे पिता, मैंने बहुत निकृष्ट कर्म किया, अप्सरा के साथ

कृतं तेन व्रतोत्तमम्॥ गतं पापं क्षयं तस्य पुण्ययुक्तौ बभूव सः ॥४५॥ साऽप्येवं मंजुघोषा च कृत्वा तद् व्रतमुत्तमम्। पिशाचत्वविनिर्मुक्ता पापमोचननिकाव्रतात्॥४६॥ दिव्यरूपधरा साऽपि गता नाकं वराऽप्सरा॥ लोमश उवाच॥ इत्थंभूतप्रभावं हि पापमोचनिकाव्रतात्॥४७॥ पापमोचनिकां राजन्ये कुर्वन्ति च मानवाः॥ तेषां पापं च यत्किंचित्तत्सर्वं क्षयमाव्रजेत्॥४८॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोहसहस्रफलप्रदा॥ ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः॥४९॥ व्रतस्य चास्य करणात्पापमुक्ता भवन्ति ते॥ बुहुपुण्यप्रदं ह्येतत्करणाद्व्रतमुत्तमम्॥५०॥

मैंने रमण किया है। इसलिये मुझे इसका प्रायश्चित्त कहें, जिससे मेरे पापों का नाश हो। च्यवन ऋषि ने कहा, चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत करो। पिता के वचनों को सुनकर मेधावी मुनि ने एकादशी का व्रत किया, उसके पाप नष्ट हो गये और उसने पुण्यों को अर्जित किया। उस मंजुघोषा अप्सरा ने भी उस एकादशी का व्रत किया, जिसके कारण उसका पिशाचत्व दूर हो गया। वह श्रेष्ठ अप्सरा भी दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग लोक में चले गयी। लोमश बोले, हे राजन, इस पिशाचमोचनी एकादशी का ऐसा प्रभाव है। हे राजन, जो इस पिशाचमोचनी एकादशी के व्रत को करता है, उसका जो कुछ पाप है, वह सब नष्ट हो जाता है। पढ़ने और सुनने पर हज़ार गौ के दान का फल मिलता है। ब्रह्महत्यारा, भ्रूणहा, सुरापी और गुरु तल्पगामी, इस व्रत के करने से सब पापों से छूट जाते हैं। इस व्रत के करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।

चैत्र कृष्ण पक्ष की पापमोचनी का माहात्म्य पूर्ण हुआ।

१०. चैत्र शुक्लपक्ष कामदा एकादशी

सूत उवाच ॥ देवकीनन्दनं कृष्णं वासुदेवात्मजं हरिम् ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि महापातक-नाशनम् ॥१ ॥ युधिष्ठिराय कृष्णेन कथितानि महात्मना ॥ एकादशी माहात्म्यानि नानापापहराणि च ॥२ ॥ अष्टादशपुराणेभ्यो विविच्य सुमहात्मना ॥ चतुर्विंशतिसंख्यानि नानाऽऽख्यानैर्युतानि च ॥३ ॥ तानि वक्ष्यामि भो विप्राः शृणुध्वं सुसमाहिताः युधिष्ठिर उवाच ॥ वासुदेव नमस्तुभ्यं कथयस्व ममाग्रतः ।।४ ॥ चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वैकमना राजन् कथामेतां पुरातनीम् ॥५ ॥ वशिष्ठो यामकथयत्प्राग् दिलीपाय पृच्छते ॥

सूत जी बोले, वसुदेव के पुत्र देवकीनन्दन श्री कृष्ण को नमस्कार करके महापातकों को नाश करने वाले व्रत को कहता हूं। भगवान् कृष्ण के द्वारा नाना प्रकार के पापों को हरने वाली एकादशी के माहात्म्य को युधिष्ठिर जी से कहा है। उनको मैं कहता हूं, सावधान होकर सुनो। युधिष्ठिर बोले, हे वासुदेव, आपको नमस्कार है, हे प्रभो, चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है। श्री कृष्ण बोले, हे राजन, इस विषय में एक पुरातन कथा को कहता हूं, जिसको राजा दलीप के पूछने पर महर्षि वसिष्ठ ने कहा था। राजा दलीप ने कहा, हे महर्षि, चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, कृपा करके कहिये। वसिष्ठ मुनि बोले, इस पक्ष की एकादशी अति पवित्र है, पाप रूपी ईंधन के लिये दावानल है, यह एकादशी पापों का

दिलीप उवाच॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ॥६ ॥ चैत्रमासिसिते पक्षेकिंनामै-कादशी भवेत्॥ वशिष्ठ उवाच॥ साधु पृष्टं नृपश्रेष्ठ कथयामि तवाग्रतः ॥७॥ एकादशी पुण्यतमा पापेन्धनदावानलः॥ शृणु राजन् कथामेतां पापघ्नीं पुत्रदायिनीम् ॥८ ॥ पुरा रत्नपुरे रम्ये हेमरत्नविभूषिते॥ पुण्डरीकमुखा नागा निवसन्ति मदोत्कटाः ॥९ ॥ तस्मिन्पुरे पुण्डरीको राजा राज्यं करोति च॥ गन्धर्वैः किन्नरैश्चैव ह्यप्सरोभिः सुसेव्यते ॥१० ॥ वराऽप्सरा तु ललिता गन्धर्वो ललितस्तथा॥ उभौ रागेण संयुक्तौ दम्पती कामपीडितौ ॥११ ॥ रेमाते स्वगृहे रम्ये धनधान्ययुते सदा॥ ललितायास्तु हृदये पतिर्वसतिसर्वदा ॥१२ ॥ हृदये तस्य ललिता नित्यं वसति भामिनी॥ एकदा पुण्डरीकाद्याः क्रीडन्ति सदसि स्थिता ॥१३ ॥ गीतगानं प्रकुरुते

नाश करने वाली, पुत्र को देने वाली है। पहले समय में हेम रत्नों से विभूषित रत्नपुर नाम का नगर था। उस नगर में पुण्डरीक नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं द्वारा सेवित था। वहां ललिता नाम की एक अप्सरा ललित नाम के गन्धर्व पर मोहित हो गयी। दोनों स्त्री-पुरुष प्रीति युक्त होकर काम से पीड़ित हो गये और धन-धान्य से युक्त अपने घर में सदा विहार करने लगे। ललिता के हृदय में सदा पति का वास रहता था तथा ललित के हृदय में सदा ललिता का गहरा स्थान था। एक बार पुण्डरीक आदि गन्धर्व सभा में उपस्थित होकर क्रीड़ा कर रहे थे और वह ललित स्त्री के बिना उस समय गान कर रहा था। अपनी

ललितो दयितां विना ॥ पदबन्धे स्खलज्जिह्वो बभूव ललितां स्मरन् ॥१४॥ मनोभावं विदित्वास्य कर्कोटो नागसत्तमः। पदबन्धच्युतिं तस्य पुण्डरीके न्यवेदयत् ॥१५॥ शशाप ललितं तत्र मदनातुरचेतसम् ॥ राक्षसो भव दुर्बुद्धे क्रव्यादः पुरुषादकः ॥१६॥ यतः पत्नीवशो जातो गायमानो ममाग्रतः। वचनात्तस्य राजेन्द्र रक्षोरूपो बभूव ह ॥१७॥ रौद्राननो विरूपाक्ष दृष्टमात्रो भयंकर ॥ बाहू योजनविस्तीर्णौ मुखं कन्दरसन्निभम् ॥१८॥ चन्द्रसूर्यनिभे नेत्रे ग्रीवा पर्वत-सन्निभा ॥ नासारन्ध्रे तु विवरे अधरौ योजनार्धकौ ॥१९॥ शरीरं तस्य राजेन्द्र उच्छ्रितं योजना-ष्टकम् ॥ ईदृशो राक्षसः सोऽभूद् भुंजानः कर्मणः फलम् ॥२०॥ ललिता तमथालोक्य स्वपतिं विकृताकृतिम् ॥ चिन्तयामास मनसा दुःखेन महताऽर्दिता ॥२१॥ किं करोमि क्व गच्छामि

प्रेयसी ललिता के बिना उसकी जीभ ललिता के स्मरण से स्खलित हो गयी। नागों में श्रेष्ठ कर्कोटक उसके मन के भाव को जान कर पदबन्धन की गलती को पुण्डरीक से कह दिया। काम द्वारा व्याकुल चित्त वाले ललित को पुण्डरीक ने शाप दे दिया। हे दुर्बुद्धे, तू कच्चे मांस एवं पुरुषों को खाने वाला राक्षस हो जा। मेरे आगे गाता हुआ तू काम के वश हो गया है। हे राजन, उसके वचन से वह गन्धर्व राक्षस हो गया। उसका मुख भयानक हो गया, नेत्र बिगड़ गये, उसकी भुजायें बहुत लम्बी हो गईं, होंठ मोटे हो गये, उसका शरीर बहुत ऊँचा हो गया। उस विकृत आकृति वाले अपने पति को देखकर ललिता बहुत चिन्तित हो गई। दुःख से व्याकुल होकर

पतिः पापेन पीडितः ॥ इति संस्मृत्य मनसा न शर्म लभते तु सा ॥२२ ॥ चचार पतिना सार्द्धं ललिता गहने वने। बभ्राम विपिने दुर्गे कामरूपः स राक्षसः ॥२३ ॥ निर्घृणः पापनिरतो विरूपः पुरुषादकः ॥ न सुखं लभते रात्रौ न दिवा पापपीडितः ॥२४॥ ललिता दुःखिताऽतीव पतिं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ भ्रमन्ती तेन सा सार्धं रुदती गहने वने ॥२५ ॥ कदाचिदगमद्विंध्यशिखरे बहुकौतुके ॥ ऋष्यशृंगमुनेस्तत्र आश्रमं दृष्ट्वा शुभम् ॥२६ ॥ शीघ्रं जगाम ललिता विनयावनता-स्थिता ॥ प्रत्युवाच मुनिं दृष्ट्वा का त्वं कस्य सुता शुभे ॥२७॥ किमर्थं हि समायाता सत्यं वद ममाग्रतः ॥ ललितोवाच ॥ वीरधन्वेति गन्धर्वः सुता तस्य महात्मनः ॥२८॥ ललिता नाम मां

सोचने लगी, अब मैं क्या करूं, कहां जाऊँ, मेरे पति पाप से पीड़ित हो गये हैं। ललिता अपने पति के साथ घोर जंगल में रहने लगी। वह कामरूप राक्षस घने जंगल में घूमने लगा। वह राक्षस रूप गन्धर्व कभी घूमते हुए विन्ध्याटवी के शिखर पहुंचे। वहां उन्होंने ऋष्यशृंग मुनि का आश्रम पद देखा। ललिता वहां शीघ्र जाकर विनय से विनम्र होकर ऋषि के सामने स्थित हो गई। उसे देख मुनि ने कहा, हे कल्याणि, तुम कौन हो, किस की पुत्री हो, यहां किस लिये आई हो, मेरे आगे स्पष्ट बात कहो। तब ललिता ने कहा, हे मुनिराज, मैं वीर धन्वा नाम के गन्धर्व की कन्या हूं, ललिता मेरा नाम है, मैं पति के निमित्त यहां आई हूं। हे मुने, मेरे पति शाप के कारण राक्षस रूप हो गये हैं, वह भयानक दुराचारी बन गये हैं, उन की हालत को देखकर मैं बहुत दुःखी हूं। हे प्रभो,

विद्धि पत्यर्थमिह चागताम् ॥ भर्त्ता मे शापदोषेण राक्षसोऽभून्महामुने ॥२९ ॥ रौद्ररूपो दुराचारस्तं दृष्ट्वा नास्ति मे सुखम् ॥ साम्प्रतं शाधि मां ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं वद प्रभो ॥३० ॥ येन पुण्येन विप्रेन्द्र राक्षसत्त्वाद्विमुच्यते ॥ ऋषिरुवाच ॥ चैत्रमासस्य रम्भोरु शुक्लपक्षस्य साम्प्रतम् ॥३१ ॥ कामदैकादशी नाम्नी या कृता कामदा नृणाम् ॥ कुरुष्व तद्व्रतं भद्रे विधिपूर्वं मयोदितम् ॥३२ ॥ तस्य व्रतस्य यत्पुण्यं तत्स्वभर्त्रे प्रदीयताम् ॥ दत्ते पुण्ये क्षणात्तस्य शापदोषः प्रशाम्यति ॥३३ ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताऽभवत् ॥ उपौष्यैकादशीं राजन् द्वादशीदिवसे तदा ॥३४ ॥ विप्रस्यैव समीपे तु वासुदेवाग्रतः स्थिता ॥ वाक्यमूचे तु ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै ॥३५ ॥

मुझे शिक्षा दीजिये, मुझे प्रायश्चित्त कहें, जिसके कारण मैं सुखी हो सकूं। मेरा मार्ग दर्शन करें जिसके पुण्य से मेरे पति का राक्षस रूप समाप्त हो जाये। ऋषि बोले, हे कल्याणि, चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी अब आई है, यह सब कामनाओं को देने वाली है। हे भद्रे, विधिपूर्वक इस एकादशी का सेवन करो, उस व्रत के पुण्य को अपने स्वामी के लिये प्रदान करो। पुण्य के फल को देने पर तुम्हारे पति शाप से मुक्त हे जायेंगे। इस प्रकार मुनि के वचन के सुनकर ललिता बहुत प्रसन्न हुई। एकादशी का व्रत करके, द्वादशी के दिन व्रत का पारण किया। श्री कृष्ण के आगे मुनि के समीप उसने पति को तारने के लिये ये वचन कहे। हे प्रभो, मैंने जो कामदा एकादशी का व्रत किया है, उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति की पिशाच योनि छूट जाये। उस समय

मया तु यद् व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणम् ॥ तस्य पुण्यप्रभावेण गच्छत्वस्य पिशाचता ॥३६ ॥
ललिता-वचनादेव वर्तमानोऽपि तत्क्षणे ॥ गतपापः सः ललितो दिव्यदेहो बभूव ह ॥३७ ॥
राक्षसत्वं गतं तस्य प्राप्तो गन्धर्वतां पुनः ॥ हेमरत्नसमाकीर्णौ रेमे ललितया सह ॥३८ ॥ तौ
विमानसमारूढौ पूर्वरूपाधिकावुभौ ॥ दम्पती चापि शोभेतां कामदायाः प्रभावतः ॥३९ ॥ इति
ज्ञात्वा नृपश्रेष्ठ कर्तव्यैषा प्रयत्नतः ॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ॥४० ॥
ब्रह्महत्यादिपापघ्नी पिशाचत्वविनाशिनी ॥ नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥
पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि वाजपेयफलं भवेत् ॥४१ ॥

राक्षस देह में स्थित वह गन्धर्व पाप रहित होकर दिव्यदेह धारी हो गया। उसका राक्षसपन जाता रहा। अपनी पत्नी ललिता के साथ अपने घर में गया और अपनी पत्नी के साथ विहार करने लगा। वे दोनों स्त्री-पुरुष कामदा के प्रभाव से पहले से भी अधिक रूपवान हो गये। हे राजन, इसलिये पूरे यत्न के साथ इस कामदा एकादशी को करना चाहिये। लोगों के हित के लिये इसके माहात्म्य को आपके प्रति कहा है। पिशाच योनि का नाश करने वाला इससे उत्तम व्रत कोई नहीं है।

चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी कामदा का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

११. वैशाख कृष्णपक्ष वरूथिनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ वैशाखस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ महिमां कथय मे वासुदेव नमोऽस्तुते ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सौभाग्यदायिनी राजन्निहलोके परत्र च ॥ वैशाखकृष्णपक्षे तु नाम्ना चैव वरूथिनी ॥२ ॥ वरूथिनी व्रतेनैव सौख्यं भवति सर्वदा ॥ पापहानिश्च भवति सौभाग्यप्राप्तिरेव च ॥३ ॥ दुर्भगाऽपि करोत्येनां स्त्री सौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ लोकानां चैव सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥४ ॥ सर्वपापहरा नृणां गर्भवासनिकृन्तनी ॥ वरूथिन्या व्रतेनैव मान्धाता स्वर्गतिं गतः ॥५ ॥ धुन्धुमारादयोश्चान्ये राजानो बहवस्तथा ॥ ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान् भवः ॥६ ॥ दशवर्षसहस्त्राणि तपस्तप्यति यो नरः ॥ तत्तुल्यं फलमाप्नोति वरूथिन्या व्रता-

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण, वैसाख मास के कृष्ण पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, क्या उसकी महिमा है। यह मुझ से कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन, इस लोक में एवं परलोक में सौभाग्य को देने वाली इस मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम वरूथिनी है। इसको करने से पापों का क्षय होता है, दुर्भगा स्त्री सौभाग्य को प्राप्त करती है। सब लोगों को भुक्ति और मुक्ति देने वाली है। इस व्रत को करने से मान्धाता राजा स्वर्ग लोक में गये। इसी प्रकार धुन्धुमार आदि बहुत से राजा पापों से तथा भगवान् शंकर ब्रह्म

दपि ॥७॥ श्रद्धावान्यस्तु कुरुते वरूथिन्याः व्रतं नरः ॥ वाञ्छितं लभते सोऽपि इहलोके परत्र च ॥८॥ पवित्रा पावनी ह्येषा महापातकनाशिनी । भुक्तिमुक्तिप्रदा ह्येषा कर्तृणां नृपसत्तम ॥९॥ अश्वदानान्नृपश्रेष्ठ गजदानं विशिष्यते ॥ गजदानाद् भूमिदानं तिलदानं ततोऽधिकम् ॥१०॥ ततः सुवर्णदानं तु ह्यन्नदानं ततोऽधिकम् ॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥११॥ पितृदेवमनुष्याणां तृप्तिरन्नेन जायते ॥ तत्समं कविभिः प्रोक्तं कन्यादानं नृपोत्तम ॥१२॥ धेनुदानं च तत्तुल्यमित्याह भगवान्स्वयम् ॥ प्रोक्तेभ्यः सर्वदानेभ्यो विद्यादानं विशिष्यते ॥१३॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ कन्या वित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥१४॥ ते नरा नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥१५॥ यश्च

कपाल से निर्मुक्त हो गये। दस हज़ार वर्षों तक जो निरन्तर तप करता है, उसके फल के समान इस वरूथिनी एकादशी का फल होता है। श्रद्धावान् मनुष्य जो इस वरूथिनी के व्रत को करता है, वह पुरुष इस लोक एवं परलोक में वांछित फल को प्राप्त करता है। पवित्र एवं दूसरे को पावन करने वाली यह एकादशी महापातकों का नाश करती है। पहले समय में नर्मदा तट के समीप मान्धाता नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा तपस्वी तथा दानी था। एक बार वह घने जंगल में तपस्या कर रहा था, तभी एक जंगली भालू ने आकर तपस्या में मग्न राजा का पैर चाटना आरम्भ कर दिया। फिर वह भालू राजा को घसीट कर ही ले गया। परेशान राजा ने भगवान

गृह्णाति लोभेन कन्यां कृत्वा च तद्धनम् ॥ सोऽन्यजन्मनि राजेन्द्र ओतु भवति निश्चितम् ॥१६ ॥ कन्यां वित्तेन यो दद्याद्यथाशक्ति स्वलंकृताम् ॥ तत्पुण्यसंख्यां कर्तुं न चित्रगुप्तो भवत्यलम् ॥१७ ॥ तत्फलं समवाप्नोति नरः कृत्वा वरूथिनीम् ॥ कांस्यं मासं मसूरान्नं चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥१८ ॥ शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥१९ ॥ द्यूतं क्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम् ॥ परापवादं पैशुन्यं पतितैः सह भाषणम् ॥२० ॥ क्रोधं चैवानृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च क्षौद्रं वितथभाषणम् ॥२१ ॥ व्यायामं च प्रयासं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ क्षारं तैलं परान्नं च

विष्णु का स्मरण किया, जिससे विष्णु ने उस भालू को चक्र से समाप्त कर दिया। तब तक राजा का पैर वह भालू खा चुका था। पैर के न रहने से राजा बहुत दुःखी हुआ। उस दुःखी मान्धाता से भगवान् ने कहा कि तुम बाराह रूप में मेरा पूजन करो, जिससे तुम्हारी विकलांगता दूर हो जायेगी। ऐसा करने से मान्धाता की विकलांगता दूर हो गई और निरन्तर एकादशी के सेवन से वह स्वर्गधाम को गया। हे राजन, इन दिनों मांस, मसूर की दाल, कांसपात्र का भोजन, दूसरी बार भोजन, पराया अन्न, शहद, शाक, कोदों, चना, स्त्री प्रसंग छोड़ देना चाहिये। हे राजन, सब दानों में अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है। अन्न से ही पितरों, देवता और मनुष्यों की तृप्ति होती है। कवियों ने भी कन्यादान को भी अन्नदान के समान कहा है। उस अन्नदान का जो फल है, वही फल

द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥२२॥ अनेन विधिना राजन्विहता यैर्वरूथिनी ॥ सर्वपापक्षयं कृत्वा दद्याच्चान्तेऽक्षयां गतिम् ॥२३॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ॥ क्षपारितनयाद्भी-तैर्नरदेव वरूथिनी ॥२४॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्त्रफलं लभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२५॥

इस एकादशी के सेवन से मिलता है। यमराज का भय उस व्यक्ति को कष्ट नहीं देता जो इस एकादशी का सेवन करते हैं। अन्त में वे लोग परमधाम को प्राप्त करते हैं।

वैसाख मास के शुक्ल पक्ष की वरूथिनी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

१२. वैसाख कृष्णपक्ष मोहिनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ वैशाख शुक्लपक्षे तु किं नामैकादशीभवेत् ॥ किं फलं को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कथयामि कथामेतां शृणु त्वं धर्मनन्दन ॥ वशिष्ठो यामकथयत्पुरा रामाय पृच्छते ॥२॥ राम उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥

युधिष्ठिर बोले, हे वासुदेव, वैसाख मास के शुक्ल पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है और उसकी क्या विधि है, आप मुझसे कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे धर्मपुत्र, इस कथा को मैं तुमसे कहता हूं, ध्यान लगाकर सुनो।

सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखनिकृन्तनम् ॥३ ॥ मया दुःखानि भुक्तानि सीताविरहजानि वै ॥ ततोऽहं भयभीतोऽस्मि पृच्छामि त्वां महामुने ॥४॥ वशिष्ठ उवाच॥ साधु पृष्टं त्वया राम तवैषा नैष्ठिकी मतिः ॥ त्वन्नामग्रहणेनैव पूतो भवति मानवः ॥५ ॥ तथापि कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥ पवित्रं पावनानां च व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥६ ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे द्वाद्वशी राम या भवेत् ॥ मोहिनी नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा परा ॥७॥ मोहजालात्प्रमुच्येत पातकानां समूहतः ॥८ ॥ अस्याः व्रतप्रभावेण सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥८ ॥ अतस्तु कारणाद्राम कर्त्तव्यैषा भवादृशैः ॥ पातकानां क्षयकारी मह़ादुःखविनाशिनी ॥९ ॥ शृणुष्वैकमना राम कथां पुण्यप्रदां

पहले इस कथा को पूछने पर वसिष्ठ मुनि ने श्री रामचन्द्र जी से कहा था। श्रीराम चन्द्र जी ने कहा, भगवन्, सब पापों को क्षय करने वाला, दुःखों का नाश करने वाला, सब व्रतों में उत्तम व्रत के विषय में जानना चाहता हूं। मैंने निश्चय करके सीता के विरह से उत्पन्न दुःखों को सहन किया है, जिससे मैं भयभीत हूं। वसिष्ठ मुनि बोले, हे राम, तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है, तुम्हारी नैष्ठिकी मति है, तुम्हारे नाम के ग्रहणमात्र से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। इस पर मनुष्यों की हितकामना से मैं तुम से कहता हूं। हे राम, वैसाख मास के शुक्ल पक्ष में मोहिनी नाम की एकादशी होती है। उस व्रत के प्रभाव से मनुष्य महाजाल से और पापों के समूह से छूट जाता है। आप इस कथा के विषय में सुनो। सरस्वती नदी के तट पर एक शुभ भद्रावती नाम की नगरी थी। उसमें

शुभाम्॥ अस्याः श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति॥१०॥ सरस्वत्यास्तटे रम्ये पुरी भद्रावती शुभा॥ द्युतिमान्नाम नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै। सोमवंशोद्भवो राम धृतिमान्सत्य संगरः॥ तत्र वैश्यो निवसति धनधान्य समृद्धिमान्॥१२॥ धनपाल इति ख्यातः पुण्यकर्मप्रवर्तकः॥ प्रपासत्राद्यायतनतडागारामकारकः॥१३॥ विष्णुभक्तिपरः शान्तस्तस्यासन्पञ्च पुत्रकाः॥ सुमना द्युतिमांश्चैव मेधावी सुकृती तथा॥१४॥ पञ्चमो धृष्टबुद्धिश्च महापापरतः सदा॥ वारस्त्रीसंगनिरतो विटगोष्ठी विशारदः॥१५॥ द्यूतादिव्यसनासक्तः परस्त्रीरतिलालसः॥ न देवानतिथीन्वृद्धान् पितॄंश्चैव द्विजानपि॥१६॥ अन्यायकर्त्ता दुष्टात्मा पितुर्द्रव्यक्षयंकरः॥ अभक्ष्यभक्षकः पापः सुरापानरतः सदा॥१७॥ वेश्याकण्ठक्षिप्तबाहुर्भ्रमन् भ्रष्टश्चतुष्पथे॥

धृतिमान नाम का राजा राज्य करता था। चन्द्रवंश में उत्पन्न वह धृतिमान राजा सत्य प्रतिज्ञा वाला था। उस नगरी में धन-धान्य की समृद्धि से युक्त एक वैश्य निवास करता था। धनपाल नाम का वह वैश्य धर्म-कर्म को करने वाला था। प्याऊ, तालाब. कुआं, बगीचा आदि बनाने वाला, यज्ञ को करने वाला, विष्णु भक्ति में संलग्न वह शान्त स्वभाव का था। उसके पांच पुत्र थे। सुमना, द्युतिमान्, मेधावी और सुकृति। पांचवां पुत्र महापाप में निमग्न धृष्ट बुद्धि नाम का था। वह अनेक व्यसनों को करने वाला, अतिथि, ब्राह्मण, देवता आदि का निन्दक था। वह अन्यायी दुष्टात्मा पिता के धन का नाश करने वाला था। शराब पीने वाले, अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करने वाला था। वैश्याओं के साथ रहता हुआ चौराहों में इधर-

पित्रा निष्कासितो गेहात्परित्यक्तश्च बान्धवैः ॥१८॥ स्वदेहभूषणान्येव क्षयं नीतानि तेन वै ॥ गणिकाभिः परित्यक्तः निन्दितश्च धनक्षयात् ॥१९॥ ततश्चिन्तापरो जातो वस्त्रहीनः क्षुधा-ऽर्दितः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि केनोपायेन जीव्यते ॥२०॥ तस्करत्वं समारब्धं तत्रैव नगरे पुनः ॥ गृहीतो राजपुरुषैर्मुक्तश्च पितृगौरवात् ॥२१॥ पुनर्बद्धः पुनर्मुक्तः पुनर्बद्धः ससंभ्रमैः ॥ धृष्टबुद्धिर्दुराचारो निबद्धो निगडैर्दृढैः ॥२२॥ कशाघातैस्ताडितश्च पीडितश्च पुनः पुनः ॥ न स्थातव्यं हि मन्दात्मंस्त्वया मद्देशगोचरे ॥२३॥ एवमुक्त्वा ततो राज्ञा मोचितो दृढबन्धनात् ॥ निर्जगाम भयात्तस्य गतोऽसौ गहनं वनम् ॥२४॥ क्षुत्तृषापीडितश्चायमितश्चेतश्च धावति ॥

उधर घूमता रहता था। उस दुराचारी को पिता ने घर से निकाल दिया। भाई-बन्धुओं ने भी उसे छोड़ दिया। फिर वह अपने शरीर में पड़े आभूषणों को बेचकर धन का अपव्यय करने लगा। धन के क्षीण हो जाने पर वैश्याओं ने उसे छोड़ दिया, वैश्याएं उसकी निन्दा करने लगीं। उसके पास वस्त्रों का अभाव हो गया, भूख से व्याकुल रहने लगा। मन में सोचने लगा कि अब मैं क्या करूं, कहां जाऊँ, किस उपाय से जीवन को व्यतीत करूं। फिर उसी नगरी में चोरी करने लगा। राजा के सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया, मगर पिता के प्रभाव के कारण छोड़ दिया। बार-बार उसी प्रक्रिया के होने पर राजा ने उसे कारागार में बन्द कर दिया। वहां उसे अनेक प्रकार की यातनाएं दी गईं। आखिर राजा ने उसे देश से निकल जाने का आदेश दे दिया। कारागार से बाहर निकलकर वह जंगल की ओर चल दिया। भूख-प्यास के व्याकुल इधर-उधर वहां पर अनेक

सिंहवन्निजघानाऽसौ मृगसूकरचित्तलान् ॥२५॥ आमिषाहारनिरतो वने तिष्ठति सर्वदा ॥ करे शरासनं कृत्वा निषंगं पृष्ठसंगतम् ॥२६॥ अरण्यचारिणो हन्ति पक्षिणश्च चतुष्पदान् ॥ चकोरांश्च मयूरांश्च कङ्कांस्तित्तिरमूषकान् ॥२७॥ एतानन्यान् हन्ति नित्यं धृष्टधीरतिनिर्दयः ॥ पूर्वजन्मकृतैः पापैर्निमग्नः पापकर्दमे ॥२८॥ दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्तयन् सोऽप्यहर्निशम् ॥ कौण्डिन्य-स्याश्रमपदं प्राप्तः पुण्यवशात्क्वचित् ॥२९॥ माधवे मासि जाह्नव्या कृतस्नानं तपोधनम् ॥ आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः ॥३०॥ तद्वस्त्रबिन्दुस्पर्शेन गतपाप्मा हताशुभः ॥ कौण्डिन्यस्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥३१॥ धृष्टबुद्धिरुवाच ॥ प्रायश्चित्तं वद ब्रह्मन् विना यत्नेन यद्भवेत् ॥ आजन्म कृतपापस्य नास्ति वित्तं ममाधुना ॥३२॥ ऋषि रुवाच ॥

पशु-पक्षियों को मार कर रहने लगा। पूर्व जन्म के कृत पापों के कारण वह पाप रूपी कीचड़ में धंसता गया। दुःख एवं शोक से मुक्त वह रात-दिन चिन्ता में रहता। फिर किसी पुण्य के प्रभाव से कौण्डिन्य ऋषि के आश्रम में गया। वैसाख मास में गंगा में स्नान कर वापिस आ रहे शोक संतप्त वह धृष्ट बुद्धि, ऋषि के समीप पहुंचा। उन ऋषि के वस्त्रों से गिरे हुए जल की बूंदों के स्पर्श से उस मनुष्य के पाप नष्ट हो गये। ऐसा वह कौण्डिन्य ऋषि के आगे हाथ जोड़कर बोला, हे ब्राह्मण, ऐसा प्रायश्चित्त बतलाओ, जो थोड़े यत्न से ही हो सके। मैंने इस जन्म में अनेक पाप किये हैं। मैं धनहीन हो चुका हूं, प्रायश्चित्त करने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है। ऋषि बोले, जिससे तेरे पापों का क्षय होगा, सो तू एकाग्रमन से सुन। वैसाख

शृणुष्वैकमना भूत्वा येन पापक्षयस्तव॥ वैशाखस्य सिते पक्षे मोहनी नाम नामतः ॥३३॥
एकादशीव्रतं तस्मात्कुरु मद्वाक्यचोदितः ॥ मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं नयति देहिनाम् ॥३४॥
बहुजन्मार्जितान्येषां मोहिनी समुपोषिता ॥ इति वाक्यं मुने श्रुत्वा धृष्टबुद्धिर्हसन् हृदि ॥३५॥
व्रतं चकार विधिवत्कौण्डिन्यस्योपदेशतः ॥ कृते व्रते नृपश्रेष्ठ हतपापो बभूव सः ॥३६॥
दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरि संस्थितः ॥ जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रव-वर्जितम् ॥३७॥
इतीदृशं रामचन्द्रः तमोमोहनिकृन्तनम् ॥ नातः परतरं किञ्चित्त्रैलोक्य सचरा-चरे ॥३८॥
यज्ञादितीर्थदानानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्त्रफलं लभेत् ॥३९॥

मास के शुक्ल पक्ष में मोहिनी नाम की एकादशी होती है, तू मेरी प्रेरणा से उस व्रत को कर। वह एकादशी तिथि सुमेरु पर्वत के समान भी मनुष्य के पापों का नाश कर देती है। मुनि के ऐसे वचन सुनकर अपने मन में हंसने लगा और मुनि के उपदेश से उसने विधिवत् एकादशी का व्रत किया। हे नृप श्रेष्ठ, व्रत के करने से वह पाप रहित हो गया। उसके बाद वह दिव्य देह होकर गरुड़ पर आरूढ़ होकर विष्णु लोक में चला गया। हे राम, तम और मोह को दूर करने वाला यह ऐसा व्रत है कि चराचर त्रैलोक्य में इससे अधिक और कुछ नहीं। यज्ञादिक-दान आदि इसकी सोलहवीं कला के समान भी नहीं। यह महापुण्यों को देने वाली महत्त्वपूर्ण एकादशी है।

वैसाख मास के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी का माहात्म्य पूर्ण हुआ।

१३. ज्येष्ठ कृष्णपक्ष अपरा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ ज्येष्ठस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥ श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं तद्वदस्व जनार्दन ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन् लोकानां हितकाम्यया ॥ बहुपुण्यप्रदा ह्येषा महापातकनाशिनी ॥२ ॥ अपरा नाम राजेन्द्र अपारफलदायिनी ॥ लोके प्रसिद्धतां याति अपरां यस्तु सेवते ॥३ ॥ ब्रह्महत्याभिभूतोऽपि गोत्रहा भ्रूणहा तथा ॥ परापवादवादी च परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥४ ॥ अपरासेवनाद्राजन् विपाप्मा भवति ध्रुवम् ॥ कूटसाक्ष्यं मानकूटं तुलाकूटं करोति यः ॥ कूटवेदं पठेद्विप्रः कूटशास्त्रं करोति च ॥ ज्योतिषोकूटगणकः

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसके माहात्म्य को सुनने की इच्छा है। श्री कृष्ण बोले, हे राजन, लोगों की भलाई के लिये तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। महापापों का नाश करने वाली, बहुत पुण्यों को देने वाली, अपार फल को देने वाली यह अपरा एकादशी है। इसका सेवन करने से मनुष्य लोक में प्रसिद्ध हो जाता है। ब्रह्महत्यारा, गोहत्यारा, दूसरे की निन्दा करने वाला, पराई स्त्री से प्रीति करने वाला, इस अपरा एकादशी के सेवन से पाप रहित हो जाता है। जो झूठी गवाही देता है, झूठे प्रमाण देता है, जो कम तोलता है, जो ब्राह्मण वेदमन्त्रों को गल्त बोलता है, जो झूठे शास्त्रों को कहता

कूटायुर्वेदको भिषक् ॥६ ॥ कूटसाक्षिसमा ह्येते विज्ञेया नरकौकसः ॥ अपरासेवनाद्राजन् पापमुक्ता भवन्ति ते ॥७ ॥ क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ॥ स याति नरकं घोरं स्वीयधर्मबहिष्कृतः ॥८ ॥ अपरासेवनाद्राजन् पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ विद्यामधीत्य यः शिष्यो गुरुनिन्दां करोति वै ॥९ ॥ महापातकयुक्तोऽसौ निरयं याति दारुणम् ॥ अपरासेवनात्सोऽपि सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥१० ॥ अपरामहिमानं तु शृणु राजन्वदाम्यहम् ॥ पुष्करत्रितये स्नात्वा कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ॥११ ॥ गयायां पिण्डदानेन पितृणां तृप्तिदो यथा ॥ सिंहस्थिते देवगुरौ गौतमीस्नानतो नरः ॥१२ ॥ यत्फलं समवाप्नोति कुम्भे केदारदर्शनात् ॥ बदर्याश्रमयात्रायां

है, जो ज्योतिषी झूठ बोलकर लोगों को बतलाता है, झूठे उपाय बतलाता है, जो वैद्य रोगियों को गलत दवाई देता है, जो क्षत्रिय धर्म को छोड़कर युद्ध से पलायन कर जाता है, वह सब नरक के गामी होते हैं। विद्या को पढ़कर जो शिष्य गुरु की निन्दा करता है, वह पापी शिष्य भी अपरा के सेवन से पाप रहित हो जाता है। हे राजन्, अपरा एकादशी की महिमा को सुनो, तीनों पुष्करों में कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन स्नान करके जो फल प्राप्त होता है और गया में पिण्डदान करके सुपुत्र जैसे पितरों को तृप्ति प्रदान करता है, सिंह राशि में स्थित बृहस्पति में गौतमी नदी में स्नान करता है, कुम्भ की संक्रान्ति में केदारनाथ के दर्शन करता है, वदरिका आश्रम में जो दर्शन करता है, वहां के तीर्थ का सेवन करता है, सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्नान करने से, गोओं का दान

तत्तीर्थसेवनादपि ॥१३॥ यत्फलं समवाप्नोति कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ गजाश्वहेमदानानि यज्ञे कृत्स्नसुवर्णदः ॥१४॥ तत्फलं समवाप्नोति ह्यपराया व्रतान्नरैः ॥ अर्धप्रसूतां गां दत्त्वा सुवर्णं वसुधां तथा ॥१५॥ नरस्तत्फलमाप्नोति अपराव्रतसेवनात् ॥ पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धन-दवानलः ॥१६॥ पापान्धकारसूर्योऽयं पापसारंगकेसरी ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु पुत्तिका इव जन्तुषु ॥१७॥ जायन्ते मरणायैव एकादश्या व्रतं विना ॥ अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥१८॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ लोकानां च हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया ॥१९॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०॥

करने से जो फल मिलता है, वह अपरा एकादशी का व्रत करने से प्राप्त हो जाता है। यह व्रत पाप रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी, पाप रूपी ईंधन के लिये दावानल है और पाप रूपी अन्धकार के लिये सूर्य है तथा पाप रूपी मृग के लिये सिंह के समान है। इस एकादशी के दिन त्रिविक्रम भगवान का पूजन करना चाहिये। ऐसा करने वाला सब पापों से छूटकर विष्णु लोक में जाता है।

ज्येष्ठ मास कृष्ण पक्ष की अपरा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

१४. ज्येष्ठ कृष्णपक्ष निर्जला एकादशी

भीमसेन उवाच ॥ पितामह महाबुद्धे शृणु मे परमं वचः ॥ युधिष्ठिरश्च कुन्ती च तथा द्रुपदनन्दिनी ॥१ ॥ अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवस्तथैव च ॥ एकादश्यां न भुञ्जन्ति कदाचिदपि सुव्रत ॥२ ॥ ते मां ब्रुवन्ति वै नित्यं मा त्वं भुंक्ष्व वृकोदर ॥ अहं तानब्रुवंस्तात बुभुक्षा दुःसहा मम ॥३ ॥ दानं दास्यामि विधिवत्पूजयिष्यामि केशवम् ॥ विनोपवासं लभ्येत् कथमेकादशी-व्रतम् ॥४ ॥ भीमसेनवचः श्रुत्वा व्यासो वचनमब्रवीत् ॥ व्यास उवाच ॥ यदि स्वर्गोऽत्यभीष्टस्ते नरको दुष्ट एव च ॥५ ॥ एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामहः महाबुद्धे कथयामि तवाग्रतः ॥६ ॥ एकभुक्ते न शक्तोऽहमुपवासः कथं मुने ॥ वृकनामाऽपि यो वह्निः स सदा जठरे मम ॥७ ॥ अतीवान्नं यदाऽश्नामि तदा समुपशाम्यति ॥ एकं शक्तो-

भीमसेन बोले, महाबुद्धि पितामह, मेरा परम वचन सुनिये। युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कुन्ती तथा द्रौपदी एकादशी व्रत करके कभी भोजन नहीं करते। वे मुझे हमेशा कहते रहते हैं, हे वृकोदर तू भोजन मत कर। हे तात, मैं उनसे कहता हूं कि मेरी भूख दुःसह है, मुझसे भूख नहीं रुकती। मैं केशव का पूजन कर सकता हूं। अनेक प्रकार से दान दे सकता हूं, व्रत किये बिना मुझे उपवास का फल कैसे मिल सकता है। भीमसेन का यह

ऽस्म्यहं कर्तुं चोपवासं महामुने ॥८ ॥ येनैव प्राप्यते स्वर्गस्तत्करोमि यथातथम् ॥९ ॥ तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥९ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा मे मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया ॥ कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥१० ॥ सुखोपायं चाल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् ॥ पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ॥११ ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरु-भयोरपि ॥ एकादश्यां न भुङ्क्ते यो न याति नरकं तु सः ॥१२ ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् ॥ भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत ॥१३ ॥ भीमसेन उवाच ॥ पितामह न शक्तोऽहमुपवासे करोमि किम् ॥ ततो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकं मम प्रभो ॥१४ ॥ व्यास उवाच ॥ वृषस्थे मिथुनस्थे वा शुक्ला ह्येकादशी भवेत् ॥ ज्येष्ठमासे प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥१५ ॥ स्नाने चाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः ॥ माषमात्रं सुवर्णस्य यत्र मज्जति

वचन सुनकर व्यास जी बोले, अगर तुम्हें स्वर्ग प्यारा है और नरक बुरा लगता है तो दोनों पक्षों की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिये। भीमसेन बोले, हे महाबुद्धि पितामह, मैं तुमसे कहता हूं कि मुझसे एक बार भी भोजन किये बिना नहीं रहा जा सकता, इसलिये व्रत कैसे करूं। मेरे पेट में वृक नाम की अग्नि सदैव स्थित रहती है, जब मैं बहुत अन्न खाता हूं तो मेरे पेट की अग्नि शांत होती है। मैं केवल एक व्रत करने में सम्पूर्ण हूं। जिससे स्वर्ग प्राप्त हो सके। मैं उसे उचित विधि से करूंगा। उस व्रत की विधि मुझ से कहिये। व्यास जी

वै मणिः ॥१६॥ एतदाचमनं प्रोक्तं पवित्रं कायशोधनम्॥ गोकर्णकृतहस्तेन माषमात्रं जलं पिवेत् ॥१७॥ तन्न्यूनमधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत्॥ उपभुञ्जीत नैवान्नं व्रतभंगोऽन्यथा भवेत् ॥१८॥ उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वा तथोदकम्॥ अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशैकादशी-फलम् ॥१९॥ प्रभाते विमले जाते द्वादश्यां स्नानमाचरेत्॥ जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथविधिः ॥२०॥ भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी॥ एवं कृते तु यत्पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ॥२१॥ संवत्सरस्य या मध्ये ह्येकादश्यो भवन्ति वै। तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥२२॥ इति मां केशवः प्राह शंखचक्रगदाधरः॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥२३॥ एकादश्यां निराहारान्नरः पापात्प्रमुच्यते॥ द्रव्यशुद्धिः कलौ नास्ति संस्कारः स्मार्त एव च ॥२४॥ वैदिकश्च कुतश्चास्ते प्राप्ते दुष्टे कलौयुगे। किन्तु ते बहुनोक्तेन वायुपुत्र

कहने लगे, हे भीम, तुमने मुझसे मानव धर्म एवं वेद में कहे हुए धर्म के विषय में सुना, मगर कलियुग में उनका करना कठिन है। पुराणों में जो सब सारभूत है, थोड़े प्रयास से ही कार्य हो सकता है, वह मैं तुमसे कहता हूं। दोनों पक्षों की एकादशी में जो भोजन नहीं खाता वह नरक में नहीं जाता। व्यास जी के वचन सुनकर, भीमसेन भयभीत हो गये। व्यास जी से पुनः उन्होंने कहा कि बहुत फल देने वाले व्रत के विषय में कहिये। व्यास जी ने कहा, हे वृकोदर, वृष राशि या मिथुन राशि के सूर्य में ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में निर्जला

पुनः पुनः ॥२५॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयो रुभयोरपि॥ एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठ-स्योदकवर्जितम् ॥२६॥ उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥२७॥ तत्फलं समवाप्नोति इमां कृत्वा वृकोदर॥ संवत्सरेण याश्च स्युः शुक्लाः कृष्णा वृकोदर॥२८॥ उपोषितास्ताः सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः। धनधान्यबलायुर्दाः पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥२९॥ उपोषिता नर व्याघ्र इति सत्यं वदामि ते॥ यमदूताः महाकायाः करालाः कृष्णपिंगलाः ॥३०॥ दण्डपाशधरा रौद्रा नोपसर्पन्ति तं नरम्॥ पीताम्बरधराः सौम्या-श्चक्रहस्ता मनोजवाः ॥३१॥ अन्तकाले नयन्त्येनं मानवं वैष्णवीं पुरीम्॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोपोष्योदकवर्जिता ॥३२॥ जलधेनु ततो दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ इति श्रुत्वा तदा चक्रुः पाण्डवाः जनमेजय ॥३३॥ तथा त्वमपि भूपाल सोपवासार्चनं हरेः॥ कुरु त्वं च प्रयत्नेन

नाम की एकादशी आती है, वह व्रत निर्जल रहकर ही करना चाहिये, स्नान एवं आचमन में जल वर्जित नहीं है। एक माशा मात्र सोने की डली जिसमें डूब जाये उतना जल पीना चाहिये। अन्न नहीं खाना चाहिये, अन्यथा व्रत टूट जाता है। एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्योदय तक जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। द्वादशी के दिन प्रातःकाल होने पर स्नान करें। वर्ष भर में जितनी भी एकादशियां होती हैं, उन सब में यह एकादशी अधिक पुण्य देने वाली है। स्नान करके ब्राह्मणों के साथ भोजन करें। शंख, चक्र, गदा को धारण करने वाले

सर्वपापप्रशान्तये ॥३४॥ करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्जमुपोषणम् ॥ भोक्ष्ये परेऽह्नि देवेश ह्यनन्त तव वासरात् ॥३५॥ इत्युच्चार्य ततो मन्त्रमुपवासपरो भवेत् ॥ सर्वपापविनाशाय श्रद्धादम-समन्वितः ॥३६॥ मेरुमन्दरमानं तु स्त्रियोऽथ पुरुषस्य वा ॥ सर्वं तद्भस्मतां याति एकादश्याः प्रभावतः ॥३७॥ सकाञ्चनः प्रदातव्यो घटो वस्त्रेण संवृतः ॥ तोयस्य नियमं तस्यां कुरुते वै स पुण्यभाक् ॥३८॥ पलकोटिसुवर्णस्य यामे यामेऽश्नुते फलम् ॥ स्नानं दानं जपं होमं यदस्यां कुरुते नरः ॥३९॥ तत्सर्वं चाक्षयं प्रोक्तमेतत्कृष्णस्य भाषितम् ॥ किंवाऽपरेण धर्मेण निर्जलैकदशी नृप ॥४०॥ उपोषिता च विधिवद्वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ सुवर्णमन्नं वासांसि यदस्यां सम्प्रदीयते ॥४१॥ तस्यैव च कुरुश्रेष्ठ सर्वं चाप्यक्षयं भवेत् ॥ एकादशी दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः ॥४२॥ इह लोके स चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥ ये प्रदास्यन्ति दानानि द्वादशीं समुपोष्य च ॥४३॥ ज्येष्ठमासि सिते पक्षे प्राप्स्यन्ति परमं पदम् ॥ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो

भगवान् ने मुझसे ऐसा कहा है। इस एकादशी के सेवन करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे सुनो। सब तीर्थों के सेवन से, सब दानों के देने से जो फल होता है, वह इस एकादशी के सेवन से होता है। यह एकादशी आयु देने वाली, आरोग्य को देने वाली है। इस का सेवन करने से यम के दूत नज़दीक नहीं आते। पीताम्बर धारण किये हुए, सौम्यस्वरूप वाले, मन के समान वेग वाले विष्णु के दूत इस व्रत को करने वालों को विष्णुपुरी ले

गुरुद्वेष्टा सदाऽनृती ॥४४॥ मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्द्वादशी यैरुपोषिता ॥ विशेषं शृणु कौन्तेय निर्जलैकादशीदिने ॥४५॥ तत्कर्तव्यं नरैः स्त्रीभिः श्रद्धादमसमन्वितैः ॥ जलशायी तु सम्पूज्यो देया धेनुश्च तन्मयी ॥४६॥ प्रत्यक्षं वा नृपश्रेष्ठ घृतधेनुस्तापि वा। दक्षिणाभिश्च श्रेष्ठाभिर्मिष्ठान्नैश्च पृर्थाग्वधैः ॥४७॥ तोषणीयाः प्रयत्नेन द्विजाः धर्मभृतां वर ॥ तुष्टो भवति वै क्षिप्रं तैस्तुष्टैर्मोक्षदो हरिः ॥४८॥ आत्मद्रोहः कृतस्तैस्तु यैर्नैषा समुपोषिता ॥ पापात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते नात्र संशयः ॥४९॥ कुलानां च शतं साग्रमनाचाररतं सदा ॥ आत्मना सह तैर्नीतं वासुदेवस्य मन्दिरम् ॥५०॥ शान्तैर्दानपरैश्चैव अर्चद्भिश्च तथा हरिम् ॥ कुर्वद्भिर्जागरं रात्रौ यैर्नरैः समुपोषिता ॥५१॥ अन्नं पानं तथा गावो वस्त्रं शय्याऽसनं शुभम् ॥ कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥५२॥ उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ॥ स सौवर्णेन यानेन स्वर्गलोकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥५३॥ यश्चेमां शृणुयाद्भक्त्या यश्चापि परिकीर्त्तयेत् ॥ उभौ तौ

जाते हैं। इसलिये हे राजन् इस व्रत को करो। ऐसा सुनकर भीम ने इसका व्रत किया। व्रत करते हुए मनुष्य को मन में यह संकल्प करना चाहिये कि हे देवेश, आज मैं जल वर्जित व्रत करूंगा, हे अन्न, कल मैं (अर्थात् दूसरे दिन) भोजन करूंगा। ऐसा कहकर श्रद्धा के साथ जितेन्द्रिय होकर पापों के नाश के लिये व्रत को करें। स्त्री हो या पुरुष मेरुपर्वत के समान भयंकर पाप भी नष्ट हो जाते हैं। इस दिन सुवर्णसहित घट का दान करें। सुवर्ण,

स्वर्गतौ स्यातां नात्र कार्या विचारणा ॥५४॥ यत्फलं तु सिनीवाल्यां राहुग्रस्ते दिवाकरे॥ कृत्वा श्राद्धं लभेन्मर्त्यस्तदस्य श्रवणादपि ॥५५॥ नियमं च प्रकुर्वीत दन्तधावन पूर्वकम्॥ एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम् ॥५६॥ केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते॥ द्वादश्यां देवदेवेशः पूजनीयस्त्रिविक्रमः ॥५७॥ गन्धपुष्पैस्तथा दीपैर्वारिभिः प्रीणयेद्धरिम्॥ पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥५८॥ देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक॥ उदकुम्भ-प्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥५९॥ ततः कुम्भाः प्रदातव्याः ब्राह्मणेभ्यः स्वशक्तितः सान्ना वस्त्रयुताः भीम छत्रोपानत्फलान्विताः ॥६०॥ दानान्यन्यानि देयानि जलधेनुर्विशेषतः॥ भोजयित्वा ततो विप्रान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥६१॥ एवं यः कुरुते पूर्णां द्वादशीं पाप-नाशिनीम्॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम् ॥६२॥ ततः प्रभृति भीमेन कृत्वा ह्येकादशी शुभा॥ पाण्डवद्वादशी नाम्ना लोके ख्याता बभूव ह ॥६३॥

अन्न, वस्त्र आदि जो कुछ भी इस दिन दिया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। सभी स्त्री-पुरुष इसको करके फल प्राप्त कर सकते हैं। इस दिन भगवान् श्री कृष्ण का गुणगान करना चाहिये।

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की निर्जला एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

१५. आषाढ़ कृष्णपक्ष योगिनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ ज्येष्ठशुक्ल निर्जलाया माहात्म्यं वै श्रुतं मया ॥ आषाढकृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत् ॥१ ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ व्रताना-मुत्तमं राजन्कथयामि तवाग्रतः ॥२ ॥ सर्वपापक्षयकरं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ आषाढस्यासिते पक्षे योगिनी नाम नामतः ॥३ ॥ एकादशी नृपश्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥ संसारार्णवमग्नानां पोतरूपा सनातनी ॥४ ॥ जगत्त्रये सारभूता योगनीति नराधिप ॥ कथयामि कथां तस्याः पौराणीं पापहारिणीम् ॥५ ॥ अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः ॥ यस्यासीत्पुष्पबटुको हेमालीति नामतः ॥६ ॥ तस्य पत्नी सुरूपा च विशालाक्षीति नामतः ॥ स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं

युधिष्ठिर बोले, हे महाराज, आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसका क्या माहात्म्य है। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, तुम्हारे समक्ष सब व्रतों में उत्तम व्रत को कहता हूं। इस पक्ष में होने वाली एकादशी का नाम योगिनी एकादशी है। इसमें नारायण नाम से देवता का पूजन करना चाहिये। यह सब पापों को नाश करने वाली है। संसार सागर में डूबे हुए मनुष्यों को पार करने के लिये नौका का काम करती है। पुराणों में कही गई इस एकादशी की कथा को मैं तुम से कहता हूं। अलकापुरी के स्वामी कुवेर शिव के

गतः ॥७॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः ॥ पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः ॥८॥ कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम् ॥ मध्याह्नसमये राजन् पुष्पाणि प्रसमीक्षते ॥९॥ हेममाली स्वभवने रमते हि तया सह ॥ यक्षराट् प्रत्युवाचाथ कालातिक्रमकोपितः ॥१०॥ कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान् ॥ निश्चयः क्रियतामस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥११॥ यक्षा ऊचुः ॥ वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप॥ तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः ॥१२॥ आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम् ॥ ज्ञात्वा कालात्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः ॥१३॥ आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याग्रतः स्थितः ॥ तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ॥१४॥

भगत थे। उनकी पूजा के लिये मान सरोवर से कमलों के फूलों को लाने वाला हेममाली नाम का यक्ष था। उसकी रूपवती भार्या का नाम विशालाक्षी था। एक दिन मानसरोवर से फूलों को लाकर घर में ठहर गया। पत्नी को देखकर काम के वश में चला गया। पत्नी के प्रेम के कारण वह कुवेर के घर में नहीं गया। कुबेर शिवालय में पूजन कर रहे थे, दोपहर का समय हो गया। प्रतीक्षा करते हुए उसका बहुत समय बीत गया। उधर वह यक्ष हेममाली अपनी पत्नी के साथ क्रीड़ा करता रहा। अति विलम्ब हो जाने के कारण कुवेर क्रोधित होकर बोले, अरे यक्षो, दुष्ट हेममाली आज क्यों नहीं आया? इसका पता लगाओ। यक्षों ने कहा, हे राजन्, वह अपनी स्त्री के साथ प्रीतिपूर्वक अपने घर में विहार कर रहा है। उन यक्षों के वचनों को सुनकर कर कुवेर बहुत ही क्रोधित

प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताधरः ॥ धनद उवाच ॥ रे पाप दुष्ट दुर्वृत्त कृतवान्देवहेलनम् ॥१५॥ अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सदा ॥ अस्मात् स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाधमम् ॥१६॥ इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात्पपात सः ॥ महा दुःखाभिभूतश्च कुष्ठपीडितविग्रहः ॥१७॥ न वा तोयं न भक्ष्यं वने रौद्रे लभत्यसौ ॥ न सुखं दिवसे तस्य न निद्रां लभते निशि ॥१८॥ छायायां पीडिततनुर्निदाघेऽत्यन्तपीडितः ॥ शिवपूजाप्रभावेण स्मृतिस्तस्य न लुप्यते ॥१९॥ पातकेनाभिभूतोऽपि कर्म पूर्वमनुस्मरन् ॥ भ्रममाणस्ततो-

हुए और फूल लाने वाले हेममाली को तुरन्त बुलावा भेजा। समय व्यतीत हुआ जानकर भय से व्याकुल होकर कुवेर के पास आया और नमस्कार किया। उसे देखकर कुवेर की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं। क्रोध से अधर फड़क रहे थे, अरे पापी, दुष्ट तुमने देवता की अवहेलना की है, अतः श्वेत कुष्ठ से युक्त होकर पत्नी से सदैव के लिये वियुक्त हो जा और अधम स्थान में जाकर रह। कुवेर के वचन सुनकर वहां से गिरकर श्वेत कुष्ठ से युक्त हो गया। भूख प्यास से व्याकुल हो गया। न अन्न की प्राप्ति होती, न पानी पीने को मिलता, न दिन में सुख न रात को नींद आती थी। जब वह छाया में जाता तो शरीर दाह से पीड़ित हो जाता। मगर शिव की पूजा के प्रभाव से अपनी स्मृति को नहीं भुला सका। पापों के बोझ से दबा हुआ होने पर भी पहले कर्मों का स्मरण रहा। वह घूमता हुआ हिमालय पर्वत पर चला गया। वहां मुनियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय मुनि के आश्रम में गया।

ऽगच्छद्धिमाद्रि पर्वतोत्तमम् ॥२० ॥ तत्रापश्यन्मुनिवरं मार्कण्डेयं तपोनिधिम् ॥ तस्यायुर्विद्यते राजन्ब्रह्मणो दिनसप्तम् ॥२१ ॥ आश्रमं स गतस्तस्य ऋषेर्ब्रह्मसदः समम् ॥ ववन्दे चरणौ तस्य दूरतः पापकर्मकृत ॥२२ ॥ मार्कण्डेयो मुनिवरो दृष्ट्वा तं कुष्ठिनं तदा ॥ परोप-करणार्थाय समाहूयेदमब्रवीत् ॥२३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कस्मात्कुष्ठाभिभूतस्त्वं कुतो निन्द्यतरोह्यसि ॥ इत्युक्त प्रत्युवाचार्थ मार्कण्डेयेन धीमता ॥२४ ॥ हेममाल्युवाच ॥ यक्षराजस्यानुचरो हेममालीति नामतः ॥ मानसात्पुष्पनिचयमानीय प्रत्यहं मुने ॥२५ ॥ शिवपूजनवेलायां कुबेराय समर्पये ॥ एकस्मिन् दिवसे काललोपश्च विहितो मया ॥२६ ॥ पत्नीसौख्यप्रसक्तेन कामव्याकुलचेतसा ॥ ततः क्रुद्धेन शप्तोऽहं राजराजेव वै मुने ॥२७ ॥

ब्रह्मा के सात दिन के समान आयु वाले उस मार्कण्डेय ऋषि को प्रणाम किया। तब मार्कण्डेय ऋषि ने उस को अपने समीप बुलाकर दया वश उससे पूछा कि किस कारण से तुम इस दशा को प्राप्त हुए हो? बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषि के पूछने पर उस यक्ष ने कहा, हे मुनिराज, मैं यक्षराज कुवेर का सेवक हूं। देव की पूजा के लिये मैं मानसरोवर से फूल लाकर देता हूं। एक दिन काम से पीड़ित होकर पत्नी के साथ रमण करता रहा, समय का मुझ से उल्लंघन हो गया। जिससे क्रोधित होकर कुवेर ने मुझे शाप दे दिया। मैं श्वेत कुष्ठ से युक्त हो गया और अपनी पत्नी का वियोग सहन करना पड़ा। अब मेरा कोई शुभ कार्य जागृत होने से आपके दर्शन

कुष्ठाभिभूतः संजातो वियुक्तः कान्तया सह ॥ अधुना तव सान्निध्यं प्राप्तोऽस्मि शुभ-
कर्मणा ॥२८॥ सतां स्वभावतश्चित्तं परोपकरणक्षमम् ॥ इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ शाधि मां
च कृतैनसम् ॥२९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वया सत्यं हि प्रोक्तं नासत्यं भाषितं यतः ॥ अतो
व्रतोपदेशं ते करिष्यामि शुभप्रदम् ॥३०॥ आषाढकृष्णपक्षे त्वं योगिनीव्रतमाचर ॥ अस्य
व्रतस्य पुण्येन कुष्ठत्त्वं मुच्यसे ध्रुवम् ॥३१॥ इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा दण्डवत्पतितो भुवि
उत्थापितश्च मुनिना बभूवातीव हर्षितः ॥३२॥ मार्कण्डेयोपदेशेन कृतं तेन व्रतोत्तमम् ॥
तद्व्रतस्य प्रभावेण देवरूपो बभूव सः ॥३३॥ संयोगं कान्तया लेभे बुभुजे सौख्यमुत्तमम् ॥
ईदृग्विधं नृपश्रेष्ठ कथितं योगिनीव्रतम् ॥३४॥ अष्टशीतिसहस्त्राणि द्विजान् भोजयते तु

हो गये हैं। सज्जनों का जन्म दूसरों के भले के लिये होता है। हे मुनिराज, मुझे ऐसी शिक्षा दें जिससे मैं शाप मुक्त हो सकूं। मुनिराज ने कहा, हे यक्ष, तुम ने जो कहा, वह सत्य कहा। इसलिये मैं तुम्हें व्रत करने की शिक्षा देता हूं। आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में योगिनी नाम की एकादशी का व्रत करो। इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा। मुनि का यह वचन सुनकर उस यक्ष ने दण्डवत् प्रणाम किया। मुनिराज ने यक्ष को उठाकर आशीर्वाद दिया, जिससे वह यक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। मार्कण्डेय ॠषि के कहे अनुसार उसने व्रत किया, जिसके प्रभाव से उसका शरीर देव रूप हो गया और स्त्री के संयोग को प्राप्त हुआ और उत्तम सुख भोगने लगा। हे

यः। तत्फलं समवाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥३५॥ महापापशमनी महापुण्यफलप्रदा॥ शुचौ कृष्णैकादशी ते कथिता योगिनी नृप॥३६॥

राजन, योगिनी एकादशी का ऐसा सुकर माहात्म्य है। जो व्यक्ति अनेक लोगों को भोजन करवाता है, उसका जो पुण्य है, वह इस एकादशी के व्रत को करने से प्राप्त करता है।

आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की योगिनी एकादशी का माहात्म्य पूर्ण हुआ।

१६. आषाढ़ शुक्लपक्ष देवशयनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ आषाढस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्॥ को देवः को विधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ कथयामि महीपाल कथामाश्चर्यकारिणीम्॥ कथयामास यो ब्रह्मा नारदाय महात्मने॥२॥ नारद उवाच॥ कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधानाय मे॥ आषाढशुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥३॥ ब्रह्मोवाच॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ

युधिष्ठिर बोले–आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी का क्या नाम है? उसका देवता कौन है? और उसकी विधि कैसी है? हे केशव! यह मुझ से कहिये॥१॥ श्रीकृष्ण बोले–हे महाराज! जिसको ब्रह्मा ने नारद से कहा था, उस आश्चर्य जनक कथा को मैं तुमसे कहता हूं॥२॥ नारद बोले–हे महाराज! विष्णु की आराधना के लिये

साधुपृष्टं कलिप्रिय ॥ नातः परतरं लोके पवित्रं हरिवासरात् ।।४ ॥ कर्तव्यं तु प्रयत्नेन सर्व-पापापनुत्तये ॥ तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शुक्लैकादशीव्रतम् ।।५ ॥ एकादश्यां व्रतं पुण्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ न कृतं यैर्नरैर्लोके ते नरा निरयैषिणः ।।६ ॥ पद्मा नामेति विख्याता शुचौ ह्येकादशी सिता ॥ हृषीकेश प्रीतये तु कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।।७ ॥ कथयामि तवाग्रेऽहं कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यस्याः श्रवण मात्रेण महापापं प्रणश्यति ।।८ ॥ मान्धाता नाम राजर्षिर्विवस्वद्वंश-सम्भवः ॥ बभूव चक्रवर्ती स सत्यसन्धः प्रतापवान् ।।९ ॥ धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौर-

मुझ से प्रसन्नता से कहिये कि, आषाढ़ के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है !।३ ॥ ब्रह्मा जी बोले-हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम वैष्णव हो, हे कलिप्रिय ! तुमने उत्तम प्रश्न किया है, लोक में हरिवासर से परे और कोई पवित्र नहीं है ।।४ ॥ सम्पूर्ण पापों को दूर करने के लिए इसे करना कर्त्तव्य है, इसलिये मैं शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत कहता हूं ।।५ ॥ एकादशी का व्रत पवित्र है पाप का नाश करता है और सब कामना देता है। जिस मनुष्य ने इसका व्रत लोक में नहीं किया, वह नरकगामी है ।।६ ॥ आषाढ़ के महीने में शुक्लपक्ष की "पद्मा" नाम की एकादशी विख्यात है। हृषीकेश भगवान् की प्रीति के लिये इसका उत्तम व्रत करना योग्य है ।।७ ॥ मैं तुम्हारे आगे उत्तम पुराण की कथा कहता हूं। इस कथा के सुनने मात्र से महापाप नाश को प्राप्त होते हैं ।।८ ॥ सूर्यवंश में उत्पन्न मान्धाता नामक एक राजर्षि हो गये हैं, सत्यप्रतिज्ञा वाले वे प्रतापशाली चक्रवर्ती थे ।।९ ॥ वह अपने निज

सान्॥ न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा ॥१०॥ निरातङ्काः प्रजास्तस्य धनधान्य-समन्विताः॥ नान्यायोपार्जितं द्रव्यं कोशे तस्य महीपतेः ॥११॥ तस्यैव कुर्वतो राज्यं बहुवर्षगणो गतः॥ अथ कदाचित्संप्राप्ते विपाके पापकर्मणः ॥१२॥ वर्षत्रयं तद्विषये न ववर्ष बलाहकः॥ तेजोद्विग्नाः प्रजास्तत्र बभूवुः क्षुधयाऽर्दिताः ॥१३॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिताः॥ बभूवुर्विषयास्तस्य सस्याभावेन पीडिताः ॥१४॥ अथ प्रजाः समागत्य राजानमिदमब्रुवन्॥ श्रूयतां वचनं राजन् प्रजानां हितकारकम् ॥१५॥ आपो नारा इति प्रोक्ताः पुरणेषु मनीषिभिः॥ अयनं तद् भगवतस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१६॥ पर्यन्तरूपी भगवान् विष्णुः सर्वगतः सदा॥ स

पुत्रों के समान प्रजा का धर्म से पालन करते थे। उनके राज्य में दुर्भिक्ष, मानसिक व्यथा तथा रोग आदि कोई उपद्रव नहीं होते थे ॥१०॥ उनकी प्रजा निरन्तर धन-धान्य से भरी-पूरी होती थी और उन राजा के भण्डार में न्याय से इकट्ठा किया हुआ धन होता था ॥११॥ उनको इस प्रकार राज्य करते हुए बहुत वर्ष व्यतीत हो गये, बाद जर्न्य में किसी पाप कर्म के परिणाम से ॥१२॥ उनके देश में तीन वर्ष तक मेघ नहीं बरसे, इससे क्षुधा से पीड़ित, उनकी प्रजा उद्विग्न हो गई ॥१३॥ अन्न के न उत्पन्न होने से पीड़ित उनका देश स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, वेद के अध्ययन आदि से वर्जित हो गया ॥१४॥ फलस्वरूप प्रजा का समूह आकर राजा से यह कहने लगा-'हे राजन्! प्रजा का हित करने-वाला वचन सुनिये ॥१५॥ पुराण में पण्डितों ने जल का नाम 'नारा' कहा

एव कुरुते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥१७॥ तदभावेन नृपते क्षयं गच्छन्ति वै प्रजाः ॥ तथा कुरु नृपश्रेष्ठ योगक्षेमो यथा भवेत् ॥१८॥ राजोवाच ॥ सत्यमुक्तं भवद्भिश्च न मिथ्याऽभिहितं वचः ॥ अन्नं ब्रह्ममयं प्रोक्तमन्ने सर्वंप्रतिष्ठितम् ॥१९॥ अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते ॥ इत्येवं श्रूयते लोके पुराणे बहुविस्तरे ॥२०॥ नृपाणामुपचारेण प्रजानां पीडनं भवेत् ॥ नाहं पश्याम्यात्म-कृतं दोषं बुद्ध्या विचारयन् ॥२१॥ तथाऽपि प्रयतिष्यामि प्रजानां हितकाम्यया ॥ इति कृत्वा मतिं राजाऽपरिमेयबलान्वितः ॥२२॥ नमस्कृत्य विधातारं जगाम गहनं वनम् ॥

है, वह जल भगवान् का अयन अर्थात् भवन है इससे वे नारायण कहे जाते हैं ॥१६॥ वे मेघ रूप भगवान् विष्णु सदा सर्वव्यापी हैं, वे ही वृष्टि करते हैं इससे अन्न होता है और उस अन्न से प्रजा होती है ॥१७॥ हे राजन्! उस अन्न के अभाव से प्रजा क्षय को प्राप्त होती है। हे नृपश्रेष्ठ! ऐसा करो, जिससे आपके देश में कुशल होवे ॥१८॥ राजा बोले-'तुमने सत्य कहा, कुछ मिथ्या नहीं है, अन्न ब्रह्ममय कहा गया है, अन्न ही में सब स्थित है ॥१९॥ अन्न से जीव होते हैं, जगत् अन्न ही से वर्तमान है', ऐसा लोक में सुना जाता है और बहुत विस्तारपूर्वक पुराणों ने भी कहा है ॥२०॥ राजा के अपराध से प्रजा को पीड़ा होती है, मैंने बुद्धि से विचार कर देखा तो अपने किये दोष नहीं दिखाई दिये ॥२१॥ इस पर भी प्रजा की हित कामना से यत्न करूंगा। वह राजा ऐसी मति करके बहुत-सी सेना सहित ॥२२॥ विधाता को नमस्कार करके घने वन में गया और वहां मुख्य-

चचार मुनिमुख्यानामाश्रमांस्तपसैधिनाम् ॥२३॥ ददर्शाथ ब्रह्मसुतमृषिमाङ्गिरसं नृपः॥ तेजसा द्योतितदिशं द्वितीयमिव पद्मजम् ॥२४॥ तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा ह्यवतीर्य च वाहनात्॥ नमश्चक्रेऽस्य चरणौ कृताञ्जलिपुटो वशी ॥२५॥ मुनिस्तमभिनन्द्याथ स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥ पप्रच्छ कुशलं राज्ये सप्तस्वंगेषु भूपतेः ॥२६॥ निवेदयित्वा कुशलं पप्रच्छानामयं नृपः॥ ततश्च मुनिना राजा पृष्टमागमनकारणः ॥२७॥ अब्रवीन्मुनिशार्दूलं स्वस्यागमनकारणम्॥ राजोवाच॥ भगवन्धर्मविधिना मम पालयतो महीम्॥ अनावृष्टिः संप्रवृत्ता नाहं बेद्मि अत्र कारणम् ॥२८॥ संशयच्छेदनार्थाय ह्यागतोऽहं तवान्तिकम्॥ योगक्षेमविधानेन प्रजानां निवृतिं

मुख्य मुनियों के आश्रम में विचरने लगा ॥२३॥ फिर उस राजा ने ब्रह्मा के पुत्र जो आंगिरस ऋषि हैं, उनको देखा, तेज से प्रकाशमान की है दिशा जिन्होंने ऐसे वे मुनि दूसरे ब्रह्मा के समान स्थित थे ॥२४॥ उनको देख कर प्रसन्न उस राजा ने वाहन से उतरकर, उनके चरणों को नमस्कार कर हाथ जोड़कर स्थित हो गया ॥२५॥ मुनि स्वस्तिवाचन पूर्वक उसको आशीर्वाद देकर राज्य में और राज्य के सातों अंगों में कुशल पूछने लगे ॥२६॥ तब राजा ने अपनी कुशल कहने के बाद मुनि से उनकी कुशल पूछी, फिर मुनि ने राजा से आने का कारण पूछा ॥२७॥ राजा ने उन मुनि श्रेष्ठ से अपने आगमन का कारण कहा। राजा बोले–हे भगवन्! धर्म की विधि से राज्य करने पर भी अनावृष्टि हुई है, मैं इसका कारण नहीं जानता हूं ॥२८॥ इस सन्देह को दूर करने के लिये

एतत् कृतयुगं राजन्युगानामुत्तमं स्मृतम्। अत्र ब्रह्मोत्तरा लोका कुरु ॥२९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ विषये तव राजेन्द्र धर्मश्चात्र चतुष्पदः ॥३० ॥ अस्मिन्युगे तपोयुक्ता ब्रह्मणा नेतरे जनाः ॥ कुरु तस्य वधे यत्नं येन वृषलो यत्तपस्यति ॥३१ ॥ अकार्यकरणात्तस्य न वर्षति बलाहकः ॥ धर्मोपदेशं कथय दोषः प्रशाम्यति ॥३२ ॥ राजोवाच ॥ नाहमेनं वधिष्यामि तपस्यन्तमनागसम् ॥ शुचिमासे उपसर्गविनाशनम् ॥३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यद्येवं तर्हि नृपते कुरुणष्वैकादशीव्रतम् ॥ सर्वसिद्धिप्रदा शुक्लपक्षे पद्मानामेति विश्रुता ॥३४ ॥ तस्याः व्रतप्रभावेण सुवृष्टिर्भविता ध्रुवम् ॥ इति वाक्यं मुनेः ह्येषा सर्वोपद्रवनाशिनी ॥३५ ॥ अस्या व्रतं कुरु नृप सप्रजः सपरिच्छदः ॥

आपके समीप आया हूं, योगक्षेम के विधान से प्रजा को सुखी कीजिये ॥२९ ॥ ऋषि बोले! यह सत्ययुग सब युग में उत्तम है, इसमें लोग वेद पाठ बहुत करते हैं और इसमें धर्म के भी चारों चरण हैं ॥३० ॥ इस युग में ब्राह्मण तप से युक्त हैं, अन्य जाति नहीं। हे राजेन्द्र! तुम्हारे देश में एक शूद्र तपस्या करता है ॥३१ ॥ इसी कारण मेघ नहीं बरसते हैं, इसलिये उसे मारने का यत्न करो, जिससे दोष शान्त हो जाए ॥३२ ॥ राजा बोले–मैं तप करते हुए उस निरपराधी को नहीं मारूंगा। ऐसे धर्म का उपदेश दीजिये जिससे उपद्रव का नाश हो ॥३३ ॥ ऋषि बोले–हे राजन्! ऐसा ही है तो आषाढ़ के शुक्लपक्ष में 'पद्मा' नाम की एकादशी प्रसिद्ध है, उसका व्रत करो ॥३४ ॥ उस व्रत के प्रभाव से निश्चय वर्षा होगी, वह एकादशी सब सिद्धियों को देने वाली और उपद्रवों

श्रुत्वा स्वगृहमागतः ॥३६ ॥ आषाढमासे संप्राप्ते पद्माव्रतमथाकरोत् ॥ प्रजाभिः सह सर्वाभि-श्चातुर्वण्यसमन्वितः ॥३७ ॥ एवं कृते व्रते राजन् प्रववर्ष बलाहकः ॥ जलेन प्लाविता भूमिर-भवत् शस्यशामिली ॥३८ ॥ हृषीकेशप्रसादेन जनाः सौख्यं प्रपेदिरे ॥ एतस्मात्कारणादेव कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥३९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव लोकानां सुखदायकम् ॥ पठनाच्छ्रवणादस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४० ॥ इयमेकादशी राजञ्छयनीत्यभिधीयते ॥ विष्णोः प्रसादसिद्ध्यर्थमस्यां च शयनं व्रतम् ॥४१ ॥ कर्तव्यं राजशार्दूल जनैर्मोक्षेच्छुभिः सदा ॥ चातुर्मास्यव्रतारम्भोऽप्यस्यामेव विधीयते ॥४२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं कृष्ण प्रकर्तव्यं श्रीविष्णोः शयनव्रतम् ॥ तद्ब्रूहि

को नाश करने वाली है ॥३५ ॥ हे राजन्! कुटुम्ब और प्रजा सहित उसका व्रत करो। मुनि के वचन सुनकर राजा अपने घर को वापस आया ॥३६ ॥ फिर आषाढ़ महीने के आने पर सब प्रजा सहित चारों वर्णों द्वारा पद्मा का व्रत किया ॥३७ ॥ हे राजन्! इस प्रकार व्रत करने से मेघ वर्षे, जल से प्लावित पृथिवी हर प्रकार के धान्यों से युक्त हो गई ॥३८ ॥ और हृषीकेश भगवान् के प्रसाद से सब सुख को प्राप्त हो गये। इस कारण से यह उत्तम व्रत करना योग्य है ॥३९ ॥ यह भुक्ति-मुक्ति को देने वाला और लोक को सुखदायक है। इसके व्रत की कथा सुनने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥४० ॥ हे राजन्! यह एकादशी 'शयनी' कही जाती है, विष्णु की प्रसन्नता की सिद्धि के लिये इसमें शयन व्रत कहा गया है ॥४१ ॥ हे राजशार्दूल! मोक्ष की इच्छा करने वाले मनुष्य को

कृपया देव चातुर्मास्यव्रतानि च ।।४३ ।। श्रीकृष्ण उवाच ।। शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयन व्रतम् ।। चातुर्मास्ये च यान्युक्तान्यसंस्तानि व्रतानि च ।।४४ ।। कर्कराशिगते सूर्ये शुचौ शुक्ले तु पक्षके ।। एकादश्यां जगन्नाथं स्वापयेन्मधुसूदनम् ।।४५ ।। तुलाराशिस्थिते तस्मिन्पुनरुत्थापयेद्धरिम् ।।४६ ।। अधिमासेऽपि पतिते एष एव विधिः क्रमात्। नान्यदा स्वापयेद्देवं तथैवोत्थापयेद्धरिम् ।।४७ ।। आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।। चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् ।।४८ ।। एवं च प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर ।। स्नापयेत्प्रतिमां विष्णो

इसका व्रत सदा करना चाहिए और चातुर्मास्य के व्रत का भी आरम्भ इसी एकादशी से होता है ।।४२ ।। युधिष्ठिर बोले–हे राजन्! विष्णु का शयनव्रत कैसे करना चाहिये? हे देव, वह और चातुर्मास्य का व्रत मुझसे कृपा करके कहिये ।।४३ ।। श्रीकृष्ण बोले–हे कौन्तेय सुनो, मैं गोविन्द के शयन का व्रत कहता हूं और चातुर्मास्य में जो व्रत कहा गया है, उसको भी कहूंगा ।।४४ ।। कर्कराशि में सूर्य के जाने पर आषाढ़ के शुक्लपक्ष में एकादशी के दिन जगत् के स्वामी जो मधुसूदन हैं, उनको शयन करावे ।।४५ ।। फिर सूर्य के तुलाराशि में जाने पर हरि को जगावे ।।४६ ।। अधिक मास में क्रमपूर्वक इसी विधि को करे, इसके अतिरिक्त अन्य समय में विष्णु को न शयन करावे और न जगावे ।।४७ ।। आषाढ़ के शुक्लपक्ष में एकादशी का व्रत करके चातुर्मास्य व्रत करने का संकल्प करे ।।४८ ।। हे युधिष्ठिर, इस प्रकार विष्णु की प्रतिमा स्थापित करे, फिर शंख और चक्रधारी, विष्णु को स्नान

शंखचक्रगदाधराम् ॥४९॥ पीताम्बरधरां सौम्यां पर्यङ्क सिते शुभे॥ सितवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर॥५०॥ इतिहासपुराणज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः॥ स्नापयित्वा दधिक्षीरघृत-क्षौद्रसितादिभिः॥५१॥ समालेप्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भूरिशः॥ पूजयेत् कुसुमैः शास्त्रै-र्मन्त्रेणानेन पाण्डव॥५२॥ शायितस्त्वं हृषीकेश पूजयित्वा श्रिया सह॥ प्रसादं कुरु देवेश लक्ष्म्या सह जनार्दन॥५३॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत् सुप्तं चराचरम्॥ विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम्॥५४॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर॥ तस्या एवाग्रतः

करावे॥४९॥ और पीताम्बर पहिना के सुन्दर श्वेत वर्ण की शय्या पर सौम्य मूर्ति भगवान् को तकिया और श्वेत वस्त्र से आच्छादित कर शयन करावे॥५०॥ फिर हे युधिष्ठिर! इतिहास, पुराण और वेद जानने वाले ब्राह्मण को दही, दूध, घृत, शहद, शक्कर अर्थात् पञ्चामृत से स्नान करावे॥५१॥ उत्तम गन्ध लेपन करके धूप, दीप और पुष्पों से पूजा करे और हे पाण्डव! इस मन्त्र को पढ़े॥५२॥ हे हृषीकेश! मैंने लक्ष्मी सहित तुम्हारा पूजन करके तुमको शयन कराया है। हे देवेश! हे जनार्दन! लक्ष्मी सहित कल्याण करो॥५३॥ हे जगन्नाथ! आपके शयन करने पर संसार के चर और अचर सब सोते हैं और तुम्हारे उठने से उठते हैं॥५४॥ हे युधिष्ठिर! इस प्रकार विष्णु की प्रतिमा को स्थापन कर और उनके सम्मुख होकर मनुष्य व्रत का नियम करे॥५५॥ जो चातुर्मास में हरिप्रबोधिनी एकादशी पर्यन्त होता है। प्रातः और सन्ध्या काल का नियम समाप्त करके॥५६॥ विष्णु भगवान्

स्थित्वा गृह्णीयान्नियमान्नरः ॥५५॥ चतुरोवार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधिः ॥ प्रातःसन्ध्यादिकं सर्वं नित्यकर्म समाप्य च ॥५६॥ ग्रहीष्ये नियमाञ्छुद्धान्निर्विघ्नात् कुरु मे प्रभो ॥ इति सम्प्रार्थ्य देवेशं प्राह्वः संशुद्धमानसः ॥५७॥ स्त्री नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं च धृतव्रतः ॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकम् ॥५८॥ व्रतप्रारम्भकालस्तु प्रोक्तुः पञ्चैव विष्णुना ॥ उपक्रमं चतुर्मासव्रतानां च नरः शुचौ ॥५९॥ एकादशी द्वादशी च पूर्णिमा च तथाष्टमी ॥ कर्कटाख्या च संक्रान्तिस्तासु कुर्याद्यथाविधिः ॥६०॥ चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥६१॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि कर्तृणां ते पृथक् पृथक् ॥ आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यामुपोषितः ॥६२॥ चातुर्मास्यव्रतं

की ऐसी प्रार्थना कर शुद्ध नियमों को करे। हे प्रभो! मेरे कर्मों कौ निर्विघ्नता पूर्वक शुद्ध चित्त से पूर्ण करिये। मेरा भक्त स्त्री हो अथवा पुरुष धर्म के निमित्त वह व्रत धारण करते हैं और दन्तधावन करके इन नियमों को ग्रहण करते हैं ॥५७-५८॥ विष्णु के व्रत ग्रहण करने के पांच प्रकार हैं चातुर्मास के व्रत का उपक्रम मनुष्य को आषाढ़ मास से करना चाहिये ॥५९॥ एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा, अष्टमी और कर्क की संक्रान्ति में यथाविधि व्रत को आरम्भ करे ॥६०॥ मनुष्य चातुर्मास्य व्रत को चार प्रकार से ग्रहण करके कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वादशी को समाप्त करे ॥६१॥ व्रत करने वालों को इसका जो पृथक्-पृथक् फल मिलता है उसको मैं कहता हूं।

कुर्याद्यत्किञ्चिदवनीपते ॥ नान्यथा चाब्दिकं पापं विनिहन्ति प्रयत्नतः ॥६३ ॥ न शैशवं च मोद्यं च शुक्रगुर्वोर्न वार्धकम् ॥ खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः ॥६४ ॥ खण्डांगव्यापिमार्त्तण्डोयद्यखण्डा भवेत्तिथिः ॥ अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ॥६५ ॥ व्रतमेकं नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥६६ ॥ मलरूपशौचं च वर्जयन्मतिमान्नरः ॥ प्रतिवर्षं तु यः कुर्याद् व्रतं वै संस्मरन् हरिम् ॥६७ ॥ देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कतेजसा ॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदा-भूतसम्प्लवम् ॥६८ ॥ देवतायतने नित्यं मार्जनं जलसेचनम् ॥ प्रलेपनं गोमयेन रंगवल्ल्यादिकं

आषाढ़ के शुक्लपक्ष में एकादशी का व्रत करे ॥६२ ॥ और हे राजन्! चातुर्मास्य का व्रत करे, नहीं तो किसी प्रयत्न से वर्ष भर का पाप नष्ट नहीं हो सकता ॥६३ ॥ गुरु अर्थात् बृहस्पति, शुक्र का उदय अस्त इस व्रत में बाधक नहीं होता, चातुर्मास्य के व्रत में मनुष्य को पहिले खण्डत्व का विचार कर लेना चाहिये ॥६४ ॥ पवित्र हो अथवा अपवित्र, स्त्री हो अथवा पुरुष यदि खण्डव्यापी सूर्य हो अथवा तिथि अखण्ड हो तो आरम्भ करे ॥६५ ॥ इस व्रत के करने से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है और बिना संक्रान्ति का मास देवता तथा पितृ कर्म में वर्जित हैं ॥६६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को मन रूपी अशौच का भी त्याग देना चाहिये, जो मनुष्य प्रति वर्ष हरि भगवान् का स्मरण करते हुए इस व्रत को करते हैं ॥६७ ॥ वे देह के अन्त में सूर्य के तेज के समान

तथा ॥६९॥ यः करोति नरश्रेष्ठ चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥ समाप्तौ च यथाशक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥७०॥ सप्तजन्मसु विप्रेन्द्र सत्यधर्मपरो भवेत् ॥ दध्ना क्षीरेण चाज्येन क्षौद्रेण सितया तथा ॥७१॥ स्नापयेद्विधिना देवं चामुर्मास्ये जनाधिप ॥ स याति विष्णुसारूप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ॥७२॥ नृपेण भूमिर्दातव्यं यथाशक्त्या च काञ्चनम् ॥ विप्राय देवमुद्दिश्य सफलं च सदक्षिणम् ॥७३॥ अक्षयांल्लभते भोगान् स्वर्ग इन्द्र इवापरः ॥ लोकं च समवाप्नोति विष्णोरत्र न संशयः ॥७४॥ देवाय हैमपद्मं तु दद्यान्नैवेद्यसंयुतम् ॥ गन्धपुष्पाक्षताद्यैर्यो देवब्राह्मणयोरपि ॥७५॥ पूजां यः कुरुते नित्यं चातुर्मास्ये व्रती नरः ॥ अक्षयं सुखमाप्नोति

दीप्तिमान विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक में महाप्रलय पर्यन्त आनन्द करते हैं ॥६८॥ नित्यप्रति देवता के मन्दिर में सफाई तथा जल से सिञ्चन करते हैं तथा गोबर आदि से लीपते हैं, रंग से लता आदि बनाते हैं ॥६९॥ श्रेष्ठ मनुष्य चातुर्मास्य का व्रत करके उसकी समाप्ति में यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराते हैं ॥७०॥ हे विप्रेन्द्र! वे सात जन्म पर्यन्त सत्य और धर्म में परायण रहते हैं। दही, दूध, घृत, शहद तथा शर्करा से ॥७१॥ चातुर्मास्य में विधिपूर्वक देवता को जो स्नान कराते हैं। हे राजन्! वे विष्णु रूप होकर अक्षय सुख का भोग करते हैं ॥७२॥ देवता के उद्देश्य से ब्राह्मण को जो यथाशक्ति सुवर्ण, नारियल तथा भूमिदान करते हैं ॥७३॥ वे स्वर्ग में इन्द्र के समान अक्षय सुख का भोग करते हैं और निःसन्देह विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं ॥७४॥ जो विष्णु के निमित्त

पुरन्दरपुरं व्रजेत् ॥७६ ॥ यस्तु वै चतुरो मासांस्तुलस्या हरिमर्चयेत् ॥ तुलसीं काञ्चनीं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७७ ॥ काञ्चनेन विमानेन वैष्णवीं लभते गतिम् ॥ देवाय गुग्गुलं यो वै दीपं चार्पयते नरः ॥७८ ॥ स भोगी जायते श्रीमांस्तथा सौभाग्यवानपि ॥ समाप्तौ धूपिकां दद्याद् दीपिकां च विशेषतः ॥७९ ॥ प्रदक्षिणां तु यः कुर्यान्नमस्कारं विशेषतः ॥ अश्वत्थस्याथवा विष्णोः कार्तिक्यावधि स ध्रुवम् ॥८० ॥ पादं पादान्तरे न्यस्य करौ कृत्वा तु संयतौ ॥ स्तुतिं वाचि हृदि ज्ञानं चतुरंगा प्रदक्षिणा ॥८१ ॥ सन्ध्या दीपप्रदो यस्तु प्रांगणे द्विजदेवयोः ॥ समाप्तौ

गन्ध, पुष्प, अक्षत और नैवेद्य सहित सुवर्ण कमल ब्राह्मण को दान करते हैं ॥७५ ॥ और चातुर्मास्य में जो व्रती मनुष्य नित्य पूजा करते हैं, वे इन्द्रलोक में जाकर अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥७६ ॥ जो चारों मासों में तुलसी से विष्णु की पूजा करते हैं और सुवर्ण की तुलसी ब्राह्मण को दान करते हैं ॥७७ ॥ वह सुवर्ण के विमान पर आरूढ़ होकर वैष्णवी गति को प्राप्त होते हैं। जो विष्णु के निमित्त गुग्गुल और दीप अर्पण करता है ॥७८ ॥ वह भोग करने वाला, धनाढ्य और सौभाग्यवान् होता है और समाप्ति में धूपदान, विशेषकर दीपदान करना चाहिये ॥७९ ॥ कार्तिक की शुक्ल पक्ष एकादशी को जो पीपल अथवा विष्णु की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करता है वह निश्चल पद पाता है ॥८० ॥ अपने पैर को पैर के नीचे रखे अर्थात् घुटनों के बल से बैठे और दोनों हाथों को जोड़ कर स्तुति करे और अपने हृदय में ज्ञान रखे यह चतुरंग प्रदक्षिणा कही जाती है ॥८१ ॥ जो देवता

दीपिकां दद्याद्वस्त्रं तैलं सकाञ्चनम् ॥८२॥ वायुमालभते यस्तु तेजस्वी स भवेदिह ॥ वैमानिको भवेद्देवो गन्धर्वाप्सरसेवित: ॥८३॥ विष्णुपादोदकं यस्तु पिबेत्कृच्छ्रात्स मुच्यते ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति न चास्मिञ्जायते नरः ॥८४॥ शतमष्टोत्तरं यस्तु गायत्री-जपमाचरेत् ॥ त्रिकालं वैष्णवे हर्म्ये न स पापेन लिप्यते ॥८५॥ अक्षसूत्रं पुस्तकं च धत्ते पद्मं कमण्डलुम् ॥ चतुर्वक्त्रा तु गायत्री श्रोत्रियाणां गृहे स्थिता ॥८६॥ सर्वलोकमयी देवी गायत्री या त्रयीमयी ॥ नित्या शास्त्रसमाख्याता लोकान् या तु प्रबोधयेत् ॥८७॥ व्यासस्तुष्यति तस्याशु विष्णुलोकं

के आंगन में सन्ध्या समय दीपदान करते हैं और व्रत समाप्त होने पर सुवर्ण के सहित दीपक, वस्त्र और तेल का दान करते हैं ॥८२॥ और विष्णु को वायु करते, वे तेजस्वी विमान पर आरूढ़ होकर अप्सरा और गन्धर्वों से सेवित देवता होते हैं ॥८३॥ जो मनुष्य विष्णु का चरणामृत पान करता है वह सब कष्टों से छूट जाता है और विष्णुलोक को प्राप्त होता है और पुनः संसार में जन्म नहीं लेता ॥८४॥ और जो विष्णु के मन्दिर में तीनों काल एक सौ आठ गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह पापों से लिप्त नहीं होता है ॥८५॥ जपमाला, पुस्तक, कमल और कमण्डल धारण किये हुए चार मुख वाली गायत्री श्रोत्रिय अर्थात् सुनने वाले के गृह में निवास करती हैं ॥८६॥ शास्त्र में कही हुई सर्वलोकमयी और त्रयीमयी नित्या जो गायत्री देवी है सो लोगों को प्रबोध करती हैं ॥८७॥ जो गायत्री का ध्यान और जप करते हैं उन मनुष्यों से व्यास भगवान् सन्तुष्ट होते हैं और वे

स गच्छति॥ अत्र चोद्यापनं शास्त्रपुस्तकं दानमेव च॥८८॥ सर्वविद्यासमं शान्तिकरणं ललिताक्षरम्॥ पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती॥८९॥ पुराणं शृणुयान्नित्यं धर्मशास्त्रमथापि वा॥ पुण्यवान् धनवान् भोगी सत्यशौचपरायणः॥९०॥ ज्ञानवांल्लोक-विख्यातो बहुशिष्यः सुधार्मिकः॥ काञ्चनेन युतं वस्त्रं पुस्तकं च निवेदयेत्॥९१॥ नाममन्त्र-व्रतपरः शम्भोर्वा केशवस्य च॥ समाप्तौ प्रतिमां दद्यात्तस्य देवस्य काञ्चनीम्॥९२॥ पञ्चवक्त्रो वृषारुढ़ः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः॥ कपालशूलखट्वांगी चन्द्रमौलिः सदाशिवः॥९३॥ त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात्॥ तथाऽसुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेषुणा लोक-

विष्णुलोक को जाते हैं और इसके उद्यापन में शास्त्र की पुस्तक दान दी जाती है॥८८॥ सब विद्याओं के तुल्य शान्ति करने वाली सुन्दर अक्षरों की पुस्तक मैं दान करता हूं, हे भारती! मेरे ऊपर प्रसन्न होवें॥८९॥ जो प्रतिदिन पुराण अथवा धर्मशास्त्र को सुनता है, वह पुण्यवान्, धनवान्, भोगी तथा सत्य और शौच में परायण होता है॥९०॥ जो ज्ञानी धर्मात्मा और संसार में प्रसिद्ध तथा जिसके बहुत से शिष्य हों, उसको सुवर्ण के सहित वस्त्र और पुस्तक दान करे॥९१॥ विष्णु अथवा शिवनाम के मन्त्र से व्रत में तत्पर रहे और व्रत की समाप्ति में उसी देवता की सुवर्ण की मूर्ति दान करें॥९२॥ पांच मुखवाले, वृषभ पर आरूढ़ और प्रत्येक मुख में तीन नेत्र, मस्तक में चन्द्रमा, कपाल, शूल और खट्वाङ्ग धारण किये हुए सदाशिव की मूर्ति का दान करें॥९३॥ हे ईश!

हितार्थमीश ।।९४।। त्वद्रूपदाता बहुपुण्यवांश्च दोषैर्विमुक्तश्च गुणालयोऽहम्।। तथा कुरु त्वां शरणं प्रपद्यं मम प्रभो देववर प्रसीद ।।९५।। कृतनित्यक्रियो भूत्वा सूर्यायार्घं निवेदयेत्।। सूर्यमण्डलमध्यस्थं देवं ध्यात्वा जनार्दनम्।।९६।। समाप्तौ काञ्चनं दद्याद्रक्तवस्त्रं च गां तथा। आरोग्यं पूर्णमायुश्च कीर्तिर्लक्ष्मीर्बलं भवेत्।।९७।। तिलहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये दिने दिने।। भक्त्याव्यहृतिभिर्मन्त्रैर्गायत्र्या वा व्रतान्वितः ।।९८।। अष्टोत्तरशतं चाथ अष्टाविंश-तिरेव वा।। तिलपात्रं समाप्तौ तु दद्याद्विप्राय धीमते ।।९९।। वाङ्मनः कायजनितैः पापैर्मुच्येत

जैसे देवताओं के लिये अमृत छोड़कर आपने हलाहल का संहार किया, उसी प्रकार लोक की भलाई के लिये त्रिपुर नामक असुर को एक ही बाण से भस्म किया।।९४।। हे प्रभो! तुम्हारी प्रतिमा दान करने वाली मैं पापों से मुक्त हो कर बहुत पुण्यवान् और गुणों से युक्त होकर हे देववर! प्रसन्न होकर ऐसा करिये कि मैं आपकी शरण में जाऊं।।९५।। नित्यक्रिया के पश्चात् बैठकर सूर्य मण्डल में जनार्दन भगवान् का ध्यान करे और फिर सूर्य को अर्घ्य देवे।।९६।। और समाप्ति में रक्त वस्त्र, सुवर्ण और गोदान करने से आरोग्यता, पूर्ण आयु, कीर्ति, लक्ष्मी और बल की प्राप्ति होती है।।९७।। जो व्रत करके भक्तिपूर्वक व्याहृति मन्त्र अथवा गायत्री मन्त्रों से चातुर्मास्य में प्रतिदिन तिल का होम करे।।९८।। और अष्टोत्तरशत अर्थात् एक सौ आठ अथवा अट्ठाइस तिलपात्र बुद्धिमान् ब्राह्मणों को दान देवे।।९९।। तो शरीर और वाणी से किये हुए संचित पापों से छूट जाए और

सञ्चितैः ॥ न रोगैरभिभूयेत लभेत् सन्ततिमुत्तमाम् ॥१०० ॥ देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थ फलप्रद ॥ तिलपात्रं प्रदास्यामि तेन पापं व्यपोहतु ॥१०१ ॥ अन्नहोमं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यम-तन्द्रितः ॥ समाप्तौ घृतकुम्भं तु वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् ॥१०२ ॥ आरोग्यां कान्तिमतुलां पुत्र-सौभाग्यसम्पदः । शत्रुक्षयं च लभते ब्रह्मणः प्रतिमो भवेत् ॥१०३ ॥ अश्वत्थसेवां यः कुर्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ विष्णुभक्तो भवेत् पश्चादन्ते वस्त्रं प्रदापयेत् ॥१०४ ॥ सकाञ्चनं ब्राह्मणाय नैव रोगान् स विन्दते ॥ तुलसी धारयेद्यस्तु विष्णुप्रीतिकरीं शुभाम् ॥१०५ ॥ विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्विष्णुमुद्दिश्य पाण्डव ॥१०६ ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे

उसको रोग न हो तथा वह उत्तम सन्तति को पावें ॥१०० ॥ हे देवताओं के देव! हें वांछित फल को देने वाले जगत्पते! मैं तिलपात्र दान करता हूं इससे मेरा पाप नष्ट हो ॥१०१ ॥ जो आलस्य त्याग कर चातुर्मास्य में अन्न का होम करता है और समाप्ति में घृत का घट और सुवर्ण समेत वस्त्र का दान देता है ॥१०२ ॥ उसको आरोग्यता, अतुल, कान्ति, पुत्र, सौभाग्य और धन मिलता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मा के तुल्य हो जाता है ॥१०३ ॥ जो पीपल की सेवा करने के पश्चात् वस्त्र का दान करता है वह सब पापों से छूटकर अन्त में विष्णु का भक्त हो जाता है ॥१०४ ॥ जो ब्राह्मण को सुवर्ण दान करता है, जो विष्णु से प्रीति करने वाली शुभ तुलसी को धारण करता है ॥१०५ ॥ वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है। हे पाण्डव! पश्चात्

दूर्वाममृतसम्भवाम्॥ सदा प्रातर्वहन्मूर्ध्नि शुद्धात्मा च ऋतुद्वये ॥१०७॥ मन्त्रेणानेन राजेन्द्र लक्ष्मीनाथस्य तुष्टये॥ त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिताऽसि सुरासुरैः ॥१०८॥ सौभाग्यं सन्ततिं दत्त्वा सद्यः कार्यकरी भव॥ व्रतान्ते च कुरुश्रेष्ठ दूर्वां स्वर्णविनिर्मिताम्॥१०९॥ साग्रां सर्वदलोपेतां सवस्त्रां द्विजपुंगवे॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥११०॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले॥ तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम्॥१११॥ एवं व्रतं यः कुरुते चातुर्मास्यमतन्द्रितः॥ न च दुःखभयं तस्य न च रोगभयं भवेत्॥११२॥

विष्णु के लिये ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१०६॥ और शुद्ध आत्मा मनुष्य विष्णु के शयन करने के उपरान्त दोनों ऋतुओं में अमृत से उत्पन्न दूर्वा को सर्वदा प्रातःकाल में अपने मस्तक पर धारण करे ॥१०७॥ हे राजेन्द्र! इस मन्त्र से लक्ष्मीनाथ अर्थात् विष्णु को सन्तुष्ट करे कि हे दूर्वे! अमृत से तेरा जन्म हुआ है और तू देवता तथा दैत्यों से वन्दित है ॥१०८॥ सौभाग्य और सन्तति देकर शीघ्र कार्य करने वाली हो। हे कुरुश्रेष्ठ! व्रत के अन्त में सुवर्ण की बनी हुई दूर्वा ॥१०९॥ हे सुव्रत! अग्रभाग और सब पत्तों के समेत वस्त्र युक्त और दक्षिणा से युक्त इस मन्त्र से श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान देवे ॥११०॥ जैसे शाखा प्रशाखाओं से पृथ्वी पर फैली हो, उसी प्रकार मुझे भी अजर और अमर सन्तान दें ॥१११॥ इस प्रकार आलस्य रहित होकर जो चातुर्मास्य का व्रत करता है, उसको दुःख तथा रोग का भय नहीं होता है ॥११२॥

नाशुभं प्राप्नुयाज्जातु पापेभ्यः प्रविमुच्यते॥ भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् स्वर्गलोके महीयते ॥११३॥ गीतं तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य वा॥ करोति नित्यमाप्नोति नरो जागरणे फलम् ॥११४॥ व्रतान्ते च व्रती दद्यात् घण्टां देवाय सुस्वराम्॥ गुरोऽवज्ञया यच्चानध्यायेऽध्ययनं कृतम् ॥११५॥ सरस्वति जगन्नाथे जगज्जाड्यापहारिणि। साक्षाद् ब्रह्मकलत्रं च विष्णु-रुद्रादिभिः स्तुते ॥११६॥ तन्ममाध्ययनोत्पन्नं जाड्यं हर बरानने॥ घण्टानादेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनी ॥११७॥ विप्रपादविनिर्मुक्तं तोयं यः प्रत्यहं पिबेत्॥ चातुर्मास्ये नरो भक्त्या मद्रूपं ब्राह्मणं स्मरन् ॥११८॥ मनोवाक्कायजनितैर्मुक्तौ भवति किल्बिषैः॥ व्याधि-

वह कभी अशुभ को प्राप्त नहीं होता और पापों से मुक्त होकर तथा सब भोगों को भोग कर स्वर्ग लोक में आनन्द करता है ॥११३॥ जो मनुष्य प्रतिदिन देवताओं के देव केशव भगवान् अथवा शिव जी के गीत-गान करता है, वह जागरण के फल को प्राप्त होता है ॥११४॥ व्रत के अन्त में अच्छा बजने वाला घण्टा देवता के निमित्त दान देना चाहिये। गुरु की आज्ञा और अनध्याय में अध्ययन करने से मैंने जो पाप किया ॥११५॥ हे सरस्वति! हे संसार की स्वामिनि! हे संसार के जड़ता को विनाश करने वाली! हे साक्षात् ब्राह्मणी! हे विष्णु और रुद्र देवताओं से वन्दित ॥११६॥ हे सुन्दर मुखवाली! मेरे उस अध्ययन से उत्पन्न हुई जड़ता को हरण करो। हे लोक को पवित्र करने वाली ब्राह्मणी! तुम इस घण्टा के नाद से प्रसन्न हो ॥११७॥ जो चातुर्मास्य में

भिर्नाभिभूयेत शरीरायुस्तस्य वर्द्धते ॥११९॥ समाप्तौ गोयुगं दद्याद् गामेकां वा पयस्विनीम्॥
तत्राप्यशक्तो राजेन्द्र दद्याद्वासोयुगं व्रती ॥१२०॥ ब्राह्मणं वन्दते यस्तु सर्वदेव मयं स्मृतम्॥
कृतकृत्यो भवेत्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१२१॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभक्तिपरो नरः॥
समाप्तौ भोजयेद्विप्रानायुर्वित्तं च विन्दति ॥१२२॥ सन्ध्यां प्रातर्नरः कृत्वा समाप्तौ घृतकुम्भदः॥
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥१२३॥ सारस्वतं याति तत्त्वं विद्यावांस्तु

ब्राह्मणों के चरणोदक को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पान करता है और ब्राह्मणों को मेरा ही स्वरूप जानता है ॥११८॥ त्रह मानसिक तथा शारीरिक तथा वाक्यजनित पाप़ों से छूट जाता है और उसको कोई व्याधि नहीं होती है तथा उसके लक्ष्मी और आयु की वृद्धि होती है ॥११९॥ व्रत की समाप्ति में जो दो गोदान देता है अथवा दूध देने वाली एक ही गौ का दान करता है, हे राजेन्द्र! यह भी सामर्थ्य न हो तो व्रत करने वाले मनुष्य को एक जोड़ा वस्त्र दान देना चाहिए।॥१२०॥ जो समस्त वेद को जानने वाले ब्राह्मण को वन्दना करता है, वह शीघ्र पापों से मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाता है ॥१२१॥ पितरों की भक्ति करने वाला अक्षय सुख को प्राप्त होता है और समाप्ति में ब्राह्मणों को भोजन कराने से आयु तथा धन को प्राप्त करता है ॥१२२॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सन्ध्या करके समाप्ति में घृत का घट, जोड़ा-वस्त्र, तिल और घण्टा ब्राह्मण को दान देता है ॥१२३॥ वह सरस्वती के तत्त्व को प्राप्त करके विद्वान् हो जाता है। जो कपिला गौ दान करता है वह सदा धनाढ्य होता

भवेदिति ॥ संस्पृशेत् कपिलां यौ वै नित्यं स च भवेद्धनी ॥१२४॥ तामेवालंकृतां दद्यात् सर्वां भूमिमथापि वा ॥ सार्वभौमो भवेद्राजा दीर्घायुश्च प्रतापवान् ॥१२५॥ दानशीलः सदारम्भः सर्वसङ्कटवर्जितः ॥ रूपवान् भाग्यसम्पन्नो लभते सुखमक्षयम् ॥१२६॥ स वसेदिन्द्रवत् स्वर्गे वत्सराम् रोमसम्मितान् ॥ नमस्करोति यः सूर्यं गणेशं वापि नित्यशः ॥१२७॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते कान्तिमुत्तमाम् ॥ विघ्नराजप्रसादेन प्राप्नुया दीप्सितं फलम् ॥१२८॥ सर्वत्र विजयं चैव नात्र कार्या विचारणा ॥ रविः कार्यः सुवर्णस्य सिन्दूरारुणसन्निभः ॥१२९॥ निवेदयेद् ब्राह्मणाय सर्वकामार्थसिद्धये ॥ उरसा शिरसा दृष्ट्वा मनसा वचसा तथा ॥१३०॥ पद्भ्यां कराभ्यां

है ॥१२४॥ कपिला को सब प्रकार से अलंकृत करके जो दान करते हैं अथवा भूमि का दान करते हैं, वे दीर्घायु और सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा होते हैं ॥१२५॥ सर्वदा दान देने वाला मनुष्य सब संकटों से छूटकर स्वरूपवान् तथा भाग्यवान् होकर अक्षय सुख को प्राप्त करता है ॥१२६॥ और शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष पर्यन्त इन्द्र के समान स्वर्ग में वास करता है। जो सूर्य अथवा गणेश को प्रतिदिन नमस्कार करता है ॥१२७॥ वह विघ्न को नाश करने वाले गणेश जी की कृपा से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, उत्तम कान्ति और इच्छित फल को प्राप्त होता है ॥१२८॥ और वह सर्वत्र निःसन्देह विजयी होता है। सिन्दूर के समान अरुण सुवर्ण का सूर्य बनवावे ॥१२९॥ और सब कामों की सिद्धि के निमित्त उस प्रतिमा को ब्राह्मण को दान करे। हृदय से, मस्तक से, दृष्टि से, मन

जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते॥ अष्टांगसहितं भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥१३१॥ स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि॥ यस्तु रौप्यं शिवप्रीत्यै दद्याद्भक्त्या ऋतुद्वयम् ॥१३२॥ ताम्रं वा प्रत्यहं दद्यात् स्वशक्त्या शिवतुष्टये॥ सुरूपांल्लभते पुत्रान् रुद्रभक्तिपराय-णान् ॥१३३॥ समाप्तौ मधुपूर्णं तु पात्रं राजतमुत्तमम्॥ प्रदद्यात्ताम्रदाने तु ताम्रपात्रं गुडान्वि-तम् ॥१३४॥ ताम्रपुष्टिकरं सर्वं देवप्रियकरं शुभम्॥ सर्वरक्षाकरं नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥१३५॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे स्वर्णदानं स्वशक्तितः॥ वस्त्रयुग्मं तिलैः सार्द्धं दत्त्वा दोषैः

से, वचन से ॥१२०॥ पैर से, हाथ से और घुटने से अष्टांग प्रणाम से भूमि में नमस्कार करके जो पूजन करता है ॥१३१॥ वह जिस गति को प्राप्त होता है। वह गति एक सौ यज्ञ करने पर भी नहीं मिलती है, जो दोनों ऋतुओं में शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त चांदी का दान देता है ॥१३२॥ अथवा अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन शिव जी को सन्तुष्ट करने के लिये तांबा दान करता है, उसको शिव जी की भक्ति में परायण रूपवान् पुत्र मिलते हैं ॥१३३॥ समाप्ति में शहद से भरकर चांदी का पात्र दान करना उत्तम है और तांबे के पात्र को गुड़ से भरकर दान करे ॥१३४॥ हे ताम्र! तू पुष्ट करने वाला देवताओं को प्रिय, शुभ और नित्य सब की रक्षा करने वाला है, इस कारण मुझ को शान्ति दे ॥१३५॥ विष्णु भगवान् के शयन करने पर जो अपनी शक्ति के अनुसार तिल के सहित सुवर्ण और जोड़ा वस्त्र दान देता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥१३६॥ और इस लोक

प्रमुच्यते ॥१३६॥ इह भुक्त्वा महाभोगानन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं नित्यदानं च धान्यकम् ॥१३७॥ नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतत्सदक्षिणम्॥ वस्त्रदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्ये द्विजातये ॥१३८॥ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः स विष्णुः प्रीयतामिति॥ शय्यां दद्यात् समाप्तौ तु वासःकञ्चनपट्टिकाम्॥१३९॥ अक्षयं सुखमाप्नोति धनं च धनदोपमम्॥ यो गोपीचन्दनं दद्यान्नित्यं वर्षासु मानवः ॥१४०॥ श्रीपतिस्तस्य सन्तुष्टो मुक्तिं भुक्तिं ददाति च। यद्वै देवांगसंलग्नं कुंकुमादि विलेपनम्॥ जलक्रीडा सुगोपीनां द्वारवत्या मृदान्वितम्॥ गोपी चन्दन-मित्युक्तं मुनीन्द्रैःकिल्बषपापहम् ॥१४१॥ तस्माद्देयंप्रयत्नेन विष्णुर्दिशति वाञ्छितम्॥

में महाभोग भोगकर अन्त समय में शिवलोक जाता है। जो नित्य सोना, चांदी, तांबा और अन्न दान करे ॥१३७॥ प्रतिदिन श्राद्ध और देवताओं की पूजा करके इन सब कार्यों में दक्षिणा देवे और चातुर्मास्य में जो ब्राह्मणों को वस्त्र दान करके ॥१३८॥ गन्ध और पुष्प आदि से पूजन करता है–वह विष्णु को प्रिय होता है। समाप्ति में वस्त्र और सुवर्ण की पट्टिका युक्त शय्या का दान करने से ॥१३९॥ कुबेर के समान धनाढ्य होकर अक्षय सुख को प्राप्त होता है, वर्षा ऋतु में जो मनुष्य प्रतिदिन गोपीचन्दन का दान करता है ॥१४०॥ उस पर श्रीपति सन्तुष्ट होकर उसको मुक्ति देते हैं। देवता के अंग में लगा हुआ जो कुंकुम आदि विलेपन है और जल की क्रीड़ा में गोपियों के अंग से गिरा हुआ चन्दन आदि द्वारवती की मृत्तिका की तरह, पाप को नाश करने वाला होता है।

समाप्तावपि तद्दद्यात्तुलापरिमितं शुभम् ॥१४२॥ अर्धं वा तदर्धं वा सवस्त्रं वा सदक्षिणम्।
यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु व्रतान्वितः ॥१४३॥ दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं शर्करामपि वा गुडम्।
अमृतस्य कला प्रोक्ता इक्षु सारजशर्करा ॥१४४॥ तस्या दानेन सन्तुष्टो भानुर्दिशति वाञ्छितम् ॥
एवं व्रते तु सम्पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥१४५॥ कारयेत्ताम्रपात्राणि प्रत्येकं पलाष्टकम् ॥
वित्तशाठ्यमकुर्वाणो यदा पलचतुष्टयम् ॥१४६॥ अष्टौ चत्वार्यथैकैकं प्रत्येकं च सशर्करम् ॥
दक्षिणाफलवस्त्रेण प्रत्येकं वेष्टितानि च ॥१४७॥ सप्तधान्यानि विप्रेभ्यः श्रद्धया प्रतिपादयेत् ॥

वही मुनीश्वरों द्वारा 'गोपीचन्दन' कहा गया है ॥१४१॥ इसलिए वह यत्न से देना चाहिये, उसको देने से विष्णु वांछित फल देते हैं। व्रत की समाप्ति में एक तुला प्रमाण सुन्दर गोपीचन्दन का दान करे ॥१४२॥ वस्त्र और दक्षिणा समेत जो व्रती पुरुष हृषीकेश के सोने पर प्रतिदिन सोना देता है और दक्षिणा समेत शर्करा अथवा गुड़ का दान करता है ॥१४३-१४४॥ उनके दान से सन्तुष्ट सूर्य वांछित फल देते हैं, इस प्रकार व्रत के पूर्ण होने पर बुद्धिमान मनुष्य उद्यापन करे ॥१४५॥ एवं आठ-आठ फल के तौल के तांबे के पात्र बनवावे, धन का लोभ न करे यदि ऐसा न हो तो चार पल के बनवावे ॥१४६॥ शक्ति के अनुसार आठ, चार या एक पल के भार तक बनवावे और प्रत्येक में शर्करा भरे, फिर उनमें दक्षिणा और नारियल को वस्त्र से पृथक्-पृथक् बांधे ॥१४७॥ और धान्य के साथ ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक दान करे। वह शर्करा और सुवर्ण से युक्त तांबे का पात्र ॥१४८॥ सूर्य

ताम्रपात्रं सववस्त्रं च शर्कराहेमसंयुतम् ॥१४८॥ सूर्य प्रीतिकरं यस्माद्रोगघ्नं पापनाशनम् ॥ पुष्टिदं कीर्तिदं नृणां नित्यं सन्तानकारकम् ॥१४९॥ सर्वकामप्रदं स्वर्ग्यमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ तस्मादस्य प्रदानेन कीर्तिरस्तु सदा मम ॥१५०॥ एवं व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ गन्धर्वविद्यासंपन्नः सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥१५१॥ राजाऽपि लभते राज्यं पुत्रार्थी लभते सुतान् ॥ अर्थार्थी प्राप्नुयादर्थं निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥१५२॥ यस्तु वै चतुरोमासान् शाकमूल-फलादिकम् ॥ नित्यं ददाति विप्रेभ्यः शक्त्या यत्सम्भवेद्द्विजः ॥१५३॥ व्रतान्ते वस्त्रयुग्मं च शक्त्या दद्यात्सदक्षिणम् ॥ सुखी भूत्वा चिरं कालं राजयोगी भवेन्नरः ॥१५४॥ सर्वदेवप्रियं

के लिये प्रीतिकर है, पुष्टि तथा कीर्ति को देने वाला है और मनुष्यों को संतति देने वाला है ॥१४९॥ सब कामनाओं और स्वर्ग को देने वाली तथा उत्तम आयु को बढ़ाने वाली है और इसलिये इसी के दान से मेरी सदा कीर्ति हो ॥१५०॥ इस प्रकार जो व्रत करता है उसके पुण्य का फल सुनो, गन्धर्वविद्या से सम्पन्न वह मनुष्य सब स्त्रियों को प्यारा होता है ॥१५१॥ राजा राज्य को पाता है और पुत्रार्थी पुत्र को पाता है, धन की इच्छा वाला धन को पाता है और जो वासना रहित है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो व्यक्ति चार महीने शाक, मूल, फल आदि नित्य ब्राह्मणों को दान करता है ॥१५३॥ व्रत के अन्त में शक्ति के अनुसार दक्षिणा समेत वस्त्र के जोड़ों का दान करता है, वह नर बहुत काल पर्यन्त सुखी होकर राजयोगी होता है ॥१५४॥ मनुष्य को तृप्ति देने

यस्माच्छाकं तृप्तिकरं नृणाम्॥ देवर्षिप्रीतिदं कन्दमूल पत्रसपुष्पकम्॥१५५॥ ददामि तेन देवाद्याः सदा कुर्वन्तु मङ्गलम्॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे प्रत्यहं तु ऋतुद्वये॥१५६॥ दद्यात्कटुत्रयं मर्त्यो गृहपर्याप्तमादरात्॥ ब्राह्मणाय सुशीलाय दिनेश प्रीतयेऽनघ॥१५७॥ दक्षिणासहितं विप्रे मन्त्रेणानेन सुव्रत॥ कटुत्रयमिदं यस्माद्रोगघ्नं सर्वदेहिनाम्॥१५८॥ तस्मादस्य प्रदानेन प्रीतो भवतु भास्करः॥ एवं कृत्वा व्रतं सम्यक् कुर्यादुद्यापनं बुधः॥१५९॥ कृत्वा स्वर्णमयीं शुण्ठीं मरिचं मागधीमपि॥ सवस्त्रां दक्षिणायुक्तां दद्याद्विप्राय श्रीमते॥१६०॥ एवं व्रतं य कुरुते स जीवेच्छरदां शतम्॥ प्राप्नुयादीप्सितानर्थानन्ते स्वर्गं व्रजेदिनि॥१६१॥ मुक्ताफलानि

वाला शाक सब देवताओं को प्यारा है और मूल, पत्र, पुष्प समेत कंद देव-ऋषियों को प्रिय है॥१५५॥ वह मैं तुमको देता हूं, इसके द्वारा देवता सदा तुम्हारा मंगल करें। जो हृषीकेश के सोने पर दोनों ऋतुओं में प्रतिदिन॥१५६॥ दानीय ब्राह्मण के परिवार को भरपूर मात्रा में कटुत्रय-अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपर का, हे अनघ! आदर से सुशील ब्राह्मण को दान करे॥१५७॥ हे सुव्रत! दक्षिणा के सहित ब्राह्मण को अर्थ या मन्त्र से मन्त्रित, यह त्रिकटु को देता है वह देह को रोगों को नाश करने वाला है॥१५८॥ इसके देने से सूर्य प्रसन्न होवें, इस प्रकार भली भांति व्रत को करके बुद्धिमान् मनुष्य उद्यापन करे॥१५९॥ सुवर्ण की सोंठ, मिर्च, पीपर बनवाकर वस्त्र युक्त दक्षिणा समेत बुद्धिमान् ब्राह्मण को दान करे॥१६०॥ इस प्रकार जो व्रत करता है, वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है और

यो दद्यान्नित्यं विप्राय सन्मतिः ॥ अन्नवान् कीर्तिमान् श्रीमान जायते वसुधाधिपः ॥१६२॥
चातुर्मास्ये प्रत्यहं तु क्षीरकुम्भं प्रदापयेत् ॥ वेष्टयित्वा सुवस्त्रेण फलं दक्षिणया सह ॥१६३॥
सुवासिनीं श्रियं मत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत् ॥ ताम्बूलं फलमेकं वा दद्याच्छ्रीपतये नमः ॥१६४॥
समाप्तौ योषितं विप्र सूक्ष्मवस्त्रविभूषणैः ॥ मिथुनं पूजयित्वा तु जातिपुष्पैः सुशोभनैः ॥१६५॥
पुमांस्तु स्त्रियमाप्नोति नारी भर्तारमाप्नुयात् ॥ पुमांस्तु श्रियमाप्नोति सकलामिव माधवः ॥१६६॥
ताम्बूलदानं यः कुर्याद्वर्जयेद्वा जितेन्द्रियः ॥ रक्तवस्त्रद्वयं दद्यात्करकं च सदक्षिणम् ॥१६७॥
महालावण्यमाप्नोति सर्वगेगविवर्जितः ॥ मेधावी सुभगः प्राज्ञो रक्तकण्ठस्थ जायते ॥१६८॥

वांछित फल को प्राप्त करके अन्त में स्वर्ग को जाता है ॥१६१-१६२॥ जो चातुर्मास्य में प्रतिदिन दूध के घट को उत्तम वस्त्र में लपेट कर दक्षिणा समेत दान करता है ॥१६३॥ और सुवासिनी को लक्ष्मी मानकर गन्ध, पुष्प से पूजन करता है और तांबूल का या फल का 'श्रीपतये नमः' ऐसा कह के दान करता है ॥१६४॥ और व्रत की समाप्ति में स्त्री सहित ब्राह्मण का सुन्दर शोभायमान चमेली के फूल से पूजन करता है ॥१६५॥ तो पुरुष स्त्री को प्राप्त करता है और स्त्री पुरुष को प्राप्त करती है और पुरुष स्त्री को ऐसे प्राप्त करता है, जैसे कमला समेत लक्ष्मी को माधव प्राप्त हुये ॥१६६॥ जो जितेन्द्रिय पुरुष तांबूल का दान करता है अथवा उनको छोड़ देता है तथा लाल वस्त्रों का जोड़ा और दक्षिणा समेत कमंडलु का दान करता है ॥१६७॥ वह अत्यन्त सुन्दरता को

गन्धर्वत्वमवाप्नोति स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ तांबूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥१६९ ॥
अस्य प्रदानाद्ब्रह्माद्याः श्रियं ददतु पुष्कलाम् ॥ पूगे ब्रह्मा हरिः पत्रे चूर्णे साक्षान्महेश्वरः ॥१७० ॥
एतेषां संप्रदानेन सन्तु मे भाग्यसम्पदः ॥ पूरितं पूगचूर्णेन नागवल्लीदलान्वितम् ॥१७१ ॥ सचूर्णं
खादिरं चैव पत्रीफलसमन्वितम् ॥ एलालवंगसंमिश्रं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम् ॥१७२ ॥ कनकाढ्यं
निरातङ्कं तं प्रसादात्कुरुष्व माम् ॥ चातुर्मास्य व्रतोपेतः सुवासिन्यै द्विजाय च ॥१७३ ॥ नारी वा
पुरुषो वाऽपि हरिद्रां सम्प्रयच्छति ॥ लक्ष्मीमुद्दिश्य गौरी वा तत्पात्रे दक्षिणाऽन्वितम् ॥१७४ ॥

प्राप्त होता है, सब रोगों से दूर रहता है और बुद्धिमान् सुन्दर पण्डित तथा मधुर कंठ वाला हो जाता है ॥१६८ ॥
गन्धर्वत्व को प्राप्त होता है और स्वर्ग लोक में जाता है। तांबूल लक्ष्मी को देने वाला और कल्याण को देने
वाला है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है ॥१६९ ॥ इसके दान करने से ब्रह्मा आदि देवता मुझे बहुत-सी लक्ष्मी
देवें। सुपारी के चूर्ण मेंब्रह्मा और पत्ते में हरि का निवास है और चूने में साक्षात् महादेव का निवास हैं ॥१७० ॥
इन सब के दान से मेरी सौभागय सम्पत्ति अधिक बढ़े। सुपारी के चूर्ण और नागवेल के पत्ते ॥१७१ ॥ चूना, खैर,
जावित्री और जायफल युक्त इलायची और लौंग मिला हुआ ताम्बूल गन्धव और अप्सराओं को प्रिय है ॥१७२ ॥
हे ताम्बूल! मुझ को स्वर्ण युक्त तथा आतंक युक्त करो, जो चातुर्मास्य व्रत करते हुए सुवासनीस्त्री और ब्राह्मण
के निमित्त देना चाहिए ॥१७३ ॥ नारी या पुरुष हरिद्रा को लक्ष्मी या गौरी के निमित्त पात्र में दक्षिणा समेत दान

प्रद्याद्भक्तिसंयुक्तं देवी मे प्रीयतामिति ॥ भर्त्रा सह सुखं भुङ्क्ते नारी नार्या तथा पुमान् ॥१७५ ॥
सौभाग्यमक्षयं धान्यं धनपुत्रसमुन्नतिम् ॥ सम्प्राप्य रूपलावण्ये देवीलोके महीयते ॥१७६ ॥
उमामहेशमुद्दिश्य चातुर्मास्ये दिने दिने ॥ सम्पूज्य विप्रमिथुनं तस्मै विप्राय शक्तितः ॥१७७ ॥
दद्यात्सदक्षिणं हैममुमेशः प्रीयतामिति ॥ उमेशप्रतिमां हैमीं दद्यादुद्यापने बुधः ॥१७८ ॥
पंचोपचारैः सम्पूज्य धेनुं सवृषभां नरः ॥ भोजयेदपि मिष्ठान्नं तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥१७९ ॥
सौभाग्यं पूर्णमायुष्यं संततिश्चानपायिना ॥ सम्पत्तिश्चाक्षया कीर्तिर्जायते व्रतवैभवात् ॥१८० ॥
इह भुक्त्वाऽखिलान् कामानन्ते शिवपुरं व्रजेत्। तत्र स्थित्वा चिरं कालमुपभुज्य सुखं

दे ॥१७४ ॥ देवी मुझ पर प्रसन्न होवे, ऐसा कह कर जो भक्ति से दान करता है, वह नारी पति के साथ और पुरुष स्त्री के साथ सुखपूर्वक भोग करता है ॥१७५ ॥ वह सौभाग्य अक्षय धनधान्य, पुत्र, बुद्धि और रूप-लावण्य को प्राप्त करके स्वर्ग लोक में आनन्द करता है ॥१७६ ॥ जो उमा और महेश के निमित्त से चातुर्मास्य में प्रतिदिन ब्राह्मण मिथुन को अर्थात् स्त्री-पुरुष को पूजकर यथाशक्ति ॥१७७ ॥ उमेश प्रसन्न होवें ऐसा कहकर दक्षिणा समेत सुवर्ण का दान करे और उद्यापन में सुवर्ण की बनी हुई उमेश की प्रतिमा दान करे ॥१७८ ॥ वृषभ समेत गौ का पंचोपचारों से पूजन करके उनको मिष्ठान्न भोजन कराता है, तो उसका फल सुनो ॥१७९ ॥ सौभाग्य, पूरी आयु-दीर्घ जीवी, सम्पत्ति और अक्षय कीर्ति ये सब व्रत के प्रभाव से प्राप्त होती है ॥१८० ॥ और इस लोक

महत् ॥१८१॥ पुण्यशेषादिहागत्य जायते धरणीपतिः॥ फलदानं तु यः कुर्याच्चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥१८२॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद्द्विजातये॥ सर्वान्मनोरथान्प्राप्य सन्ततिश्चानपायिनीम् ॥१८३॥ फलदानस्य माहात्म्यात् मोदते नन्दने वने॥ पुष्पदानव्रतेनापि स्वर्णपुष्पादि दापयेत् ॥१८४॥ स सौभाग्यं परं प्राप्य गन्धर्वपदमाप्नुयात्॥ वासुदेवे प्रसुप्ते तु चातुर्मास्यमतन्द्रितः ॥१८५॥ नित्यं वामनमुद्दिश्य दध्यन्नं स्वादु षड्रसम्॥ भोजयेदथवा दद्यादेकादश्यां न भोजयेत् ॥१८६॥ दानमेवं प्रकुर्वीत ग्रहणादौ तथैव च॥ अशक्तः नित्यदाने तु कुर्यात्पञ्चसु पर्वसु ॥१८७॥ भूताष्टम्याममायां च पूर्णिमायां तथापि

में सम्पूर्ण कामनाओं को भोग के अन्त में शिवपुरी को जाता है, वहां चिरकाल तक स्थित हो बहुत से सुखों का भोग करके ॥१८१॥ पुण्य के शेष होने पर मृत्यु लोक में राजा होता है। जो चातुर्मास्य में आलस्य छोड़कर फलों का दान करता है ॥१८२॥ और व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण को चांदी देता है, वह सब मनोरथ और अनपायिनी सन्तति पाकर ॥१८३॥ फलदान के माहात्म्य से नंदनवन में आनन्द करता है। पुष्पदान के व्रत में भी पुष्प आदि का दान कर ॥१८४॥ परम सौभाग्य को प्राप्त हो गन्धर्व पद को प्राप्त होता है। वासुदेव के सोने पर चातुर्मास्य में आलस्य को छोड़कर कर्म करे ॥१८५॥ वामन जी के नाम पर दही-भात और स्वादयुक्त षड्रस भोजन करावे अथवा दान करे, परन्तु एकादशी को भोजन न करावे ॥१८६॥ ग्रहण आदि पर्व में भी ऐसा ही

च ॥ प्रत्यर्कवारमथवा प्रतिभार्गववासरम् ॥१८८॥ पक्षद्वयेऽपि द्वादश्यामवश्यं दानमेव च ॥ एवं कृत्वा समाप्तौ तु यथाशक्ति महीं ददेत् ॥१८९॥ अशक्तौ भूमिदाने तु धेनुं दद्यादलं-कृताम् ॥ तत्राप्यशक्तौ वासश्च सरुक्मं पादुके तथा ॥१९०॥ छत्रोपानद्वस्त्रयुतं दानं सर्वं प्रशस्यते ॥ द्विजानां भोजनं चैव क्षत्रियस्य यथासुखम् ॥१९१॥ भूम्यादि मुनिशार्दूल वैश्यस्य वसुधां विना ॥ ब्राह्मणस्यापि शक्तस्य शूद्रस्यापि तथा मतम् ॥ कुबेरेण पुरा चीर्णं शंकरस्यो-पदेशतः ॥१९२॥ जह्नुना गौतमेनापि शक्रेणापि कृतं पुरा ॥ अक्षय्यमन्नमाप्नोति पुत्रपौत्रा-दिसंपदम् ॥१९३॥ दृढाङ्गःपूर्णमायुष्यं लभते वैरिनाशनम् ॥ सुस्थिरां विष्णुभक्तिं च प्रयाति

करे। जो देने की सामर्थ्य न हो तो पांच पर्वों में दान करे ॥१८७॥ चतुर्दशी में, अष्टमी में, अमावस्या में और पूर्णिमा में अथवा प्रत्येक रविवार को या प्रत्येक शुक्रवार को ॥१८८॥ और दोनों पक्षों में द्वादशी के दिन दान करे। इस प्रकार से व्रत समाप्त होने होने पर शक्ति के अनुसार भूमि दान करे ॥१८९॥ और जो भूमिदान देने में सामर्थ्य न हो, तो अलंकार से शोभित गौ का दान करे, इसमें भी असमर्थ हो, तो वस्त्र सुवर्ण और पादुका का दान करे ॥१९०॥ वैसे ही वस्त्र समेत छाते और जूते का दान सब दानों में उत्तम है। ब्राह्मण को भोजन और क्षत्रिय को यथा साध्य भूमि ॥१९१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! वैश्य को भूमिदान छोड़ के सब दान कहे गए हैं। समर्थ ब्राह्मण को तथा शूद्र को भी कहा है। पहले शंकर जी के उपदेश से कुबेर ने यह व्रत किया ॥१९२॥ पहले जन्हु

हरिमन्दिरम् ॥१९४॥ आरोग्यं सौख्यमतुलं रूपं सम्पत्तिमेव च ॥ न वन्ध्या जायते चेदमनन्त-फलदायकम् ॥१९५॥ नित्यं पयस्विनीं दद्यात्सालङ्कारां शुभावहाम् ॥ दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स सर्वज्ञानवान् भवेत् ॥१९६॥ न परप्रेष्यतां याति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ अक्षय्यं सुखमाप्नोति पितृभिः सहितो नरः ॥१९७॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्राजापत्यं चरेन्नरः ॥ समाप्तौ गोयुगं दद्यात्कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥१९८॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ एकान्तरोपवासे तु दीपानष्टौ प्रदापयेत् ॥१९९॥ वस्त्रकाञ्चनयुक्तांश्च शय्यया सह भामिनी ॥ अनडुदद्वय-

और गौतम ऋषि ने और इन्द्र ने यह व्र.. किया। इस व्रत को करने वाले मनुष्य अन्न के. और पुत्र, पौत्रादि सम्पत्ति को प्राप्त होता है ॥१९३॥ पूरी आयु को प्राप्त करता है तथा शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं और स्थिर विष्णु भक्ति को प्राप्त होता है ॥१९४॥ आरोग्य और अतुल सुख रूप तथा सम्पत्ति को प्राप्त होता है और इस व्रत के करने से स्त्री कभी बांझ नहीं होती, यह व्रत अन्त फल को देने वाला है ॥१९५॥ अलंकार सहित कल्याण को देने वाली पयस्विनी गौ का दान करे और शक्ति के अनुसार दक्षिणा देने वाला मनुष्य सर्वज्ञानी होता है ॥१९६॥ और ब्रह्मलोक को जाता है और वह मनुष्य पितरों समेत अक्षय सुख को प्राप्त होता है ॥१९७॥ वर्षा के चार महीने में मनुष्य प्राजापत्य व्रत करे और समापित में दो गौ का दान करे और ब्राह्मण को भोजन करावे ॥१९८॥ तो सब पापों से शुद्ध होकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है और जो एक दिन बीच में देकर, व्रत कर और दीप

संयुक्तं लांगूलकर्षणक्षमम् ॥२०० ॥ सर्वोपस्करसंयुक्तं ददामि प्रीयतां हरिः ॥ शाकमूलफलै-र्वापि चातुर्मास्यं नयेन्नरः ॥२०१ ॥ समाप्तौ गोप्रदानेन स गच्छेद्विष्णुमन्दिरम् ॥ पयोव्रती तथाऽऽप्नोति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥२०२ ॥ व्रतान्ते च तथा दद्याद्गामेकां च पयस्विनीम् ॥ रंभाफलपत्रेषु यो भुङ्क्ते च ऋतुद्वये ॥२०३ ॥ वस्त्रयुग्मं च कांस्यं च शक्त्या दद्यात्सुखीभवेत् ॥ कांस्ये ब्रह्मा शिवो लक्ष्मीः कांस्यमेव विभावसुः ॥२०४ ॥ कांस्यं विष्णुमयं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ नित्यं पलाशभोजी च तैलाभ्यंगविवर्जितः ॥२०५ ॥ स निहन्त्यतिपापानि तूलराशि-मिवानलः ॥ ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च बालघातकरश्च यः ॥२०६ ॥ असत्यवादिनो ये च स्त्रीघाती

का दान करता है ॥१९९ ॥ वस्त्र तथा सुवर्ण से युक्त शय्या समेत बैलों की जोड़ी से युक्त जोतने योग्य हल ॥२०० ॥ दान करे अथवा शाक मूल या फलों से चातुर्मास्य व्यतीत करे ॥२०१ ॥ और समाप्ति में गौ का दान करे तो विष्णु के मन्दिर को जाए और जो दूध का आहार करता है, वह सनातन ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥२०२ ॥ व्रत के अन्त में एक ब्याई हुई गौ का दान कर और जो दोनों ऋतु में केला के पात्र में भोजन करते हैं ॥२०३ ॥ और जो वस्त्र, कांसे के पात्र का दान यथा शक्ति करते हैं, वह सुखी रहते हैं, कांसे में ब्रह्मा हैं, शिव हैं, लक्ष्मी हैं और कांसा ही अग्नि रूप है ॥२०४ ॥ पलास पत्रों में भोजन करे और तेल न लगावे ॥२०५ ॥ तो वह अपने पापों को ऐसे भस्म कर देता है जैसे रूई के ढेर को अग्नि जला देता है। ब्रह्म हत्यारा, मद्यपी और

व्रतघातकः ॥ अगम्यागामिनश्चैव विधवागामिनस्तथा ॥२०७॥ चाण्डालीगामिनश्चैव विप्रस्त्रीगामिनस्तथा ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ता व्रतेनानेन केशव ॥२०८॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं तु चतुः षष्टिपलैर्युतम् ॥ सवत्सां गां च वै दद्यात्सालङ्कारां पयस्विनीम् ॥२०९॥ अलंकृताय विदुषे सुवस्त्राय सुवेषिणे ॥ भूमौ विलिप्य यो भुङ्क्ते देवं नारायणं स्मरन् ॥२१०॥ शत्रोर्भयं न लभते विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अयाचिते त्वनड्वाहं सहिरण्यं सचन्दनम् ॥२११॥ षड्रसं भोजनं दद्यात्स याति परमां गतिम् ॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तं च कुरुते व्रतम् ॥२१२॥

बालकों का हत्यारा ॥२०६॥ और जो असत्यवादी है और जो स्त्री तथा बालक का घाती हैं और जो अगम्यगामी हैं और जो विधवागामी है ॥२०७॥ चाण्डाली में गमन करने वाले हैं, हे केशव! वे सब इस व्रत को करके पापों से छूट जाते हैं ॥२०८॥ और व्रत की समाप्ति में चौंसठ पल के कांसे के पात्र का और अलंकार युक्त पयस्विनी बछड़े वाली गौ का दान करते हैं ॥२०९॥ अलंकृत और विद्वान् सुन्दर वस्त्रधारी ब्राह्मण को दान देता है और जो भूमि लीपकर नारायण का स्मरण करता हुआ भोजन कराता है। खेती के योग्य बहुत से जल के समीप की भूमि को यथाशक्ति दान करने वाला आरोग्य और पुत्रों से सम्पन्न धर्मात्मा राजा होता है ॥२१०॥ वह शत्रु के भय को नहीं प्राप्त होता है और विष्णु लोक को गमन करता है। जो अयाचि को सुवर्ण और चन्दन समेत ॥२११॥ बहुत सा भोजन देता है, वह परमगति को प्राप्त होता है और हृषीकेश भगवान् के सोने के समय

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छिवलोके महीयते॥ एकभुक्तं नरः कृत्वा मिताशी च दृढ़-व्रतः ॥२१३॥ योऽर्चयेच्चतुरो मासान् वासुदेवं स नाकभाक्॥ समाप्तौ भोजयेद्विप्रान् शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्॥२१४॥ यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः॥ शय्यां सोपस्करां दद्यात् शिवलोके महीयते॥२१५॥ पादाभ्यंगं नरो यस्तु वर्जयेच्च ऋतुद्वये॥ पादाभ्यंगं नरः कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम्॥२१६॥ दक्षिणां च यथाशक्त्या स गच्छेद्विष्णुमंदिरम्॥ आषाढाच्चतुरो मासान्वर्जयेन्नखकृन्तनम्॥२१७॥ आरोग्यपुत्रसम्पन्नो राजा भवति धार्मिकः॥ पायसं लवणं चैव मधु सर्पिः फलानि च॥२१८॥ चातुर्मास्ये वर्जयति गौरीशङ्करतुष्टये॥

नक्त व्रत करता है॥२१२॥ और जो पीछे व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण को भोजन कराता है, वह शिवलोक में आनन्द भोगता है। मनुष्य एक भुक्त व्रत करके थोड़ा-सा भोजन करे और व्रत में दृढ़ रहे॥२१३॥ जो चार महीने वासुदेव का पूजन करते हैं, वह स्वर्ग के भागी होते हैं और समाप्ति में ब्राह्मणों को भोजन कराते और शक्ति के अनुसार दक्षिणा देते हैं॥२१४॥ हृषीकेश के सोने पर जो मनुष्य भूमि में सोता है और सामग्री समेत शय्या का दान करता है, वह शिवलोक में आनन्द से भोग भोगता है॥२१५॥ और जो मनुष्य दोनों ऋतुओं में तेल नहीं लगाता है, ब्राह्मण के पांव धोता है और उनको भोजन कराता है॥२१६॥ और यथाशक्ति दक्षिणा देता है तो वह विष्णुलोक को जाता है। आषाढ़ आदि चार महीनों में नख न कटावे॥२१७॥ तो वह आरोग्य और

कार्तिक्यां च पुनस्तानि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२१९॥ स रुद्रलोकमाप्नोति रुद्रव्रतनिषेवणात् ॥ यवान्नं भक्षयेद्यस्तु अथवा शालयः शुभाः ॥२२०॥

पुत्रपौत्रादिभिः सार्द्धं शिवलोके महीयते ॥ तैलाभ्यंगपरित्यागी विष्णुभक्तः सदा व्रती ॥२२१॥ वर्षासु विष्णुमभ्यर्च्य वैष्णवीं लभते गतिम् ॥ समाप्तौ कांस्यपात्रं च सुवर्णेन समन्वितम् ॥२२२॥ तैलेन पूरितं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासाञ्छाकादि परिवर्जयेत् ॥२२३॥ विष्णुलोकमवाप्नोति पितृ तृप्तिः प्रजायते ॥ व्रतान्ते हरिमुद् दिश्य पात्रं

पुत्रों से युक्त धर्मात्मा राजा होता है और खीर, नमक, शहद, घी और फलों को जो ॥२१८॥ चातुर्मास्य में गौरीशंकर की प्रसन्नता के लिए छोड़कर और फिर उन्हीं वस्तु को कार्तिकी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मणों को निवेदन करता है ॥२१९॥ वह रुद्र व्रत के सेवन से रुद्रलोक को प्राप्त होता है और जो चार महीने यव का अथवा चावल का भोजन करता है ॥२२०॥

वह पुरुष पौत्रादिक समेत शिवलोक में आनन्द करता है। तेल लगाने का त्यागी सदा व्रती विष्णु भक्त ॥२२१॥ वर्षाऋतु में विष्णु का पूजन करके विष्णु की गति को प्राप्त करता है और समाप्ति में सुवर्ण युक्त कांसे के पात्र को ॥२२२॥ तेल से भरकर ब्राह्मण को दान करे और वर्षा के चार महीने शाक आदि को वर्जित करे ॥२२३॥ वह विष्णु के लोक को प्राप्त होता है और पितरों को तृप्ति देता है। व्रत के अन्त में हरि के निमित्त

राजतमेव हि ॥२२४॥ वस्त्रेण वेष्टयेद् गंधपत्रपुष्पैः समर्चयेत्॥ मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधि-रूढकम्॥२२५॥ त्वक्पुष्पं कवचं चेति शाकमष्टविधं स्मृतम्॥ समभ्यर्च्य यथाशक्त्या ब्राह्मणान्वेद-पारगान्॥२२६॥ दद्याद्दक्षिणया सार्धं व्रतसम्पूर्णहेतवे॥ शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादाच्छूलपाणिनः॥२२७॥ अपूपवर्जनं कृत्वा भोजनं व्रतमाचरेत्॥ कार्तिके स्वर्णगो-धूमान्वस्त्रं दत्त्वाऽश्वमेधकृत्॥२२८॥ गोधूमाः सर्वजन्तूनां बलपुष्टिविबर्धनाः॥ मुख्याश्च हव्यकव्येषु तस्मान्मे ददतु श्रियम्॥२२९॥ आषाढादि चातुर्मासान्वृन्ताकं वर्जयेन्नरः॥

चांदी के पात्र का दान करे ॥२२४॥ उस पात्र को वस्त्र में लपेट और गन्ध, पत्र-पुष्पों द्वारा पूजन कर, मूल, पत्र, करील का अग्र फल ॥२२५॥ त्वचा, पुष्प और कवच यह आठ प्रकार का शाक हो गया है उसको यथा शक्ति पूजन करके वेद के पारगामी ब्राह्मण को ॥२२६॥ व्रत की पूर्णता के लिये दक्षिणा समेत दान करे तो वह त्रिशूलपाणि जो शिव हैं, उनके प्रसाद से शिव की सायुज्यता को प्राप्त होता है ॥२२७॥ पूआ को छोड़कर दूसरा कुछ भोजन न कर व्रत करे और कार्तिक में सुवर्ण, गेहूं और वस्त्र का दान करे तो अश्वमेध के फल को प्राप्त होता है ॥२२८॥ गेहूं सब जीवों को बल और पुष्टि बढ़ाने वाला है और हव्य कल्प में मुख्य है, इसलिये मुझे लक्ष्मी मिले ॥२२९॥ आषाढ़ आदि चार महीने में मनुष्य बैंगन को और करेला को न खाए, लौकी और परवर न खाए ॥२३०॥ और जो कोई फल प्यारा हो, उसे न खाए, फिर चातुर्मास्य के पूरे होने पर इन वस्तुओं को

कारवल्लीफलं वाऽप्यलांबुं षड्वलं तथा ॥२३०॥ यद्वा तद्वा फलं वापि यच्च प्रियतमं भवेत्॥ चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रौप्याण्येतानि कारयेत्॥२३१॥ मध्ये विद्रुमयुक्तानि ह्यर्चयित्वा तु शक्तितः। दद्याद्दक्षिणया सार्द्धं ब्राह्मणायातिभक्तितः॥२३२॥ अभीष्टं देवमुद्दिश्य देवो मे प्रीयतामिति॥ स दीर्घमायुरारोग्यं पुत्रपौत्रान्सुरूपकान्॥२३३॥ अक्षय्यां सन्ततिं कीर्तिं लब्ध्वा स्वर्गे महीयते॥ फलत्यागी भवेद्यस्तु विष्णुलोके स पूज्यते॥२३४॥ समाप्तौ कलधौतानि तानि दद्याद् द्विजायते॥ श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा॥२३५॥ दुग्धमश्वयुजे मासि

चांदी का बनवावे॥२३१॥ और बीच में मूंगे लगावे, फिर यथाशक्ति पूजन करके दक्षिणा सहित ब्राह्मण को भक्ति से दान करे॥२३२॥ अभीष्ट देवता के नाम पर कि, "आमुक देव मेरे ऊपर प्रसन्न होवें" वह मनुष्य दीर्घ आयु और आरोग्य को प्राप्त होता है और सुन्दर रूपवान् पुत्र-पौत्र को प्राप्त होता है॥२३३॥ अक्षय संतति और कीर्ति को प्राप्त करके स्वर्ग में आनन्द करता है और जो चातुर्मास्य में फलों का त्याग करता है, वह विष्णु लोक में पूजित होता है॥२३४॥ (१) सावन में शाक न खाए और (२) भादों में दही न खाए॥२३५॥ (३) क्वार के महीने में दूध को और (४) कार्तिक में दाल का त्याग करें॥२३६॥ (१) प्रथम मास श्रावण में मनुष्य को शाक न खाने का व्रत करना चाहिये और (२) दूसरे अर्थात् भादों के महीने में दधि न खाने का व्रत करने योग्य है॥२३७॥ और तीसरे क्वार में दूध का और (४) चौथे कार्तिक में दाल न खाने का व्रत करे अर्थात् इन

कार्तिके द्विदलं त्यजेत् ॥ चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्तिनाम् ॥२३६ ॥ प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् ॥२३७॥ पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थे द्विदलं तथा ॥ कूष्माण्डं राजमाषांश्च मूलकं गृञ्जनं तथा ॥२३८ ॥ करमर्दं चेक्षुदण्डं चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः ॥ मसूरं बहुबीजं वै वृन्ताकं चैव वर्जयेत् ॥२३९ ॥ नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ विशेषाद्बदरीं धात्रीमलांबु चिञ्चिणीं त्यजेत् ॥२४० ॥ जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं जीर्णं ग्राह्या च चिञ्चिणी ॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान प्रसुप्तेच जनार्दने ॥२४१ ॥ मञ्च-खट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः अनृते वर्जयेद्भार्यामृतौ गच्छन्न दुष्यति ॥२४२ ॥ मधुवेलिं च शिग्रुं च चातुर्मास्ये त्यजेन्नरः ॥ वृन्ताकं च कलिंगं च बिल्वोदुम्बरभिस्संटाः ॥२४३ ॥

चारों महीनों में चारों वस्तु न खाए और कुम्हड़ा, माष, मूली, गाजर इनको भी न खाए ॥२३८ ॥ और चातुर्मास्य में मनुष्य करौंदा और ईख न खाए और मसूर की दाल तथा बहुत बीज जिसमें हो ऐसे फल बैंगन को न खाए ॥२३९ ॥ हे विप्रेन्द्र! पण्डितों ने ये नित्य व्रत कहे हैं और विशेष करके बेर, आंवला, लौकी का और इमली का त्याग करे ॥२४०-२४१ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य मचान तथा चारपाई पर सोने का त्याग करे और बिना ऋतु समय स्त्री गमन न करे। ऋतु समय पर गमन करे, तो दोष नहीं है ॥२४२ ॥ मधुवेलि और सहिजन का चातुर्मास्य में त्याग करे और बैगन, कलिंदा, गूलर तथा टिंडा का त्याग करे ॥२४३ ॥ उपवास तथा नक्त-व्रत

उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः ॥ उपवासस्तथा नक्तमेकभुक्तमयाचितम् ॥२४४॥ अश-क्तस्तु यथा कुर्यात्सायं प्रातरखण्डितम् ॥ स्नानपूजादिसंयुक्तः स नरो हरिलोकभाक् ॥२४५॥ गीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्वं लोकमाप्नुयात् ॥ मधुभुक्तं भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥२४६॥ लभेच्च सन्ततिं दीर्घां पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुन्दरांगः प्रजायते ॥२४७॥ कौसुम्भतैलसन्त्यागात् शत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥ मधूकतैलत्यागाच्च सुसौभाग्यफलं लभेत् ॥२४८॥ कटु तिक्तं च मधुरं कषायलवणान् रसान् ॥ वर्जयेत् स च वैरूप्यं दौर्गन्ध्यं नाप्नुयात्सदा ॥२४९॥ पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् ॥ योगाभ्यासी भवेन्नस्तु स ब्रह्मपदवीमियात् ॥२५०॥ ताम्बूलवर्जनाद्रोगी सद्यो मुक्तामयो भवेत् ॥ पादाभ्यंगपरित्यागा-

और एकभुक्त तथा अयाचित ॥२४४॥ जो इनको करने में असमर्थ हो तो प्रातःकाल और सन्ध्या को स्नान पूजन आदि कर विष्णु का पूजन करे तो विष्णु लोक को प्राप्त होता है ॥२४५॥ जो विष्णु के आगे गाता-बजाता है, वह गन्धर्व लोक को प्राप्त होता है और गुड़ के छोड़ने से, मीठे को न खाने वाला राजा होता है ॥२४६॥ पुत्र पौत्रों को बढ़ाने वाली सन्तति को प्राप्त होता है। हे राजन्! तेल छोड़ने से सुन्दर अंग वाला हो जाता है ॥२४७॥ कुसुम्भ का तेल छोड़ने से शत्रु नाश को प्राप्त होता है और महुआ के तेल के त्याग के सौभाग्य प्राप्त होता है ॥२४८॥ कटु, तिक्त, मधुर, काषाय, लवण इन रसों के त्याग से विरूपता और दुर्गन्ध को कभी नहीं

च्छिरोऽभ्यगस्य पार्थिव ॥२५१ ॥ दीप्तिमान् दीप्तकरणो यक्षद्रव्यपतिर्भवेत् ॥ दधिदुग्धपरित्यागो गोलोकं लभते नरः ॥२५२ ॥ इह लोकमवाप्नोति स्थालीपाकविवर्जनात् ॥ एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥२५३ ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान् नखरोमाणि धारयेत् ॥ कल्पस्थायी भवेद्राजन्स नरो नात्र संशयः ॥२५४ ॥ नमो नारायणायेति जपित्वाऽनन्तकं फलम् ॥ विष्णुपादाम्बुजस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥२५५ ॥ लक्षप्रदक्षिणा यस्तु करोति हरिमन्दिरे ॥ हंसयुक्तविमानेन स याति वैष्णवीं पुरीम् ॥२५६ ॥ त्रिरात्रभोजनत्यागात् मोदते दिवि देववत् ॥ परान्नवर्जना-

प्राप्त होता है ॥२४९ ॥ और पुष्प आदि भोगों के त्याग से स्वर्ग लोक में विद्याधर होता है और जो योगाभ्यासी हो वह ब्रह्मपदवी को प्राप्त होता है ॥२५० ॥ और ताम्बूल छोड़ने से रोगी शीघ्र ही रोग रहित हो जाता है। हे राजन्! पैरों में और शिर में तेल लगाना छोड़ने से ॥२५१ ॥ दीप्तिमान और दीप्त इन्द्रिय वाला यक्ष द्रव्यपति होता है और दही, दूध का त्याग करने वाला मनुष्य गोलोक को प्राप्त होता है ॥२५२ ॥ स्थालीपाक के त्याग से इस लोक में सुख पाता है और एक दिन बीच में देकर व्रत करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में आनन्द करता है ॥२५३ ॥ वर्षा के चार महीने में जो नख और बाल को धारण करता है, वह नर कल्पस्थायी होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥२५४ ॥ और 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र का चार महीने जप करता है, उसको अनन्त फल मिलता है और विष्णु के चरण-कमलों के स्पर्श से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥२५५ ॥ और जो हरि के मन्दिर

द्राजन्देवो वै मानुषो भवेत् ॥२५७॥ प्राजापत्यं चरेद्यो वै चातुर्मास्यव्रतान्नरः ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैं स्त्रिविधैर्नात्र संशयः ॥२५८॥ तप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्राभ्यां यः क्षिपेच्छयनं हरेः ॥ स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२५९॥ चान्द्रायणेन यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ॥ दिव्य देहो भवेत्सोऽथ शिवलोकं च गच्छति ॥२६०॥ चातुर्मास्ये नरो यो वै त्यजेदन्नादिभक्षणम् ॥ स गच्छेद्धरिसायुज्यं न भूयस्तु प्रजायते ॥२६१॥ भिक्षाभोजी नरो यो हि स भवेद्वेदपारगः ॥ पयोव्रतेन यो राजन् क्षिपेन्मासचतुष्टयम् ॥२६२॥ तस्य वंशसमुच्छेदः कदाचिन्नोपपद्यते ॥

में एक लाख प्रदक्षिणा करे, तो वह हंसयुक्त विमान में स्थित होकर विष्णुपुर को जाता है ॥२५६॥ तीन रात्रि पर्यन्त भोजन के त्याग से स्वर्ग में देवताओं के समान आनन्द करता है और हे राजन्! पराये अन्न के त्याग से मनुष्य देवता हो जाता है ॥२५७॥ हे राजन्! जो चार महीने प्राजापत्य व्रत का चातुर्मास्य करता है वह कायिक, वाचिक, मानसिक, तीनों प्रकारों के पापों से दूर हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥२५८॥ और जो तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र द्वारा शयन को व्यतीत करता है, वह पुनरावृत्ति से वर्जित परम स्थान को प्राप्त होता है ॥२५९॥ हे राजन्! जो चान्द्रायण व्रत द्वारा चार महीने व्यतीत करता है, वह दिव्य देह होकर शिवलोक को जाता है ॥२६०॥ जो मनुष्य चातुर्मास्य में अन्न आदि का भोजन छोड़ देता है, वह हरि की सायुज्यता को प्राप्त होता है, फिर इस लोक में जन्म नहीं लेता है ॥२६१॥ जो चातुर्मास्य में भिक्षा मांग कर भोजन करता है वह वेद का

पञ्चगव्याशनः पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत् ॥२६३॥ दिनत्रयं जलत्यागान्न रोगैरभिभूयते॥ एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमायाति केशवः ॥२६४॥ दुग्धाब्धिवीचिशयने भगवाननन्तो यस्मिन्दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते च॥ तस्मिन् अनन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति च गतिं गरुडासनोऽसौ ॥२६५॥

पारगामी होता है। हे राजन्! जो मनुष्य पयोव्रत करके चार महीनों को व्यतीत करता है ॥२६२॥ उसके वंश का कभी नाश नहीं होता है और जो पंचगव्य का (दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र) भोजन करता है, हे युधिष्ठिर! वह चान्द्रायण व्रत के फल को प्राप्त होता है ॥२६३॥ और तीन दिन तक जल के त्यागने से रोग द्वारा दबाया नहीं जाता है। हे युधिष्ठिर! इस व्रत के द्वारा केशव भगवान् संतुष्ट होते हैं ॥२६४॥ क्षीर सागर में जिस दिन भगवान् सोते हैं और जिस दिन जागते हैं, उस दिन जिन अनन्य मन होकर व्रत करने वाले मनुष्य को गरुड़ासन भगवान् उत्तम गति को देते हैं ॥२६५॥

आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष की देवशयनी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

१७. श्रावण कृष्णपक्ष कामिका एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ आषाढशुक्लपक्षे तु यद्देवशयनव्रतम्॥ तन्मया श्रूतपूर्वं हि पुराणे बहुविस्तरम् ॥१ ॥ श्रावणे कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥ एतत्कथय गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम्॥ नारदाय पुरा राजन् पृच्छते च पितामहः ॥३ ॥ परं यदुक्तवांस्तात तदहं ते वदामि च॥ नारद उवाच॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं कमलासन ॥४ ॥ श्रावणस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत्॥ को देवः को विधिस्तस्याः किं पुण्यं कथय प्रभो ॥५ ॥ ब्रह्मोवाच॥ शृणु नारद ते वच्मि लोकानां हितकाम्यया॥ श्रावणैकादशी कृष्णा कामिकेति च नामतः ॥६ ॥ तस्याः श्रवणमात्रेण

युधिष्ठिर बोले, श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में कौन सी एकादशी होती है, हे वासुदेव इस विषय में कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, सुनो, पापों को नाश करने वाली एकादशी के बारे में कहता हूं। नारद मुनि की जिज्ञासा पर ब्रह्मा जी ने जो उत्कृष्ट कथन किया, हे तात उसे मैं तुमसे कहता हूं। नारद बोले, हे कमलासन भगवन्, श्रावणमास के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी आती है, उसमें किस देवता की पूजा की जाती है और उसकी क्या विधि है। उसका क्या पुण्य है। इस विषय में आपसे सुनना चाहता हूं, हे प्रभो, मुझसे कहिये। ब्रह्मा बोले, हे नारद, लोगों की हित की कामना से तुमसे कहता हूं। इस

वाजपेयफलं लभेत् ॥ तस्यां तु पूजयेद्देव शंखचक्रगदाधरम् ॥७॥ श्रीधराख्यं हरि विष्णुं माधवं मधुसूदनम् ॥ यजते ध्यायते यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥८॥ न गंगायां न काश्यां वै नैमिषे न च पुष्करे ॥ तत्फलं समवाप्नोति यत्फलं विष्णुपूजनात् ॥९॥ केदारे च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ॥१०॥ ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुन्धराम् ॥ गोदावर्यां गुरौ सिंहे व्यतीपाते च गण्डके ॥११॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्फलं कृष्णपूजनात् ॥ कामिकाव्रतकारी च ह्युभौ समफलौ स्मृतौ ॥१२॥ प्रसूयमानां यो धेनुं दद्यात् सोपस्करां नरः ॥ तत्फलं समवाप्नोति कामिकाव्रतकारकः ॥१३॥ श्रावणे श्रीधरं देवं पूजयेद्यो नरोत्तमः ॥ तेनैव पूजिता देवाः गन्धर्वोरगपन्नगाः ॥१४॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कामिकादिवसे हरिः ॥ पूजनीयो यथाशक्तिः मनुष्यैः पापभीरुभिः ॥१५॥ संसारार्णवमग्नाः ये पापपङ्क-

पक्ष की एकादशी का नाम कामिका है। इस में शंख, चक्र, गदा को धारण करने वाले विष्णु भगवान् (श्रीधर) का पूजन करना चाहिये। दूध, दही, मखन, शहद, शर्करा के पञ्चामृत से, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से भगवान् का कीर्तन करें। प्रातः उठकर प्रभु का स्मरण करता हुआ, स्नान आदि करके ब्राह्मण को भोजन करवाए। तत्पश्चात् स्वयं भोजन करे। तुलसी के पत्रों से, तुलसी मंजरियों से भगवान का पूजन करने से मनुष्य जन्म-जन्मान्तर के पापों को नष्ट कर देता है। घृत या तेल का दीपक जलाना चाहिये। इस व्रत की बहुत महिमा है। इस पवित्र एकादशी के श्रवण मात्र से ही वाजपेय यज्ञ का फल

समाकुलाः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय कामिकाव्रतमुत्तमम् ॥१६ ॥ नातः परतरा काचित्पवित्रं पाप-हारिणो ॥ एवं नारद जानीहि स्वयमाह पुरा हरिः ॥१७ ॥ अध्यात्मविद्यानिरतैर्यत् फलं प्राप्यते नरैः ॥ ततो बहुतरं विद्धि कामिकाव्रतसेवनात् ॥१८ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्कामिकाव्रतकिन्नरः ॥ न पश्याति यमं रौद्रं नैव पश्यति दुर्गतिम् ॥१९ ॥ न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेवनात् ॥ कामिकाया व्रतेनैव कैवल्यं योगिनो गताः ॥ सर्वैः सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या नियतात्मभिः ॥२० ॥ तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरैः पूजयेद्धरिम् ॥ न वै स लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवांभसा ॥२१ ॥ सुवर्णभारमेकं तु रजतं च चतुर्गुणम् ॥ दत्त्वा यत्फल-माप्नोति तत्फलं तुलसीदले ॥२२ ॥ रत्नमौक्तिकवैडूर्यप्रवालादिभिः रचितः ॥ न तुष्यति तथा विष्णु-स्तुलसीपूजनाद्यथा ॥२३ ॥ तुलसीमञ्जरीभिस्तु पूजितो येन केशवः ॥ आजन्मकृतपापस्य तेन सम्मार्जिता लिपिः ॥२४ ॥ यां दृष्ट्वा निखिलाघसंघसमनी स्पृष्टा वपुः पावनी। रोगाणामभिवन्दिता निरसनी

मिलता है। जो फल विष्णु के पूजन से प्राप्त होता है, वह न काशी में, न नौमिषारण्य में प्राप्त होता है। केदार क्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय स्नान करके भी वह फल नहीं मिलता जो फल श्री कृष्ण के पूजन से प्राप्त होता है। समुद्र और वन से युक्त भूमि का जो दान करता है और सिंह के वृहस्पति में गोदावरी में और व्यतिपात में गण्डकी नदी में स्नान करने से जो फल मिलता है, वह श्रीकृष्ण के पूजन से प्रास होता है। वह पूजन का फल एवं कामिका एकादशी के व्रत करने का फल ये दोनों समान हैं। प्रसूता गाय का सामग्री सहित जो दान करता है, वही फल इस कामिका एकादशी के करने से प्राप्त होता है।

सिक्ताऽन्तकत्रासिनी ।। प्रत्यासक्ति विधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता । न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति-फलदा तस्यै तुलस्यै नमः ।।२५ ।। दीपं ददाति यो मर्त्यो दिवारात्रौ हरेर्दिने ।। तस्य पुण्यस्य संख्यानं चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति न ।।२६ ।। कृष्णाग्रे दीपको यस्तु ज्वलेदेकादशीदिने ।। पितरस्तस्य तृप्यन्ति अमृतेन दिवि स्थिताः ।।२७।। घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ।। प्रयाति सूर्यलोकेऽसौ दीपकोटि-शतैर्वृतः ।।२८ ।। अयं तवाग्रे कथितः कामिकामहिमा मया ।। अतो नरः प्रकर्तव्या सर्वपातकहारिणी ।।२९ ।। ब्रह्महत्याऽपहरणी भ्रूणहत्याविनाशिनी ।। त्रिदिवस्थानदात्री च महा पुण्यफलप्रदा ।।३० ।। श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः नरः श्रद्धासमन्वितः ।। विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३१ ।।

जो उत्तम पुरुष श्रावण मास में श्रीधर देव के नाम से विष्णु का पूजन करता है, उसके समस्त देव, गन्धर्व उरग और पन्नग ये सब पूजे गये। इसलिये यत्नपूर्वक कामिका एकादशी के दिन पापों से डरकर मनुष्यों को यथाशक्ति हरि का पूजन करना चाहिये। जो संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए और पाप रूपी कीचड़ से ग्रस्त मनुष्य हैं उनके उद्धार के लिये इस एकादशी का व्रत उत्तम है। इससे दूसरा पवित्र और पाप को नाश करने वाला कोई व्रत नहीं है। हे नारद, इसे भगवान् ने स्वयं कहा है। अध्यात्म विद्या में संलग्न मनुष्य को जो फल मिलता है, वह एकादशी के व्रत से प्राप्त हो जाता है। इस व्रत को करने से योगी मनुष्य भी मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की कामिका एकादशी का माहात्म्य पूर्ण हुआ।

१८. श्रावण शुक्लपक्ष पुत्रदा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ श्रावणस्य सिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥२ ॥ द्वापरस्य युगस्यादौ पुरा माहिष्मतीपुरे ॥ राजा महीजिदाख्यातो राज्यं पालयति स्वयम् ॥३ ॥ पुत्रहीनस्य तस्यैव न तद्राज्यं सुखप्रदम् ॥ अपुत्रस्य सुखं नास्ति इह लोके परत्र च ॥४ ॥ यततोऽस्य सुतप्राप्तौ कालो बहुतरो गतः ॥ न प्राप्तश्च सुतो राज्ञा सर्वसौख्यप्रदो नृणाम् ॥५ ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसं राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥ सद्योगतः

युधिष्ठिर बोले, हे वासुदेव, श्रावण मास के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसका क्या माहात्म्य है? इस विषय में मुझ से कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, पापों को हरण करने वाली इस कथा को कहता हूं, सावधान होकर सुनो। द्वापर युग में माहिष्मती पुरी में महीजित नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के कोई सन्तान नहीं थी। पुत्रहीन उस राजा को राज्य सुख देने वाला कोई नहीं था। पुत्रहीन उस राजा को यत्न करते हुए बहुत समय बीत गया। अपनी आयु को अधिक देखते हुए राजा ने सभा के मध्य बैठे हुए लोगों से कहा कि इस जन्म में मैं ने कोई पाप नहीं किया, न ही अन्याय से उपार्जित धन को भण्डार में रखा है। न

प्रजामध्ये इदं वचनमब्रवीत् ॥६ ॥ इह जन्मनि भो लोकाः न मया पातकं कृतम् ॥ अन्यायोपार्जितं वित्तं क्षिप्तं कोषे मया न हि ॥७ ॥ ब्रह्मस्वं देवद्रविणं न गृहीतं मया क्वचित् ॥ न्यासापहारो न कृतः परस्य बहुपापदः ॥८ ॥ सुतवत्पालिता लोका धर्मेण विजिता मही ॥ दुष्टेषु पातितो दण्डो बन्धुपुत्रोपमेष्वपि ॥ शिष्टा सुपूजिता लोका द्वेष्याश्चापि महाजनाः ॥९ ॥ इत्येवं व्रजतो मार्गे धर्मयुक्ते द्विजोत्तमाः ! कस्मान्मम गृहे पुत्रो न जातस्तद्विचार्यताम् ॥१० ॥ इति वाक्यं द्विजाः श्रुत्वा सप्रजा सुपुरोहिताः ॥ मन्त्रयित्वा नृपहितं जग्मुस्ते गहनं वनम् ॥११ ॥ इतस्ततश्च पश्यन्तश्चाश्रमानृषिसेवितान् ॥ नृपतेर्हितमिच्छन्तो ददृशुर्मुनिसत्तमम् ॥१२ ॥ तप्यमानं तपो घोरं चिदानन्दं निरामयम् ॥ निराहारं जितात्मानं जितक्रोधं सनातनम् ॥१३ ॥ लोमशं धर्मतत्त्वज्ञं

ही मैंने कभी ब्राह्मण का या देवता का धन ग्रहण किया है, बहुत पापों की मूल किसी की धरोहर को भी मैंने नहीं रखा। सन्तान की तरह मैंने प्रजा का पालन किया है, धर्म से मैंने पृथ्वी को जीता है, दुष्ट मनुष्य के साथ भी मैंने भाई की तरह व्यवहार किया है, इस प्रकार धर्म युक्त मार्ग में चलते हुए मुझे पुत्र की प्राप्ति क्यों नहीं हुई, इस पर विचार करो। राजा के वचनों को सुनकर पुरोहित वर्ग प्रजा के साथ वन में गये। राजा के हित की इच्छा से वहां के आश्रमों को देखते-देखते एक श्रेष्ठ मुनि को देखा जो घोर तपस्या कर रहे थे। वे जितात्मा, निरामय, चिदानन्द रूप एवं सनातन थे। धर्म तत्त्व के ज्ञाता, ब्रह्मा के तुल्य तेजस्वी लोमश ऋषि को देखा। उन

सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ दीर्घायुषं महात्मानमनेकब्रह्मसम्मितम् ॥१४॥ कल्पे गते यस्यैकस्मिन्नेकं लोमं विशीर्यंते॥ अतो लोमशनामानं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ॥१५॥ तं दृष्ट्वा हर्षिताः सर्वे ह्याजग्मुस्तस्य सन्निधिम् ॥ यथान्यायं यथार्हं ते नमश्चक्रुर्यथोदितम् ॥१६॥ विनयाऽवनताः सर्वे ऊचुश्चैव परस्परम् ॥ अस्मद्भाग्यवशादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः ॥१७॥ तांस्तथा प्रणतान् दृष्ट्वा ह्युवाच मुनिसत्तमः ॥ लोमश उवाच ॥ किमर्थमिह संप्राप्ताः कथयध्वं सकारणम् ॥१८॥ मद्दर्शनाह्लादगिरः स्तुवन्त इव मां किमु ॥ असंशयं करिष्यामि भवतां यद्धितं भवेत् ॥१९॥ परोपकृतये जन्म मादृशानां न संशयः ॥ जना ऊचुः ॥ श्रूयतामभिधास्यामो वयमागमने कारणम् ॥२०॥ संशयच्छेदनार्थाय तव सन्निधिमागताः ॥ पद्मयोनेश्च परतस्त्वत्तः श्रेष्ठो न

त्रिकालज्ञ मुनि को देखकर सब प्रसन्न हो गये। यथायोग्य सभी ने उन्हें प्रणाम किया। उन सभी लोगों को आये हुए देखकर लोमश ऋषि बोले। आप लोगों का यहां आना किस कारण से हुआ, अपने आने का कारण कहो। जिसमें आप का हित होगा, ऐसी बात मैं अवश्य कहूंगा। प्रजा के लोग बोले, हम अपने आने का कारण कहते हैं। हमारा संदेह आप अवश्य दूर करेंगे। हमारे राज्य का राजा महीजित सन्तान से रहित है। हे ब्राह्मण, हम उसकी सन्तान हैं। सन्तान की तरह उन्होंने हमारा पालन किया है। उनके पुत्र रहित होने के कारण हम दुःखी हैं। नैष्ठिक बुद्धि के साथ हम यहां तप करने के लिये आये हैं। हमारे भाग्य से आपका हमें दर्शन हो गया है।

विद्यते ॥२१॥ अतः कार्यवशात्प्राप्ताः समीपं भवतो वयम्॥ महीजिन्नाम राजाऽसौ पुत्रहीनाऽस्ति सांप्रतम्॥२२॥ वयं तस्य प्रजा ब्रह्मन्पुत्रवत्तेन पालिताः॥ तं पुत्ररहितं दृष्ट्वा तस्य दुःखेन दुःखिताः॥२३॥ तपः कर्तुमिहायाताः मतिं कृत्वा तु नैष्ठिकीम्॥ तस्य भाग्यवशाद्दृष्ट-स्त्वमस्माभिर्द्विजोत्तम॥२४॥ महतां दर्शनेनैव कार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ उपदेशं वद मुने राज्ञः तस्य पुत्रो यथा भवेत्॥२५॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः॥ प्रत्युवाच मुनिर्ज्ञात्वा तस्य जन्म पुरातनम्॥२६॥ लोमश उवाच॥ पूर्वजन्मनि वैश्योऽयं धनहीनो नृशंसकृत॥ वाणिज्यकर्मनिरतो ग्रामाद्ग्रामान्तरं भृशम्॥२७॥ ज्येष्ठ मासि सिते पक्षे द्वादशीदिवसे तथा॥ मध्याह्ने द्युमणौ प्राप्ते ग्रामसीम्निजलाशयम्॥२८॥ कूपिकां सजलां दृष्ट्वा जलपाने मनो

ब्रह्मर्षियों के दर्शन से ही सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। हे मुने, ऐसा उपदेश दीजिये जिससे राजा को पुत्र की प्राप्ति हो। उन लोगों के वचनों को सुनकर मुनिवर कुछ क्षण के लिये ध्यान में स्थित हो गये, राजा के पहले जन्म के विषय में जानकर बोले। यह राजा पूर्व जन्म में धनहीन, क्रूर कर्म करने वाला वैश्य था। एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाकर अपना कारोबार करता था। एक बार ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन मध्याह्न समय में ग्राम की सीमा में एक जलाशय को देखकर पानी पीने की इच्छा से वहां गया। उसी समय शीघ्र ही नव प्रसूता एक गाय अपने वच्छे के साथ प्यास से घबराई हुई पानी पीने के लिये आई। भयंकर गर्मी से व्याकुल

दधौ ॥ सद्यः सूता सवत्सा च धेनुस्तत्र समागता ॥२९॥ तृषाऽऽतुरा निदाघार्ता तस्यामम्बु पपौ तु सा ॥ पिबन्तीं वारयित्वा तामसौ तोयं स्वयं पपौ ॥३०॥ कर्मणस्तस्य पापेन स पुत्ररहितो नृपः ॥ पूर्वजन्मकृतात्पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥३१॥ जना ऊचुः ॥ पुण्यात्पापं क्षयं याति पुराणे श्रूयते मुने ॥ पुण्योपदेशं कथय येन पापक्षयो भवेत् ॥३२॥ यथा भवत्प्रसादेन पुत्रोऽस्य भविता तथा। लोमश उवाच ॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदा नाम विश्रुता ॥३३॥ एकादशी तिथिश्चास्ति कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ॥ यथविधि यथान्यायं यथोक्तं जागरान्वितम् ॥३४॥ तस्याः पुण्यं सुविमलं ददतां नृपतेर्जनाः ॥ एवं कृते सुनिय्तं राज्ञः पुत्रो भविष्यति ॥३५॥ श्रुत्वैतल्लो-

पानी पीने लगी। तब यह वैश्य उस गाय को पानी पीने से हटाकर आप जल पीने लगा। उस कर्म के कारण यह राजा पुत्र रहित हो गया। पूर्व जन्म के किये गये अन्य शुभ कर्मों के कारण इसने अकंटक राज्य प्राप्त किया है। प्रजावर्ग ने कहा, हे मुनिराज, पुण्य से पाप का क्षय होता है, ऐसा सुना गया है। इसलिये ऐसा पुण्य कार्य करने का उपदेश दें जिससे पूर्व कृत पाप का नाश हो और पुत्र की प्राप्ति हो। आप की कृपा से राजा को पुत्र की प्राप्ति हो सके। महर्षि लोमश बोले, श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में पुत्रदा नाम की एकादशी होती है। हे प्रजाजनों, तुम सब लोग यथा विधि जागरण समेत उस व्रत को करो। उस व्रत का पुण्य फल राजा को प्रदान करो। ऐसा करने पर राजा को पुत्र की प्रासि अवश्य होगी। महर्षि लोमश का यह वचन सुनकर आनन्द से प्रफुल्लित सब लोग

मशवचस्तं प्रणम्य द्विजोत्तमम् ॥ प्रजग्मुः स्वगृहात्सर्वे हर्षोत्फुल्लविलोचनाः ॥३६ ॥ श्रावणं तु समासाद्य स्मृत्वा लोमशभाषितम् ॥ राज्ञा सह व्रतं चक्रुः सर्वे श्रद्धासमन्विताः ॥३७ ॥ द्वादशी-दिवसे पुण्यं ददुर्नृपतये जनाः ॥ दत्ते पुण्ये यथा राज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥३८ ॥ प्राप्तके प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥ एवमेषा नृपश्रेष्ठ पुत्रदा नाम विश्रुता ॥३९ ॥ कर्त्तव्या सुखमिच्छद्भिरिह लोके परत्र च ॥४० ॥ श्रुत्वा माहात्म्यमेतस्याः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इह पुत्रसुखं प्राप्य परत्र स्वर्गतिर्भवेत् ॥४१ ॥

अपने घरों को वापिस आ गये। श्रावण मास के आने पर महर्षि के वचन के अनुसार व्रत किया। रात्रि को जागरण कर द्वादशी के दिन व्रत का पारणा किया और वह पुण्य सभी ने राजा को समर्पित कर दिया। उस पुण्य के प्रभाव से रानी ने गर्भ को धारण किया और प्रसव काल में तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। हे राजाओं में श्रेष्ठ, इस प्रकार पुत्रदा नाम से विख्यात इस एकादशी का व्रत करने से लोक एवं परलोक में सुख की प्राप्ति होती है। व्यक्ति सब पापों से छूट कर स्वर्ग-गति को प्राप्त करता है।

श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

१९. भादों कृष्णपक्ष अजा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथयस्व जनार्दन ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणुष्वैकमना राजन्कथयिष्यामि विस्तरात्॥ अजानाम्नीति विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥२ ॥ पूजयित्वा हृषीकेशं व्रतं तस्याः करोति यः॥ पापानि तस्य नश्यन्ति व्रतस्य श्रवणादपि ॥३ ॥ नातः परतरा राजंल्लोकद्वयहितावहा ॥ सत्यमुक्तं मया ह्येतत्सत्यं भाषितं मम ॥४ ॥ हरिश्चन्द्र इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ॥ चक्रवर्ती सत्यसन्धः समस्तस्य भुवः पति ॥५ ॥ कस्यापि कर्मणो योगाद्राज्यभ्रष्टो बभूव सः॥ विक्रीय वनितां पुत्रान्स चकारात्मविक्रयम् ॥६ ॥ पुल्कसस्य च दासत्वं गतो राजा स पुण्यकृत् ॥ सत्यमालम्व्य

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का क्या नाम है, कृपा करके कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, इस पक्ष की एकादशी का नाम अजा है जो सब पापों का नाश करने वाली है। इसदिन ऋषीकेश भगवान् की पूजा करनी चाहिये। दोनों लोकों में हित करने वाली इस से परे कोई नहीं है। पहले समय में हरिश्चन्द्र नाम के राजा हो गये हैं। वे चक्रवर्ती थे, सत् प्रतिज्ञा वाले थे। कर्म योग से वह राज्य भ्रष्ट हो गये। स्त्री और पुत्र को बेचकर स्वयं भी बिक गये। वह पुण्यात्मा राजा चाण्डाल

राजेन्द्रं मृतचैलापहारकः ॥७॥ सोऽभवन्नृपतिश्रेष्ठो न सत्याच्चलितस्तथा॥ एवं गतस्य नृपतेर्बहवो वत्सरा गताः ॥८॥ ततश्चिन्तापरो राजा बभूवात्यन्तदुःखितः॥ किं करोमि क्व गच्छामि निष्कृतिर्मे कथं भवेत्॥९॥ इति चिन्तयतस्तस्य मग्नस्य वृजिनार्णवे॥ आजगाम मुनिः कश्चिज्ज्ञात्वा राजानमातुरम्॥१०॥ परोपकरणार्थाय निर्मितो ब्रह्मणा द्विजः। स तं दृशं द्विजवरं ननाम नृपसत्तमः॥११॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा गौतमस्याग्रतः स्थितः॥ कथयामास वृत्तान्तमात्मनो दुःख संयुतम्॥१२॥ श्रुत्वा नृपतिवाक्यानि गौतमो विस्मयान्वितः॥ उपदेशं नृपतये व्रतस्यास्य मुनिर्ददौ॥१३॥ मासि भाद्रपदे राजन् कृष्णपक्षे तु शोभना॥ एकादशी समायाता अजा नाम्न्यतिपुण्यदा॥१४॥ तस्याः कुरु व्रतं राजन् पापनाशो भविष्यति॥ तव

के दास हो गये। हे राजन्, सत्य को धारण करके मृत व्यक्ति के कफन को लेने से वह श्रेष्ठ राजा इस पर भी चलायमान नहीं हुए, इस कार्य को करते हुए राजा को बहुत समय बीत गया। राजा चिन्ता में पड़ गये, क्या करूं, कहां जाऊँ, मेरा उद्धार कैसे हो, पाप रूपी समुद्र में डूबे हुये वह राजा चिन्तन करने लगा। चिन्ता से व्याकुल राजा को जान गौतम मुनि आए। परोपकार करने से ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को बनाया था। उस द्विज श्रेष्ठ को देखकर राजा ने गौतम मुनि को प्रणाम किया। हाथ जोड़कर खड़े हुए राजा ने अपने दुःख के वृत्तान्त को कहा। राजा के वचन सुनकर गौतम विस्मय से युक्त हो गये। उस गौतम मुनि ने राजा को

भाग्यवशादेषा सप्तमेऽह्नि समागता ॥१५॥ उपवासपरो भूत्वा रात्रौ जागरणं कुरु ॥ एवं तस्याः व्रते चीर्णे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१६॥ तव पुण्यप्रभावेण चागतोऽहं नृपोत्तम ॥ इत्येंव कथयित्वा तु मुनिरन्तरधीयत ॥१७॥ मुनिवाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम्। कृते तस्मिन् व्रते राज्ञः पापस्यान्तोऽभवत्क्षणात् ॥१८॥ श्रूयतां राजशार्दूल प्रभावोऽस्य व्रतस्य च॥ यद्दुःखं बहुभिर्वर्षैर्भोक्तव्यं तत्क्षयो भवेत् ॥१९॥ निस्तीर्णदुःखो राजाऽसीद्व्रतस्यास्य प्रभावतः॥ पन्त्या सह समायोगं पुत्रजीवनमाप सः ॥२०॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षणमभूद्दिवः॥ एकादश्याः प्रभावेण प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥२१॥ स्वर्गं लेभे हरिश्चन्द्रः सपुरः सपरिच्छदः॥

इस एकादशी के व्रत करने को कहा। हे राजन्, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अजानाम की एकादशी को करो। आप के पाप कर्मों का नाश हो जाएगा। आज से सातवें दिन वह दिन आएगा। उपवास में तत्पर रहकर रात्रि में जागरण करो। हे राजन्, तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से ही मैं यहां आया हूं। ऐसा कहकर मुनिवर चले गये। मुनि के उपदेश से राजा ने विधि विधान से श्रद्धापूर्वक व्रत को किया। उस व्रत के प्रभाव से राजा के पापों का तुरन्त क्षय हो गया। हे राजन्, इस व्रत के प्रभाव को सुनिये। इस व्रत के प्रभाव से राजा दुःख से पार हो गये। स्त्री द्वारा श्मशान में लाया गया पुत्र जीवित हो गया। आकाश में दुन्दुभियां बजने लगीं। फूलों की वर्षा हुई। राजा ने अपना राज्य पुनः प्राप्त किया। राजा ने अपने पुरवासियों समेत

ईदृग्विधं व्रतं राजन् ये कुर्वन्ति द्विजोत्तमाः ॥२२॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्त्रिदिवं यान्ति ते ध्रुवम्॥ पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नश्वमेधफलं लभेत्॥२३॥

एवं परिवार समेत स्वर्ग को प्राप्त किया। हे राजन्, ऐसे उत्तम व्रत को जो मनुष्य करते हैं, निश्चय से वे स्वर्ग को जाते हैं।

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अजा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२०. भादों शुक्लपक्ष परिवर्तिनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ नभस्यसितपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत्॥ को देवः विधिस्तस्याः किं पुण्यं च वदस्व नः॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ कथयामि महापुण्यां स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम्॥ वामनैकादशीं राजन्सर्वपापहरां पराम्॥२॥ इमामेव जयन्त्याख्यां प्राहुरेकादशी नृप॥ तस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥३॥ वाजपेयफ़लं प्रोक्तं नातः परतरं नृणाम्॥ पापिनां

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है। उसमें किस देवता का पूजन होता है, और उसकी क्या विधि है। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, महापुराणों को देने वाली, स्वर्ग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाली, सब पापों का हरण करने वाली वामन नाम की एकादशी होती है। हे राजन्,

पापशमनं जयन्तीव्रतमुत्तमम् ।।४ ।। नातः परतरा राजन्न वै मोक्षप्रदायिनी ।। एतस्मात् कारणा-द्राजन् कर्तव्या गतिमिच्छता ।।५ ।। वैष्णवैर्मम भक्तैस्तु मनुजैर्मत्परायणैः ।। नभस्ये वामनो यैस्तु पूजितस्तैर्जगत्त्रयम् ।।६ ।। पूजितं नात्र सन्देहस्ते यान्ति हरिसन्निधिम् ।। वामनः पूजितो येन कमलैः कमलेक्षणः ।।७ ।। नभस्यसितपक्षे तु जयन्त्येकादशीदिने ।। तेनार्चितं जगत्सर्वं त्रयो देवाः सनातनाः ।।८ ।। एतस्मात्कारणाद्राजन कर्त्तव्यो हरिवासरः ।। अस्मिन् कृते न कर्त्तव्यं किंचिदस्ति जगत्त्रये ।।९ ।। अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यंगपरिवर्त्तनम् ।। तस्मादेनां जनाः सर्वे वदन्ति परिवर्तिनीम् ।।१० ।। युधिष्ठिर उवाच ।। संशयोऽस्ति महान्मह्यं श्रूयतां च जनार्दन ।। कथं सुप्तोऽसि देवेश कथं यास्यंगवर्तनम् ।।११ ।। किमर्थं देवदेवेश बलिर्बद्धस्त्वयाऽसुरः । सन्तुष्टा

इसे जयन्ती एकादशी भी कहते हैं। इससे श्रवण मात्र से ही सब पापों का क्षय हो जाता है। मेरी भक्ति में लगे हुए वैष्णव लोगों द्वारा भाद्रपद मास में वामन भगवान् का पूजन करना तीनों जगत के पूजन के समान है। कमल के समान नेत्र वाले भगवान् वामन का कमलों द्वारा पूजन करना चाहिये। इस पवित्र जयन्ती एकादशी का व्रत जिसने किया है, उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों की पूजा की है। इसलिये हरिवासर का सेवन अवश्य करना चाहिये। इसी एकादशी के दिन शेष शायी भगवान् विष्णु सोये हुये करवट लेते हैं। इसलिये इसे परिवर्तिनी एकादशी भी कहते हैं। युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, मुझे इसमें बहुत संशय है। देवदेवेश भगवान् विष्णु कैसे

पृथिवी देवाः किमकुर्वञ्जनार्दन ॥१२॥ को विधिः किं व्रतं चैव चातुर्मास्यमुपासताम् ॥ त्वयि सुप्ते जगन्नाथ किं कुर्वन्ति जनाः प्रभो ॥१३॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि सशयं हर मे प्रभो ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रृणुष्व राजशार्दूल कथां पापहरां पराम् ॥१४॥ बलिर्वै दानवः पूर्वमासीत् त्रेतायुगे नृप ॥ अपूजयच्च मां नित्यं मद्‌भक्तो मत्परायणः ॥१५॥ जपैस्तु विविधैः सूक्तैर्यजते मां स नित्यशः ॥ द्विजानां पूजको नित्यं यज्ञकर्मकृताशयः ॥१६॥ परं त्विन्द्रकृतद्वेषो देवलोकमजी- जयत् ॥ मद्दत्तमिन्द्रलोकं वै जितं तेन महात्मना ॥१७॥ विलोक्य च ततः सर्वे देवाः संहत्य मन्त्ररग्न् ॥ सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं देवं विज्ञापितुं एभुम् ॥१८॥ ततश्च देवऋषिभिः साकमिन्द्रो गतः प्रभुम् ॥ शिरसा ह्यवनिं गत्वा स्तुतः इन्द्रेण सूक्तिभिः ॥१९॥ गुरुणा दैवतैः सार्द्धं बहुधा

सोते हैं बलि नाम के असुर को किस लिये बान्धा गया। पृथ्वी एवं देवता लोग किस प्रकार सन्तुष्ट हुए। जगन्नाथ, देव, देवेश के सोने पर संसार के लोग क्या करते हैं। चातुर्मास्य के व्रत का क्या विधान है, यह सब कुछ विस्तार से कहिये और मेरे संशय को दूर करिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजशार्दूल, इस पुरातन कथा को सुनो। पहले त्रेता युग में बलि नाम का दानव हुआ था, वह विष्णु का भक्त था, प्रतिदिन विष्णु का पूजन करता था, अनेक प्रकार के स्तोत्रों से प्रभु का स्मरण करता था, प्रतिदिन जप भी करता था। परन्तु उसने इन्द्र से द्वेष करके देवलोक को जीत लिया। पराजित देवता आपस में विचार करने लगे कि इस कष्ट से कैसे निवृत्ति हो।

पूजितो ह्यहम् ॥ ततो वामनरूपेण ह्यवतीर्णश्च पञ्चमे ॥२० ॥ अत्युग्ररूपेण तदा सर्वं ब्रह्माण्ड-रूपिणा ॥ बालकेन जितो वै स सत्यमालम्व्य तस्थिवान् ॥२१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ त्वया वामनरूपेण सोऽसुरश्च जितः कथम् ॥ एतत्कथय देवेश मह्यं भक्ताय विस्तरात् ॥२२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मया बालेन स बलिः प्रार्थितो बटुरूपिणा ॥ पदत्रयमितां भूमिं देहि मे भुवनत्रयम् ॥२३ ॥ दत्ते भवति ते राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्तश्च मया राजा दत्तवांस्त्रिपदां भुवम् ॥२४ ॥ संकल्प-मात्राद्ववृधे देहस्त्रैविक्रमः परम् ॥ भूर्लोके तु कृतौ पादौ भुवर्लोके तु जानुनी ॥२५ ॥ स्वर्लोके तु कटिं न्यस्य महर्लोके तथोदरम् ॥ जनलोके तु हृदयं तपलोके च कण्ठकम् ॥२६ ॥ सत्यलोके मुखं स्थाप्य उत्तमांगं तथोर्ध्वतः ॥ चन्द्रसूर्यग्रहाश्चैव भगणो योगसंयुतः ॥२७ ॥ सेन्द्राश्चैव तथा

विचार करके इन्द्र सहित सभी देवता विष्णु के नजदीक गये। भूमि पर मस्तक झुकाकर इन्द्र सूक्तों के द्वारा स्तुति करने लगा। बृहस्पति सहित सभी देवताओं ने विष्णु की स्तुति की, जिससे विष्णु ने वामन के रूप में पांचवां अवतार लिया। तो उस वामन रूप से विष्णु ने बलि को जीत लिया। युधिष्ठिर बोले, हे देवेश, वामन रूप द्वारा वह असुर कैसे जीता गया, वह मुझ से विस्तार से कहो। श्री कृष्ण बोले, ब्रह्मचारी रूप बालक द्वारा प्रार्थना की गई कि तीन पग प्रमाण भूमि मुझे दो। तीन भुवनों के आप स्वामी हैं, हे बलि राजन्, उसमें से तीन पग भूमि बहुत ही कम है। जिसे देने से तुझे कठिनाई नहीं होगी। हे राजन्, वह राजा बलि मुझे तीन पग भूमि

देवा नागाः शेषादयः परे ॥ स्तुवन्तो देवसंभूतैः सूक्तैश्च विविधैस्तु माम् ॥२८॥ करे गृहीत्वा तु बलिमब्रुवं वचनं तदा। एकेन पूरिता पृथिवी द्वितीयेन त्रिविष्टपम् ॥२९॥ तृतीयस्य तु पादस्य स्थानं देहि ममानघ॥ एवमुक्ते मया सोऽपि मस्तकं दत्तवान्बलिः ॥३०॥ ततो वै मस्तके ह्येकं पदं दत्तं मया तदा॥ क्षिप्ता रसातले राजन् दानवो मम पूजकः ॥३१॥ विनयावनतं दृष्ट्वा प्रसन्नोऽस्मि जनार्दनः॥ बले वसामि सततं सन्निधौ तव मानद ॥३२॥ इत्यवोचं महाभागं बलिं वैरोचनं तदा॥ नभस्य शुक्लपक्षे तु परिवर्तिनि वासरे ॥३३॥ ममैका तत्र मूर्तिश्च बलिमाश्रित्य तिष्ठति॥ द्वितीया शेषपृष्ठे वै क्षीराब्धौ सागरोत्तमे ॥३४॥ सुप्यते च हृषीकेशो यावत् चायाति कार्तिकी॥ तावद्भवति तत्पुण्यं सर्वपुण्योत्तमोत्तमम् ॥३५॥ एतस्मात्कारणाद्रा-

देने को तैयार हो गया। संकल्प मात्र से ही वह ब्रह्मचारी रूप वामन त्रिविक्रम देव की देह अतिविस्तृत हो गई। भूलोक में पांव भुवः लोक में जांघ, स्वर्ग लोक में कटि, महर्लोक में उदर, जन लोक में हृदय और तपोलोक में कण्ठ, सत्य लोक में मुख को रख करके शिर को स्थापित किया। उस समय चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और इन्द्र समेत सभी देवता, शेष नाग आदि वेद सूक्तों से उस त्रिविक्रम भगवान की स्तुति करने लगे। तब उस वामन रूप ने कहा कि एक पग में मैंने पृथ्वी, एक पग में स्वर्ग को नाप लिया है, हे निष्पाप आप तीसरे पग के लिये स्थान दो। ऐसा कहने पर राजा बलि ने अपना मस्तक झुका दिया। उसके बाद मैंने तीसरा पग बलि के सिर पर

जन्कर्तव्या च प्रयत्नतः॥ एकादशी महापुण्या पवित्रा पापहारिणी ॥३६॥ अस्यां प्रसुप्तो भगवानेत्यंगपरिवर्तनम्॥ एतस्यां पूजयेद्देवं त्रैलोक्यस्य पितामहम्॥३७॥ दधिदानं प्रकर्तव्यं रौप्यतण्डुलसंयुक्तमम्॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः॥३८॥ एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्यां व्रतं शुभम्॥ सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥३९॥ स देवलोकं सम्प्राप्य भ्राजते चन्द्रमा यथा। शृणुयाच्चैव यो मर्त्यः कथां पापहरां पराम्॥ अश्वमेधसहस्त्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥४०॥

रखा और उसे पाताल पहुंचा दिया। उस राजा बलि की विनम्रता देखकर, त्रिविक्रम देव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बलि से कहा कि हे धर्मात्मा मैं निरन्तर तुम्हारे सान्निध्य में रहूंगा। तुम इस जया नाम की एकादशी का सेवन करो, तुम्हारा कल्याण होगा। वहां पाताल में भगवान् विष्णु की एक मूर्ति पाताल में बलि का आश्रय लिये स्थित है, एक शेषशायी पर क्षीर सागर में स्थित है। जब तक कार्तिक मास आता है, तब तक हृषीकेश शयन करते हैं। उनके शयन के समय में जो पुण्य होता है, वह सब पुण्यों में उत्तम है। हे राजन् इस कारण से महापुण्यवती पवित्र एवं पापों को हरण करने वाली इस एकादशी का सेवन करना चाहिये। इस दिन शेषशायी विष्णु भगवान् करवट लेते हैं। इसमें तीनों लोकों के पितामह देव देव का पूजन करना चाहिये। दही, चावल, चान्दी का दान करना चाहिये। रात्रि में जागरण करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। भुक्ति, मुक्ति को देने वाला यह हरिवासर अत्यन्त फलप्रद है।

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की परिवर्तिनी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२१. आश्विन कृष्णपक्ष इन्दिरा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ कथयस्व प्रसादेन ममाग्रे मधुसूदन॥ आश्विने कृष्णपक्षे तु किंनामैकादशी भवेत् ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ आश्विनस्यासिते पक्षे इन्दिरा नाम नामतः॥ तस्याः व्रतप्रभावेण महापापं प्रणश्यति ॥२ ॥ अधोयोनिगतानां च पितृणां गतिदायिनीम्॥ शृणुष्वावहितो राजन् कथां पापहरां पराम् ॥३ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत्॥ पुरा कृतयुगे राजा बभूव रिपुसूदनः ॥४॥ इन्द्रसेन इति ख्यातः पुरीं माहिष्मतीं प्रति॥ स राज्यं पालयमास धर्मेण यशसाऽन्वितः ॥५ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः॥ माहिष्मत्यधिपो राजा विष्णु-

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसे कहें। श्रीकृष्ण बोले, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में इन्दिरा नाम की एकादशी होती है। अधोयोनि में गये हुए पितरों को गति प्रदान करने वाली, पापों का नाश करने वाली, मोक्ष को देने वाली कथा को कहता हूं, सावधान होकर सुनो. पहले समय में माहिष्मति पुरी में शत्रुओं को दण्ड देने वाले इन्द्रसेन नाम के प्रसिद्ध राजा राज्य करते थे। यश से युक्त वह राजा धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करते थे। पुत्र, पौत्रों से युक्त, धनधान्य से सम्पन्न वह माहिष्मती का स्वामी राजा विष्णु भक्ति में परायण था। मुक्ति को देने वाले गोविन्द के नाम का जप किया करता था। वह राजा अध्यात्म विद्या का चिन्तन करता था। जप-तप में अपना अधिक समय यापन करता था।

भक्तिपरायणः ॥६ ॥ जपन् गोविन्दनामानि मुक्तिदानि नराधिपः ॥ कालं नयति विधिवदध्यात्मस्य विचिन्तकः ॥७॥ एकस्मिन्दिवसे राज्ञि सुखासीने सभागते ॥ अवतीर्यागमद्धीमानम्बरान्नारदो मुनिः ॥८ ॥ तमागतमधिप्रेक्ष्य प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ पूजयित्वाऽर्घविधिना चासने संन्यवेशयत् ॥९ ॥ सुखोपविष्टः स मुनिः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ कुशलं तव राजेन्द्र सप्तस्वंगेषु वर्तते ॥१० ॥ धर्मे मतिर्वर्तते ते विष्णुभक्तिरतिस्तथा ॥ इति वाक्यं तु देवर्षेः श्रुत्वा राजा तमब्रवीत् ॥११ ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र कुशलं मम ॥ अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥१२ ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे ब्रूह्यागमनकारणम्। इति राज्ञो वचः श्रुत्वा देवर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१३ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल मद्वचो विस्मयप्रदम् ॥

एक दिन सुखपूर्वक सभा में बैठे हुए राजा के समीप नारद मुनि जी आये, मुनि के आने पर राजा ने सिंहासन से उतर कर हाथ जोड़ कर अर्घ विधि से पूजन कर आसन पर बैठाया। सुख से बैठे हुए नारद मुनि उस राजा से बोले, हे राजेन्द्र, तुम्हारे राज्य के सातों अंगों में कुशलता है? तुम्हारी मति धर्म में तो है। तुम भगवान् विष्णु की भक्ति में संलग्न तो हो। देवर्षि नारद के वचनों को सुनकर राजा उनसे बोले, हे मुनि श्रेष्ठ, आपकी कृपा से सब प्रकार से कुशल हैं, आज सब यज्ञों की सफलता आपके दर्शन से सफल हो गयी है। हे विप्रेन्द्र, प्रसन्न होकर अपने आने का कारण कहो। देवर्षि नारद बोले, हे राज शार्दूल, विस्मय को देने वाले मेरे वचनों को

ब्रह्मलोकादहं प्राप्तो यमलोकं नृपोत्तम ॥१४॥ शमनेनार्चितो भक्त्या उपविष्टो वरासने ॥ धर्मशीलः सत्यवांस्तु भास्करिं समुपासते ॥१५॥ बहुपुण्यप्रकर्ता च व्रतवैकल्प दोषतः ॥ सभायां श्राद्धदेवस्य मया दृष्टः पिता तव ॥१६॥ कथितस्तेन सन्देशास्तं निबोध जनेश्वर ॥ इन्द्रसेन इति ख्यातो राजा माहिष्मतीप्रभुः ॥१७॥ तस्याग्रे कथय ब्रह्मन् स्थितं मां यमसन्निधौ ॥ केनापि चान्तरायेण पूर्वजन्मोद्भवेन वै ॥१८॥ स्वर्गं प्रेषय मां पुत्र इन्दिराव्रतदानतः ॥ इत्युक्तोऽहं समायातः समीपं तव पार्थिव ॥१९॥ पितुः स्वर्गतये राजन्निन्दिराव्रतमाचर ॥ तेन व्रतप्रभावेण स्वर्गं यास्यति ते पिता ॥२०॥ राजोवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन्निन्दिराव्रतम् ॥ विधिना केन कर्तव्यं कस्मिन्पक्षे तिथौ तथा ॥२१॥ नारद उवाच ॥ शृणु राजन् हितं वच्मि व्रतस्यास्य

सुनो। मैं ब्रह्म लोक से यम लोक में आया। यमराज द्वारा भक्तिपूर्वक पूजित मैं आसन पर बैठा था, वहां धर्मशील सत्यवान्, यम की उपासना करने वाले, बहुत से पुण्यों को करने वाले तुम्हारे पिता को व्रत के बिगड़ जाने पर होने वाले दोष से यम की सभा में देखा। उन्होंने जो सन्देश दिया है, उसको सुनो। माहिष्मती नगरी का स्वामी राजा इन्द्रसेन है, हे ब्रह्मन्, पूर्व जन्म में हुए विघ्न के प्रमाण से मैं यमराज के समीप स्थित हूं। हे पुत्र इन्दिरा नाम की एकादशी का सेवन करके और उसके पुण्यफल को मुझे प्रदान करके स्वर्ग में भेजो। हे राजन् तुम्हारे पिता द्वारा ऐसा सन्देश दिया गया है। जिस कारण मैं तुम्हारे समीप आया हूं। हे राजन् पिता की

विधिं शुभम् ॥ आश्विनस्यासिते पक्षे दशमीदिवसे शुभे ॥२२॥ प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ ततो मध्याह्नसमये स्नानं कृत्वा बहिर्जले ॥२३॥ पितृणां प्रीतये श्राद्धं कुर्याच्छ्रद्धा-समन्वितः ॥ एकभुक्तं ततः कृत्वा रात्रौ भूमौ शयीत च ॥२४॥ प्रभाते विमले जाते प्राप्ते चैकादशीदिने ॥ मुखप्रक्षालनं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥२५॥ उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्ति-भावतः ॥ अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ॥२६॥ श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ इत्येवं नियमं कृत्वा मध्याह्नसमये तथा ॥२७॥ शालग्रामशिलाग्रे तु श्राद्धं कृत्वा यथाविधिः ॥ भोजयित्वा द्विजाञ्छुद्धान्दक्षिणाभिः सुपूजितान् ॥२८॥ पितृशेषं समाघ्राय गवे

सद्गति के लिए इन्दिरा एकादशी का व्रत करो। राजा बोला, हे महर्षि, मुझे प्रसन्न होकर इन्दिरा एकादशी के व्रत का विधान कहिये, वह व्रत किस प्रकार करना चाहिये। किस मास और किस पक्ष में किस तिथि में होगा। नारद जी बोले, हे राजन्, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में दशमी के दिन श्रद्धा युक्त होकर प्रातः काल स्नान करें, उसके बाद मध्याह्न में स्नान कर जल से बाहर आकर श्रद्धा युक्त होकर पितरों की प्रीति के लिये श्राद्ध करें, उसके बाद भोजन करके रात्रि में भूमि पर शयन करें। दूसरे दिन प्रभात होने पर जब एकादशी का दिन प्राप्त हो, दन्तधावन करके स्नान करके भक्ति भाव से व्रत के नियमों को ग्रहण करें। आज मैं निराहार रहकर सब भोगों से वर्जित रहूंगा। कल प्रातः भोजन करूंगा। हे पुण्डरीकाक्ष, हे अच्युत, तुम मेरे रक्षक हो, इस प्रकार

दद्याद्विचक्षणः ॥ पूजयित्वा हृषीकेशं धूपगन्धादिभिस्तथा ॥२९ ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात्केशवस्य समीपतः ॥ ततः प्रभातसमये संप्राप्ते द्वादशीदिने ॥३० ॥ अर्चयित्वा हरिं भक्त्या भोजयित्वा द्विजानथ ॥ बन्धुदौहित्रपुत्राद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥३१ ॥ अनेन विधिना राजन् कुरु व्रत-मतन्द्रितः ॥ विष्णुलोकं प्रयास्यन्ति पितरस्तव भूपते ॥३२ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिं राजन् मुनिरन्तर-धीयत ॥ यथोक्तविधिना राजा चकार व्रतमुत्तमम् ॥३३ ॥ अन्तःपुरेण सहितः पुत्रभृत्यसमन्वितः ॥ कृते व्रते तु कौन्तेय पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥३४ ॥ तत्पिता गरुडारूढौ जगाम हरिमन्दिरम् ॥ इन्द्र-

नियम करके मध्याह्न समय में शालिग्राम शिला के आगे विधिपूर्वक श्राद्ध करके शुद्ध ब्राह्मण को भोजन करवाकर दक्षिणा दे। श्राद्धीय पिंड को सूंघकर गौ को खिला दें। धूप, दीप, गन्ध, पुष्पों से हृषीकेश भगवान् का पूजन करें। रात्रि में भगवान् की प्रतिमा के समक्ष जागरण करें। उसके बाद द्वादशी के दिन भक्ति पूर्वक हरि का पूजन करें। ब्राह्मण को भोजन करवाकर, परिवार सहित मौन रहकर भोजन करें। हे राजन्, इस विधि से आलस्य रहित होकर व्रत करो। जिससे तुम्हारे पितर प्रसन्न होकर स्वर्ग में जाएंगे। हे राजन्, इस प्रकार महर्षि नारद उस राजा इन्द्रसेन को उपदेश देकर चले गये और उस राजा ने मुनि के कहे हुए नियमों के अनुसार परिवार समेत व्रत किया। राजा के व्रत करने पर आकाश से फूलों की वर्षा हुई। उस राजा के पिता गरुड़ पर सवार होकर विष्णु लोक में चले गये। राजा इन्द्र सेन भी अकंटक राज्य को भोग कर, पुत्र को राज्य प्रदान करके

सेनोऽपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥३५॥ राज्यं निवेश्य तनयं जगाम त्रिदिवं स्वयम् ॥
इन्दिराव्रतमाहात्म्यं तवाग्रे कथितं मया ॥३६॥ पठानच्छ्रवणाच्चास्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ भुक्त्वेह
निखिलान् भोगान् विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥३७॥

स्वर्ग लोक में चले गये। हे राजन्, इस इन्दिरा एकादशी के व्रत के माहात्म्य को मैंने आप से कहा है। इस व्रत को करके मनुष्य सब पापों से छुटकारा पाकर विष्णु लोक में चिरकाल तक निवास करता है।

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की इन्दिरा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२२. आश्विन शुक्लपक्ष पापांकुशा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व प्रसादेन भगवन्मधुसूदन ॥ इषस्य शुक्लपक्षे तु किंनामैकादशी
भवेत् ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ शुक्लपक्षे
चाश्वयुजे भवेदेकादशी तु या ॥२॥ पाशांकुशेति विख्याता सर्वपापहरा परा ॥ पद्मनाभाभिधानं

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन, आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, कृपा करके कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे राजन्, आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में सब प्रकार के पापों को हरण करने वाली पापांकुशा नाम की एकादशी होती है। पद्मनाभ नाम से भगवान् का पूजन करें। सम्पूर्ण वांछित फलों की प्राप्ति

तु पूजयेत्तत्र मानवः ॥३ ॥ सर्वाभीष्टफलप्राप्त्यै स्वर्गमोक्षप्रदं नृणाम् ॥ तपस्तप्त्वा नरास्तीव्रं चिरं सुनियतेन्द्रियः ॥४ ॥ यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुडध्वजम् ॥ कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः ॥५ ॥ न याति नरकं घोरं नत्वा पापहरं हरिम् ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥६ ॥ तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥७ ॥ न तेषां यमलोकश्च नृणां वै जायते क्वचित् ॥ उपोष्यैकादशीमेकां प्रसंगेनापि मानवाः ॥८ ॥ न याति यातनां याम्यां पापं कृत्वाऽतिदारुणम् ॥ वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शिवनिन्दां करोति यः ॥९ ॥ यो निन्देद्वैष्णवं शैवः स याति नरकं ध्रुवम् ॥ अश्वमेध-सहस्राणि राजसूयशतानि च ॥१० ॥ एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ एकादशीसमं

के लिये यह व्रत करना चाहिये। मनुष्य बहुत काल पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर घोर तप को करके जिस फल को प्राप्त करते हैं, वह फल गरुड़ ध्वज भगवान् को नमस्कार करने से प्राप्त हो जाता है। मनुष्य अज्ञानता वश बहुत पापों को करके भी पापों को हरण करने वाले भगवान् हरि को नमस्कार करके घोर नरक में कभी नहीं जाता। पृथ्वी में जो तीर्थ हैं और पवित्र स्थान हैं वे सब विष्णु के नाम के कीर्तन से प्राप्त होते हैं। शार्ङ्गधनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु की शरण में जो जाता है, उस मनुष्य को निश्चय करके कभी यमलोक के दर्शन नहीं होते। जो मनुष्य वैष्णव होकर शिव की निन्दा करता है, शैव होकर विष्णु की निन्दा करता है, वह निश्चय

पुण्यं किञ्चिल्लोके न विद्यते ॥११॥ नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥१२॥ यावन्नोपोष्यते जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम् ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ॥१३॥ नैकादशीसमं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ व्याजेनापि कृता राजन्न दर्शयति भास्करिम् ॥१४॥ स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी॥ सुकलत्रप्रदा ह्येषा धनधान्यप्रदायिनी ॥१५॥ न गंगा न गया राजन्न काशी न च पुष्करम् ॥ न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूप हरेर्दिनात् ॥१६॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दिनम् ॥ अनायासेन भूपाल प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥१७॥ दश वै मातृपक्षे च दश राजेन्द्र पैतृके॥ प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥१८॥ चतुर्भुजा दिव्यरूपा नागारिकृतकेतनाः॥ स्रग्विणः पीतवस्त्राश्च

करके नरक में जाता है। अनेक प्रकार के यज्ञ आदि से भी एकादशी के सेवन का पुण्य अधिक है। जब तक मनुष्य एकादशी का सेवन करके भगवान् पद्मनाभ का पूजन नहीं करता, तब तक वह नरक यातना से नहीं छूटता। हे राजन्, किसी भी कारण से, किसी भी बहाने से यदि एकादशी का व्रत हो जाता है, तब भी वह व्रत पापों के नाश में सहायक हो जाता है। हे राजन्, गंगा, गया, पुष्कर, काशी, कुरुक्षेत्र आदि पुण्य तीर्थ से भी अधिक हरि वासर के दिन का महत्त्व है। इस एकादशी का व्रत करने वाला मनुष्य दस पीढ़ी माता के पक्ष की और दस पिता के पक्ष की और दस स्त्री के पक्ष को तार देता है। वे सब चतुर्भुज, दिव्यरूप, गरुड़ध्वज हो,

प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥१९ ॥ बालत्वे युवाभावे च वृद्धत्वेऽपि नृपोत्तम ॥ उपोष्य द्वादशीं नूनं नैति पापोऽपि दुर्गतिम् ॥२० ॥ पापांकुशामुपोष्यैव आश्विने चासितेतरे ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिलोकं संगच्छति ॥२१ ॥ दत्त्वा हेम तिलान्भूमिं गामन्नमुदकं तथा ॥ उपानद्वस्त्रच्छत्रादि न पश्यति यमं नरः ॥२२ ॥ अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दरिद्रोऽपि नृपोत्तम ॥ समाचरन्यथाशक्ति स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥२३ ॥ तडागारामसौधानां सत्राणां पुण्यकर्मणाम् ॥ कर्तारो नैव पश्यन्ति धीरास्ताः यमयातनाम् ॥२४ ॥ दीर्घायुषो धनाद्याश्च कुलीना रोगवर्जिताः ॥ दृश्यन्ते

माला और पीतांबर धारण किये हुए हरि के लोक को जाते हैं। विन्ध्य पर्वत पर महा कणेर क्रोधन नाम का एक बहेलिया रहता था। जीवन भर उसने पाप ही किये। उसकी मृत्यु के निकट आने पर यम के दूतों का भय उसे सताने लगा। जीवन भर उसने कुकर्म करके पापों को ही बांधा था। कोई पुण्य कार्य जीवन में कर नहीं पाया। वह सोचने लगा कि इन पापों से छुटकारा कैसे मिलेगा। सोचते-सोचते किसी सन्त का आश्रय उसे प्राप्त हुआ, उस सन्त की प्रेरणा से उसने इस एकादशी का व्रत किया। जिससे उसे यम यातना नहीं भोगनी पड़ी। हे राजन्, एकादशी का व्रत करके पापी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस दिन, सुवर्ण, तिल, गौ, अन्न, जल, जूता, छाता आदि का दान करके यम को नहीं देखता। जिनका जीवन पुण्यहीन होता है, वह लौहार की धौंकनी के समान श्वास को लेता है। हे नरोत्तम, चाहे दरिद्र हो, परन्तु शक्ति के अनुसार स्नान, दान आदि क्रियाओं को

मानवाः लोके पुण्यकर्तारः ईदृशाः ॥२५ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम् ॥ आरोहन्ति दिवं धर्मैर्नात्र कार्या विचारणा ॥२६ ॥ इति वै कथितं राजन्यत् पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥२७ ॥

करता हुआ मनुष्य जीवन को सफल बनाए। अधर्म से मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होते हैं और धर्म से स्वर्ग को जाते हैं, यह सत्य है।

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की पापांकुशा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२३. कार्तिक कृष्णपक्ष रमा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्वप्रसादेन मम स्नेहाज्जनार्दन ॥ कार्तिकस्यासिते पक्षे किंनामैकादशी भवेत् ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल कथयामि तवाग्रतः ॥ कार्तिके कृष्णपक्षे तु रमा नाम्नी सुशोभना ॥२ ॥ एकादशी समाख्याता महापापहरा परा ॥ अस्याः प्रसंगतो राजन्माहात्म्यं प्रवदामि ते ॥३ ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो बभूव नृपतिः पुरा ॥ देवेन्द्रेण

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, कृपा करके कहिये। श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्, कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में रमा नाम की एकादशी होती है। यह एकादशी महापातकों को हरण करने में अत्युत्कृष्ट है। इसके माहात्म्य को सुनो, पहले मुचुकुन्द नाम से प्रसिद्ध राजा हो

समं यस्य मित्रत्वमभवन्नृप ॥४॥ यमेन वरुणेनैव कुबेरेण समं तथा। विभीषणेन चैतस्य सखित्वमभवत्सह ॥५॥ विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा ॥ तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहतकण्टकम् ॥६॥ बभूव दुहिता गेहे चन्द्रभागा सरिद्वरा ॥ शोभनाय च सा दत्ता चन्द्रसेनसुताय वै ॥७॥ स कदाचित्तसमायातः श्वशुरस्य गृहे नृप ॥ एकादशीव्रतमिदं समायातं सुपुण्यदम् ॥८॥ समागते व्रतदिने चन्द्रभागा त्वचिन्तयत् ॥ किं भविष्यति देवेश मम भर्ताऽतिदुर्बलः ॥९॥ क्षुधां न सहते सोऽपि पिता चैवोग्रशासनः ॥ पटहस्ताड्यते यस्य सम्प्राप्ते दशमीदिने ॥१०॥ न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने ॥ श्रुत्वा पटहनिर्घोषं शोभनस्त-

गये हैं। उस नृप के इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, विभीषण के साथ मित्रता के सम्बन्ध थे। यह राजा सत्यप्रतिज्ञा वाला था। निष्कंटक राज्य करने वाले उस राजा के श्रेष्ठ चन्द्रभागा पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। उसका विवाह चन्द्रसेन के पुत्र शोभन के साथ हुआ। वह शोभन किसी समय अपने श्वसुर के घर आया। व्रत का दिन आने पर चन्द्रभागा को चिन्ता हुई कि मेरा पति बहुत दुर्बल है, वह व्रत को कैसे करेगा। वह भूख को सहन नहीं कर सकता। पिता का शासन बहुत सख्त है। दशमी का दिन जब आया, ढोल बजने लगा कि हरिवासर के दिन भोजन नहीं खाना चाहिये। ऐसे ढिंढौरा सारे नगर में हो गया। तब चन्द्रभागा के पति ने कहा हे शोभने, अब क्या करना चाहिए, अपना परामर्श दो। जिसके करने से जीवन का नाश न हो। हे स्वामी, मेरे पिता के राज्य में

दब्रवीत्प्रियाम् ॥११॥ किं कर्त्तव्यं मया कान्ते देहि शिक्षां सुशोभने॥ कृतेन येन मे सम्यग्जीवितं न विनश्यति ॥१२॥ चन्द्रभागोवाच—मत्पितुर्वेश्मनि विभो भोक्तव्यं नैव केनचित्॥ गजैरश्वैस्तथा चान्यैरन्यैः पशुभिरेव च ॥१३॥ तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने॥ मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे ॥१४॥ यदि त्वं भोक्ष्यसे कान्त ततो गेहात्प्रयास्यताम्॥ एवं विचार्य मनसा सुदृढं मानसं कुरु ॥१५॥ शोभन उवाच॥ सत्यमेतत्त्वयैवोक्तं करिष्येऽहमुपोषणम्॥ दैवेन विहितं यद्वै तत्तथैव भविष्यति ॥१६॥ इति दिष्टे मतिं कृत्वा चकार व्रतमुत्तमम्॥ क्षुत्तृषापीडिततनुः स बभूवाति दुःखितः ॥१७॥ इति चिन्तयतस्तस्य ह्यादित्यो-

कोई भी पुरुष भोजन नहीं करता, पशु, हाथी, घोड़े आदि भी भोजन नहीं करेंगे। घास को, अन्न को कोई ग्रहण नहीं करेगा, न ही कोई जल पी सकेगा। मनुष्य हरिवासर के दिन कैसे खएंगे? तुम भोजन करना चाहते हो, तो घर से पलायन कर जाओ, इस प्रकार विचार करके मन को सुदृढ़ बनाओ। शोभन बोला, हे शोभने, तुमने सत्य कहा है, मैं व्रत ही करूंगा, विधाता ने जैसे लिखा है, वैसा ही होगा। ऐसा निश्चय करके उसने व्रत किया। भूख प्यास से व्याकुल वह शोभन बहुत दुःखी हो गया। उसी सोच विचार में सूर्य अस्ताचल को चले गया। हे राजन्, वह रात्रि वैष्णवों के लिये प्रसन्नता को देने वाली हो जाती है। मगर उस शोभन को वह पीड़ा देने वाली रात्रि बन गई। दूसरे दिन सूर्य के उदय के समय शोभन मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब राजा ने उसका राजसी ढंग

ऽस्तमयाद्गिरिम् ॥ वैष्णवानां नराणां स निशा हर्षविवर्द्धिनी ॥१८॥ हरिपूजारतानां च जागरासक्तचेतसाम् ॥ वभूव नृपशार्दूलशोभनस्यातिदुःसहा ॥१९॥ रवेरुदयवेलायां शोभनः पञ्चतां गतः ॥ दाहयामास राजा तं राजयोग्यैश्च दारुभिः ॥२०॥ चन्द्रभागा नात्मदेहं ददाह पितृवारिता ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं तस्य तस्थौ जनकवेश्मनि ॥२१॥ शोभनेन नृपश्रेष्ठ रमाव्रत प्रभावतः ॥ प्राप्तं देवपुरं रम्यं मन्दराचलसानुनि ॥२२॥ अनुत्तममनाधृष्यमसंख्येयगुणान्वितम् ॥ हेमस्तंभमयैः सौधे रत्न वैडूर्यमण्डितैः ॥२३॥ स्फाटिकैर्विविधाकरैर्विचित्रैरुपशोभितम् ॥ सिंहासनसमारूढः सुश्वेतच्छत्रचामरः ॥२४॥ किरीट कुण्डलयुते हारकेयूरभूषितः ॥ स्तूय-

से, चन्दन आदि की लकड़ियों से उस शोभन का दाह संस्कार कर दिया। पिता के द्वारा रोके जाने पर चन्द्रभागा ने पति के साथ अपना दाह नहीं किया। उस शोभन का प्रेतकृत्य करके वह चन्द्रभागा पिता के घर में ही रहने लग गई। हे नृप श्रेष्ठ, उस रमा एकादशी के व्रत के प्रभाव से उस शोभन ने मन्दराचलपर देवपुरी को प्राप्त किया। हे राजन्, असंख्य गुणों से युक्त, रत्न और वैदूर्य मणियों से जड़ा हुआ वह देव पुरी का महल था। उस देव पुरी को कोई भी जीतने में समर्थ नहीं था। नाना प्रकार के सांसारिक मणियों से सुशोभित तथा सुवर्ण के खम्भों से वह महल सुशोभित था। उस सुन्दर महल में सिंहासन पर विराजमान, श्वेत छत्र से युक्त बहुत सुन्दर प्रतीत हो रहा था। दासियां चंवर झुला रही थीं। माथे पर किरीट थे। कानों में कुण्डल थे, बाजू केयूर से

मानश्च गन्धर्वैरप्सरोगणसेवितः ॥२५॥ शोभनः शोभते तत्र देवराडपरो यथा॥ सोमशर्मेति विख्यातो मुचुकुन्दपुरे वसन्॥ तीर्थयात्राप्रसंगेन भ्रमन्विप्रो ददर्श तम्॥२६॥ नृपजामातरं ज्ञात्वा तत्समीपं जगाम सः॥ आसनादुत्थितः शीघ्रं नमश्चते द्विजोत्तमम्॥२७॥ चकार कुशल-प्रश्नं श्वशुरस्य नृपस्य च॥ कांतायाश्चन्द्रभागायास्तथैव नगरस्य च॥२८॥ सोमशर्मोवाच॥ कुशलं वर्तते राजञ्छ्वशुरस्य गृहे तव॥ चन्द्रभागा कुशलिनी सर्वतः कुशलं पुरे॥२९॥ स्ववृत्तं कथ्यतां राजन्नाश्चर्यं परमं मम। पुरं विचित्रं रुचिरं न दृष्टं केनचित्क्वचित्॥३०॥ एतदाचक्ष्व नृपते कुतः प्राप्तमिदं त्वया॥ शोभन उवाच॥ कार्तिकस्यासिने पक्षे नाम्ना चौकादशी

विभूषित थे, गन्धर्व स्तुति कर रहे थे। वहां पर बैठा हुआ शोभन ऐसा प्रतीत होता था, जैसे दूसरा इन्द्र हो। सोमशर्मा नाम से विख्यात मुचुकुन्द की नगरी में वसने वाले ब्राह्मण ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग से भ्रमण करते हुए शोभन को देखा। राजा का जामाता है, ऐसा जानकर वह ब्राह्मण शोभन के समीप गया। तब शोभन ने शीघ्र उठकर उस ब्राह्मण को प्रणाम किया और अपने श्वसुर का क्षेम पूछा और अपनी पत्नी चन्द्रभागा और नगर का कुशल पूछा। सोम शर्मा बोले, हे राजन्, तुम्हारे श्वसुरघर में कुशल हैं, चन्द्रभागा भी कुशल है और नगर में सब लोग कुशल हैं। हे राजन्, अपना वृत्तान्त कहिये, मुझ को बड़ा आश्चर्य है जैसा पहले किसी ने न देखा हो ऐसा यह विचित्रपुर है। हे राजन्, आपने इस सुन्दर विचित्रपुर को किस प्रकार प्राप्त किया। शोभन बोले,

रमा ॥३१॥ तामुपोष्य मया प्राप्तं द्विजेन्द्र पुरमध्रुवम्। ध्रुवं भवति येनैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ॥३२॥ द्विजेन्द्र उवाच॥ कथमध्रुवमेतद्धि कथं हि भवति ध्रुवम्॥ तत्त्वं कथय राजेन्द्र तत्करिष्यामि नान्यथा ॥३३॥ शोभन उवाच॥ मयैतद्विहितं विप्रं श्रद्धाहीनं व्रतोत्तमम्॥ तेनाहमध्रुवम् मन्ये ध्रुवं भवति तच्छृणु ॥३४॥ मुचुकुन्दस्य दुहिता चन्द्रभागा सुशोभना॥ तस्यै कथय वृत्तान्तं ध्रुवमेतद्भविष्यति ॥३५॥ तच्छ्रुत्वाऽथ द्विजवरस्तस्यै सर्वं न्यवेदयत्॥ श्रुत्वाऽथ सा द्विजवचो विस्मयोत्फुल्लोचना ॥३६॥ प्रत्यक्षमथवा स्वप्नस्त्वयैतत्कथ्यते द्विज॥ सोमशर्मोवाच॥ प्रत्यक्षं पुत्रि ते कान्तो मया दृष्टो महावने ॥३७॥ देवतुल्यमनाधृष्यं दृष्टं तस्य पुरं मया॥ अध्रुवं तेन तत्प्रोक्तं ध्रुवं भवति तत्कुरु ॥३८॥ चन्द्रभागोवाच॥ तत्र मां नय विप्रर्ष

कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में होने वाली रमा एकादशी के व्रत को करके मैने यह अध्रुवपुर पाया है। हे विप्रवर, ऐसा कोई उपाय कहिये, जिससे यह पुर ध्रुव हो जाये। ब्राह्मण बोले, यह कैसे अध्रुव है और कैसे ध्रुव होगा सो आप कहिये। मैं वह उपाय करूंगा। इसमें कोई अन्यथा नहीं। शोभन बोले, हे द्विजोत्तम, मैंने उस व्रत को उस समय श्रद्धा से रहित होकर किया था इसलिये मैं इसको अध्रुंव मानता हूं और जिससे वह ध्रुव होगा, वह सुनिये। मुचुकुन्द राजा की सुशोभना पुत्री चन्द्रभागा है उसको जाकर यह वृत्तान्त कहिये, जिससे यह ध्रुव हो जायेगा। ऐसा सुनकर, तीर्थ यात्रा से लौटने पर उस सोम शर्मा नामक ब्राह्मण ने राजा की पुत्री चन्द्रभागा से यह

पतिदर्शनलालसाम् ॥ आत्मनो व्रतपुण्येन करिष्यामि पुरं ध्रुवम् ॥३९ ॥ आवयोर्द्विज संयोगो यथा भवति तत्कुरु ॥ प्राप्यते हि महत्पुण्यं कृत्वा योगं वियुक्तयोः ॥४० ॥ इति श्रुत्वा सह तया सोमशर्मा जगाम ह ॥ आश्रमं वामदेवस्य मन्दराचलसन्निधौ ॥४१ ॥ वासुदेवोऽशृणोत्सर्वं वृत्तान्तं कथितं तयोः ॥ अभ्यषिंचिञ्चन्द्रभागां वेदमन्त्रैरथोज्ज्वलाम् ॥४२ ॥ ऋषिमन्त्रप्रभावेण विष्णुवासरसेवनात् ॥ दिव्यदेहा बभूवासौ दिव्यां गतिमवाप ह ॥४३ ॥ पत्युः समीपमगमत्प्रहर्षोत्फुल्ललोचना ॥ सहर्षं शोभनोऽतीव दृष्ट्वा कान्तां समागताम् ॥४४ ॥ समाहूय स्वके वामे पार्श्वे तां संन्यवेशयत् ॥ सा चोवाच प्रियं हर्षाच्चन्द्रभागा शुभं वचः ॥४५ ॥ शृणु कान्त हितं वाक्यं यत्पुण्यं विद्यते मयि ॥ अष्टवर्षाधिका जाता यदाऽहं पितृवेश्मनि ॥४६ ॥ मया

वृत्तान्त कहा। ब्राह्मण के वचन को सुनकर चन्द्रभागा के नेत्र प्रसन्नता से खिल गये। उसने कहा, हे द्विजवर तुम यह बात स्वप्न की कर रहे हो या प्रत्यक्ष देखी है। ब्राह्मण ने कहा हे पुत्री, मैंने तुम्हारे पति को महावन में प्रत्यक्ष देखा है। देव तुल्य के समान जिसको कोई जीत न सके, ऐसे पुर को मैंने प्रत्यक्ष देखा है। उन्होंने उस पुर को अध्रुव कहा है, वह ध्रुव हो जाये और ऐसा उपाय करो। चन्द्रभागा बोली, हे विप्रवर, तुम मुझे वहां ले चलो। पति के दर्शन करने की बहुत लालसा है, मैं अपने व्रत के पुण्य से उस पुर को ध्रुव कर दूंगी। दे द्विजवर, जिस उपाय से हम दोनों का संयोग हो जाये, वैसा करो। बिछुड़े हुओं को मिलाना भी पुण्य का काम है। ऐसा सुनकर

ततः प्रभृति च कृतमेकादशी व्रतम् ॥ यथोक्तविधिसंयुक्तं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥४७॥ तेन पुण्यप्रभावेण भविष्यति पुरं ध्रुवम् ॥ सर्वकामसमृद्धं च यावदाभूतसंप्लवम् ॥४८॥ एवं सा नृपशार्दूल रमते पतिना सह ॥ दिव्यभोगा दिव्यरूपा दिव्याभरणभूषिता ॥४९॥ शोभनोऽपि तया सार्द्धं रमते दिव्यविग्रहः ॥ रमाव्रतप्रभावेण मन्दराचलसानुनि ॥५०॥ चिन्तामणिसमा ह्येषा कामधेनुसमाऽथवा ॥ रमाभिधानां नृपते तवाग्रे कथिता मया ॥५१॥ ईदृशं च व्रतं राजन्ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ब्रह्महत्यादिपापानि नाशं यान्ति न संशयः ॥५२॥ एकादशीव्रतानां च

सोमशर्मा उस चन्द्रभागा को साथ लेकर चल पड़ा। उस मन्दराचल पर्वत के समीप वामदेव ऋषि का आश्रम था। वामदेव ऋषि ने उन दोनों द्वारा कहा गया सारा वृत्तान्त सुना। फिर वामदेव ऋषि ने वेदमन्त्रों द्वारा उस उज्ज्वल चन्द्रभागा को अभिषेक करवाया। वामदेव ऋषि के मन्त्रों के प्रभाव से और हरिवासर के सेवन से चन्द्रभागा की दिव्यदेह हो गई। उसने दिव्य गति को प्राप्त किया। शोभन भी पत्नी को आई जानकर बहुत प्रसन्न हुआ। आई हुई चन्द्रभागा को बुलाकर अपनी बाईं ओर बिठाया। वह चन्द्रभागा हर्ष से पति से शुभ वचन बोली। हे कान्त, पिता के घर में आठ वर्ष की अवस्था में अब तक मैंने एकादशी का श्रद्धायुक्त होकर निरन्तर सेवन किया है। उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारा पुर ध्रुव हो जायेगा और कल्पान्त तक कामनाओं से युक्त रहेगा। हे नरशार्दूल, इस प्रकार वह चन्द्रभागा अपने पति के समीप रहते हुए रमण करने लगी। दिव्यदेह

पक्षयोरुभयोरपि ॥ यथा शुक्ला तथा कृष्णा तिथिभेदं न कारयेत् ॥५३ ॥ सेवितैकादशी नृणां भुक्ति मुक्तिप्रदायिनी ॥ धेनुः कृष्णा यथा श्वेता उभयोः सदृशं पयः ॥५४ ॥ तथैव तुल्यफलदं स्मृतमेकादशीव्रतम् ॥ एकादशी व्रतानां च माहात्म्यं श्रृणुयान्नरः ॥५५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥५६ ॥

दिव्य रूप, दिव्य आभूषणों से भूषित, दिव्य विग्रह वाली वह शोभना रमा एकादशी के प्रभाव से मन्दराचल के पर्वत पर पत्नी के साथ विहार करने लगी। हे राजन्, "रमा" यह नाम चिन्तामणि के समान है तथा कामधेनु के समान है, यह वर्णन तुम्हारे आगे मैंने कहा है। हे राजन्, ऐसा उत्तम व्रत जो मनुष्य करते हैं, ब्रह्म हत्या आदि सब पाप उसके नाश को प्राप्त हो जात हैं। इसमें सन्देह नहीं।

कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की रमा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२४. कार्तिक शुक्लपक्ष प्रबोधिनी एकादशी

ब्रह्मोवाच ॥ प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां श्रृणुष्व मुनि सत्तम ॥१ ॥ तावद्गर्जति विप्रेन्द्र गंगा भीगारथी क्षितौ ॥ यावन्नायाति पापघ्नी कार्त्तिके

ब्रह्मा बोले, प्रबोधिनी नाम की एकादशी का माहात्म्य सब पापों का नाश करने वाला है, बुद्धिमान् मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है, पुण्यों को बढ़ाने वाला है। हे मुनि श्रेष्ठ उसे सुनिये। हे विप्रेन्द्र, पृथ्वी में तभी तक

हरिबोधिनी ॥२ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च ॥ यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्ना-याति कार्तिके ॥३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥४ ॥ नारद उवाच ॥ एकभुक्तेन कि पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने ॥ उपवासेन किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकभुक्तेन जन्मोत्थं नक्तेन द्विजनुभर्वम् ॥ सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ॥६ ॥ यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्यं न तु गोचरम् ॥ यदप्यप्रार्थितं पुत्र ददाति हरिबोधिनी ॥७ ॥ मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि तु ॥ एकेनैवोप वासेन दहते पापहारिणी ॥८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रैस्तु यद्दुष्कर्म उपार्जितम् ॥ जागरेण प्रबोधिन्यां दहते तूलराशिवत् ॥९ ॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः ॥ विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥१० ॥ यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः ॥ स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥११ ॥ विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरु मात्रकम् ॥ अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद ॥१२ ॥ सन्ध्याहीने व्रतभ्रष्टे कार्तिके वेदनिन्दके ॥ नैतेषां तिष्ठते देहे धर्मशास्त्र-

भागीरथी गंगा गर्जती हैं, जब तक कार्तिक मास की पापों को नाश करने वाली हरि प्रबोधिनी तिथि नहीं आती। तभी तक समुद्र पर्यन्त के तीर्थ और सरोवर गर्जते हैं, जब तक कार्तिक मास की विष्णु की प्रबोधिनी तिथि नहीं आती। अनेक यज्ञों का फल इस प्रबोधिनी के व्रत से प्राप्त हो जाता है। महर्षि नारद बोले, एक बार भोजन

विदूषके ॥१३॥ परदाररते मूर्खे कृतघ्ने वञ्चके तथा॥ धर्णो न तिष्ठते देहे एतेषामपि देहिनाम् ॥१४॥ ब्राह्मणो वापि शूद्रो वा सेवते परयोषितम्॥ ब्राह्मणी च विशेषेण चाण्डाल-सदृशावुभौ ॥१५॥ सभर्तृकां वा विधवां ब्राह्मणीं ब्राह्मणो यदि॥ सेवते मुनिशार्दूलसान्वयो याति संक्षयम् ॥१६॥ परदाराभिगमनं कुरुते यो द्विजाधमः॥ सन्ततिर्न भवेत्तस्य फलं जन्मार्जितं नहि ॥१७॥ गुरुणा सह विप्रैश्च योऽहंकारेण वर्तते॥ सुकृतं नश्यते शीघ्रं धनं नाप्नोति सन्ततिम् ॥१८॥ आचारभ्रष्टदेहानां वृषलीगामिनां तथा। दुर्जनं सेवमानानां धर्मस्तेषां पराङ्मुखः ॥१९॥ पतितैः सह संगं च तद्गृहे गमनं तथा॥ ये कुर्वन्ति नृपश्रेष्ठ ते गच्छन्ति यमालये ॥२०॥ धर्मो नष्टो नृणां येषां स्वागतासनभोजनैः॥ तेषां वै नश्यते वत्स कीर्तिरायुः प्रजासुखम् ॥२१॥ साधूनामपमानं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः॥ त्रिवर्गफलहीनास्ते दह्यन्ते नरकाग्निना ॥२२॥ कृत्वाऽवमानं साधूनां ये घ्नन्ति नराधमाः॥ वारयन्ति न ये मूढास्ते पश्यन्ति कलक्षयम् ॥२३॥ आचारभ्रष्टदेहस्य पिशुनस्य शठस्य च॥ ददतो जुह्वतो वापि गतिस्तस्य न

करने से या रात्रि में भोजन करने से या उपवास करने से क्या पुण्य होता है, हे पितामह, वह मुझसे कहिये। ब्रह्मा बोले, एक बार भोजन करने से एक जन्म का, रात्रि को भोजन करने से दो जन्म का और उपवास करने से सात जन्म का पाप नष्ट हो जाता है। जो दुर्लभ है, अप्राप्य है, त्रिलोकी में दृष्टिगोचर नहीं होता, जो अप्रार्थित

विद्यते ॥२४॥ तस्मान्नत्वा चरेत् किञ्चिदशुभं लोकगर्हितम् ॥ सदाचारवता भाव्यं यथा धर्मो न नश्यति ॥२५ ॥ ये ध्यायन्ति मनोवृत्या करिष्यामः प्रबोधिनीम् ॥ तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्म-शतोद्भवम् ॥२६ ॥ समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायुतम् । विष्णुलोकं नयत्याशु प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥२७॥ वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेऽत्यलंकृताः ॥ विमुक्ता नारकैर्दुःखैःपूर्वक-र्मसमुद्भवैः ॥२८॥ कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः ॥ कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौतपापो भवेन्मुने ॥२९ ॥ दुष्प्राप्यं यत्फलं रम्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः ॥ प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥३० ॥ आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु दत्त्वा गाः काञ्चनं महीम् ॥ न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरे ॥३१ ॥ जातः स एव सुकृतो कुलं तेनैव पावितम् ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥३२ ॥ यथा ध्रुवं नृणां मृत्युर्धननाशस्तथा ध्रुवम् ॥ इति ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं वैष्णवं दिनम् ॥३३ ॥ यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये सम्भवन्ति च ॥ तानि तस्य गृहे सम्यग् यः करोति प्रबोधिनीम् ॥३४॥ सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ उपोष्यैकादशीं

है, उसको हरि प्रबोधिनी में दृष्टिगोचर नहीं होता, जो अप्रार्थित है, उसको हरि प्रबोधिनी देती है। जो मेरु तथा मन्दराचल के बराबर पाप है, उन सब को पाप हारिणी एक ही उपवास से नष्ट कर देती है। सैंकड़ों पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के इकट्ठा हो जाने पर वह प्रबोधिनी के रात्रि के जागरण से रुई के ढेर के समान भस्म हो जाते हैं।

रम्यां कार्त्तिके हरिप्रबोधिनीम् ॥३५॥ स ज्ञानी स च योगी स च तपस्वी जितेन्द्रियः॥ भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति ह्युपास्ते हरिप्रबोधिनीम् ॥३६॥ विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी॥ सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक् च भवेन्नरः ॥३७॥ प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भे विशते नरः॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद ॥३८॥ कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम्॥ तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥३९॥ स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम्॥ नरैर्यत्क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥४०॥ येऽर्चयन्ति नरास्तस्यां भक्त्या देवं च माधवम्॥ समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्ते शतजन्मजैः ॥४१॥ महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम्॥ प्रबोध-वासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत् ॥४२॥ व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम्॥ विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति भवनं हरेः ॥४३॥ कर्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कान्तिमभीप्सुभिः॥ द्वादशी द्विपदां श्रेष्ठ कार्तिके तु प्रबोधिनी ॥४४॥ बाल्ये यच्चार्जितं वत्स यौवने वार्धके तथा॥ शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥४५॥ शुष्कमार्द्रं मुनिश्रेष्ठ स्वगुह्यमपि नारद॥ तत्क्षालयति

हे मुनि शार्दूल, जो मनुष्य स्वभाव से ही विधिपूर्वक प्रबोधिनी का व्रत करता है, वह यथोक्त फल को प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस सुकृत को विधिपूर्वक थोड़ा भी करता है, हे मुनिश्रेष्ठ, वह मेरु के तुल्य फलदाता हो जाता है। हे नारद, सन्ध्याहीन में, व्रतभ्रष्ट में, नास्तिक में, वेद निन्दक में, धर्मशास्त्र को दूषण करने वाले में,

गोविन्दमस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ॥४६॥ धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा॥ तामुपोष्य हरेर्भक्त्या दुर्लभं न भवेत्क्वचित् ॥४७॥ चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम्॥ तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥४८॥ स्नानं दानं जपोहोमः स्वाध्यायोऽर्चनं हरेः॥ तत्सर्वं कोटितुल्यं तु प्रबोधिन्यां तु यत्कृतम् ॥४९॥ जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणाभ्यर्जितं भवेत्॥ वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिकव्रतम् ॥५०॥ अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः॥ जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं नाप्नोति नारद ॥५१॥ तस्मात्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः॥ उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥५२॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः॥ परान्न-वर्जनाद्वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् ॥५३॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानैर्वा गजादिभिः। यथा शास्त्र-कथालापैः कार्तिके मधुसूदनः ॥५४॥ ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति समाहिताः॥ श्लोकं वा श्लोकपादं वा कार्तिके गोशतं फलम् ॥५५॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य ममाग्रे कार्तिके नरैः॥ शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च सदा मुने ॥५६॥ श्रेयसां लोभबुद्ध्या वा यः करोति हरेः

मूर्ख, कृतघ्न, वंचक में परस्त्री सेवक में धर्म स्थित नहीं होता। जो गुरु एवं ब्राह्मण के साथ अहंकार से वर्तता है, जिनका देह आचार से भ्रष्ट है, जो चांडालनी में गमन करता है। दुष्टों की सेवा करता है, इन सबका धर्म नष्ट हो जाता है। जो पतित मनुष्यों का संग करता है, उनके घर में जाता है, वह यमलोक में जाता है। स्वागत,

कथाम् ॥५१ ॥ कार्तिके मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् ॥५७ ॥ नित्यं शास्त्रविनोदेन कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः ॥ निर्दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् ॥५८ ॥ नियमेन नरो यस्तु शृणुते वैष्णवीं कथाम् ॥ कार्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥५९ ॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो हरेः कथाम् ॥ सप्तद्वीपवतीदाने तत्फलं लभते मुने ॥६० ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम् ॥ स्वशक्त्या मुनिशार्दूल तेषां लोकाः सनातनाः ॥६१ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत ॥ नारद उवाच ॥ विधानं ब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्याः सुरोत्तम ॥६२ ॥ चीर्णेन येन भगवन्यादृशं फलमाप्नुयात् ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां द्विजोत्तम ॥ स्नानं चैव प्रकर्त्तव्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥६४ ॥ नद्यां तडागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैव च ॥ केशवञ्चैव सम्पूज्य कथायाः श्रवणं तथा ॥६५ ॥ नियमार्थे महाभाग इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ एकादश्यां निराहारं स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम् ॥६६ ॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥ अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥६७ ॥

आसन, भोजन में जिन मनुष्यों के धर्म नष्ट हो जाते हैं, उनकी कीर्ति, आयु, सन्तति और सुख नाश को प्राप्त हो जाते हैं। हे मुनिवर, इस लोक में किंचित् भी निन्दित काम न करें, सदाचारी रहें, जिससे धर्म का नाश न हो। वही पुण्यशाली है जिसने अपने कुल को तारा है। जिस प्रकार मनुष्य का मरण निश्चित है, वैसे ही धन

भक्तिभावेन तुष्टात्मा ह्युपवासं समर्पयेत्॥ रात्रौ जागरणं कार्यं देवदेवस्य सन्निधौ ॥६८॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च तथा कृष्णकथां मुने॥ यः करोति सा पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ॥६९॥ बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुंकुमैः ॥ हरेः पूजा विधातव्यः कार्तिक्यां बोध-वासरे ॥७०॥ वित्तं शाठ्यं न कर्त्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे॥ यस्मात् पुण्यमसंख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥७१॥ फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे॥ शंखे तोयं समादाय ह्यर्घो देयो जनार्दने ॥७२॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम्॥ तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वाऽर्घं बोध-वासरे ॥७३॥ अगस्त्यकुसुमैर्दिव्यैः पूजयेद्यो जनार्दनम्॥ देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ करोति कर-सम्पुटम् ॥७४॥ न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः॥ यत्करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलं-कृतः ॥७५॥ बिल्वपत्रैश्च ये कृष्ण कार्तिके कालवर्धन॥ पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदितः ॥७६॥ तुलसीदलपुष्पैश्च पूजयन्ति जनार्दनम्॥ कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ॥७७॥ दृष्ट्वा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नामिता स्तुता॥ रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता

का नाश भी निश्चित है, इस बात को जानकर वैष्णव पुरुष हरि वासर के व्रत को अवश्य करें। इस व्रत को करके मनुष्य जनार्दन को सन्तुष्ट करके सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ विष्णु लोक में जाता है। हे नारद, वही ज्ञानी है, वही योगी है, वही तपस्वी एवं जितेन्द्रिय है, उसको भोग और मोक्ष मिलता है, जो हरि

तुलसी शुभा ॥७८॥ नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥ युगकोटि सहस्त्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥७९॥ रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम् ॥ तावद्युगसहस्त्राणि तनोति सुकृतं मुने ॥८०॥ यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने ॥ तोषिता तुलसी पुंभिर्वर्धते वसुधा-तले ॥८१॥ कुले तेषां तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः ॥ आकल्पयुगसाहस्त्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥८२॥ कदम्बकुसुमैर्देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ॥ तेषां यमालयो नैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥८३॥ दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति केशवः ॥ किं पुनः पूजितो विप्र सर्वकामप्रदो हरिः ॥८४॥ यः पुनः पाटलीपुष्पैः कार्तिके गरुडध्वजम् ॥ अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेद्धि सः ॥८५॥ बकुलाशोककुसुमैर्येऽर्चयन्ति जगत्पतिम् ॥ विशोकास्ते भविष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८६॥ येऽर्चयन्ति जगन्नाथं करवीरैः सितासितैः ॥ चतुर्युगानि विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ॥८७॥ मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि ये नराः ॥ यच्छन्ति ते महाभागाः गोकोटिफलभागिनः । दूर्वाङ्-कुरैर्हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति ॥ पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति मानवः ॥८८-८९॥ शमी-

प्रबोधिनी का व्रत करता है। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, विष्णु का पूजन यदि हरि प्रबोधिनी के दिन किया जाता है तो वह दुगना फल देता है। विष्णु की भक्ति के बिना जो मनुष्य कार्तिक मास को व्यतीत करता है वह जन्म के जोड़े हुए पुण्य के फल को खो देता है। हे नारद, एकादशी के दिन ब्राह्म मुहूर्त में (दोघड़ी रात्रि रहने

पत्रैस्तु ये देवं पूजयन्ति सुखप्रदम् ॥ यममार्गे महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ॥९० ॥ वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः ॥ येऽर्चयन्ति न ते मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे ॥९१ ॥ कुम्भीपुष्पं तु विप्रर्षे ये यच्छन्ति जनार्दने ॥ सुवर्णफलमात्रं ते लभन्ते वै फलं मुने ॥९२ ॥ सुवर्णकेतकीपुष्पं यो यच्छन्ति जनार्दने ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं दहते गरुडध्वजः ॥९३ ॥ कुङ्कुमारुणवर्णाञ्च गन्धा-ढ्यां शतपत्रिकाम् ॥ यो ददाति जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥९४ ॥ एवं सम्पूज्य रात्रौ च केशवं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥९५ ॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पौर्वाह्निकीः क्रियाः ॥ गृहे गत्वा च सम्पूज्य केशवं विधिवन्नरैः ॥९६ ॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान् भोजयेत् सुधीः ॥ क्षमापयेच्च शिरसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥९७ ॥

पर) उठकर दन्तधावन कर स्नान करना चाहिये। भगवान् विष्णु की अर्चना कर कथा को सुने। एकादशी के दिन निराहार रहकर व्रत करें। प्रभु से प्रार्थना करें, हे पुण्डरीकाक्ष, हे अच्युत, मैं आप की शरण में हूं, शरण आये की रक्षा करो। भगवान् के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करें। रात्रि को प्रतिमा के समीप जागरण करें। उस समय प्रभु के नाम का कीर्तन करें, नृत्य करें, अनेक प्रकार के वाद्यों से प्रभु का स्मरण करें। अनेक प्रकार के पुष्पों, फल, कर्पूर, कुंकुमं आदि से भगवान् का पूजन करें। शंख में जल भर कर नारायण हरि को अर्घ प्रदान करें। हे मुनीश्वर, उत्तम अगस्त्य के फूलों से जो जनार्दन की पूजा करते हैं, अगस्त्य के पूलों से अलंकृत करते

गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादनादिभिः॥ दक्षिणा गाश्च दातव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥९८॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः॥ नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥९९॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ नक्तभोजी नरो राजन् ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ॥१००॥ अयाचिते बलीवर्द सहिरण्यं प्रदापयेत्॥ अमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गां सदक्षिणाम् ॥१०१॥ धात्रीस्नायी नरो दद्याद्दधिमाक्षिकमेव च॥ फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥१०२॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृतस्थाने पयः स्मृतम्॥ धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥१०३॥ दद्याद् भूशयने शय्यां सतूलां सपरिच्छदाम्॥ पत्रभोजी नरो राजन् भाजनं घृतसंयुतम् ॥१०४॥ मौनी घण्टां तिलांश्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत्॥

हैं, शृंगार करते हैं तथा विल्वपत्रों से पूजन करते हैं, उनके पाप भस्म हो जाते हैं। इस दिन तुलसी के दर्शन करने से, तुलसी की महिमा को कहने से, नमस्कार करने, स्तुति करने, तुलसी का वृक्ष लगाने से, प्रतिदिन पूजन करने से तुलसी मंगल देने वाली है। भगवान् की पूजा में, कदम्ब, वकुल, पाटलीपुष्प, अशोक, लाल कनेर, सफेद फूलों से नारायण हरि प्रसन्न हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्, इस प्रकार से रात्रि में मुक्ति देने वाले केशव भगवान् की पूजा करके प्रातःकाल होने पर उठकर स्नान आदि करके, प्रातःकाल के कर्म को करके, विष्णु की पूजा करके, ब्राह्मण को भोजन करवाकर, उसको नमस्कार करके, क्षमा याचना करके पूरी तरह सन्तुष्ट करके,

दम्पत्योर्भोजनं देयं निःस्नेहं सर्पिषा युतम् ॥१०५॥ धारणे तु स्वकेशानामादर्शं दापयेद्बुधः ॥ उपानहौ प्रदातव्ये उपानत्परिवर्जनात् ॥१०६॥ लवणस्य च सन्त्यागे शर्करां च प्रदापयेत् ॥ नित्यं दीपः प्रदेयस्तु विष्णोर्वा विबुधालये ॥१०७॥ सदीपं सघृतं ताम्रं काञ्चनं वा दशायुतम् ॥ प्रदद्याद्विष्णुभक्ताय व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥१०८॥ एकान्तरोपवासे तु कुम्भानाष्टौ प्रदापयेत् ॥ सवस्त्रान् काञ्चनोपेतान् सर्वान् सालङ्कृतान् शुभान् ॥१०९॥ सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना ॥ द्विजवाक्यं स्मृतं राजन् सम्पूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥११०॥ नत्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ॥ यत्त्यक्तं चतुरो मासान् समाप्तिं तस्य चाचरेत् ॥१११॥ एवं य आचरेत्प्राज्ञः सोऽनन्तफलमाप्नुयात् ॥ अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत् ॥११२॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैवं चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥ स भवेत्कृतकृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥११३॥ एतत् कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रतं भवेत् ॥ व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यन्धः कुष्ठी प्रजायते ॥११४॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । पठनाच्छ्रवणाद्वापि भवेद्गोदानजं फलम् ॥११५॥

पश्चात् स्वयं भोजन करें। हे राजन्, इस प्रकार चातुर्मास व्रत को जो निर्विघ्नता से समाप्त करते हैं, वे कृत-कृत्य हो जाते हैं, फिर उन मनुष्यों का जन्म नहीं होता।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की हरि प्रबोधिनी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

२५. मलमास शुक्लपक्ष पद्मिनी एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ मलिम्लुचस्य मासस्य का वा एकादशी भवेत्॥ किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जनार्दन ॥१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ मम मासस्य या पुण्या प्रोक्ता च पद्मिनी। सोपोषिता प्रयत्नेन पद्मनाभपुरं नयेत् ॥२ ॥ मम मासे महापुण्या कीर्तिता कल्मषापहा ॥ तस्याः फलं कथयितुं न शक्तश्चतुराननः ॥३ ॥ नारदाय पुरा प्रोक्तं विधिना व्रतमुत्तमम्॥ पद्मिमन्याः पापराशिघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४ ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुरारेस्तु प्रोवाच मुदितान्वितः ॥ युधिष्ठिरो जगन्नाथं विधिं पप्रच्छ धर्मवित् ॥५ ॥ श्रुत्वा राज्ञस्तु वचनं प्रीत्युत्फुल्लाम्बुजेक्षणः ॥ शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि मुनीनामप्यगोचरम् ॥६ ॥ दशमीदिवसे प्राप्ते व्रतारम्भे विधीयते ॥ कांस्यं

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन, मल मास के शुक्ल पक्ष में कौन सी एकादशी होती है, उसका क्या नाम है और कैसी विधि है, मुझसे कहिये। श्री कृष्ण बोले, कि मलमास में पापों का नाश करने वाली, भुक्ति-मुक्ति को देने वाली पद्मिनी नाम की एकादशी आती है, इसमें भगवान् पद्मनाभ का पूजन करना चाहिए। दशमी के दिन व्रत आरम्भ किया जाता है, कांस्यपात्र में भोजन, मांस, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु तथा दूसरे का अन्न ये आठ वस्तुएं दशमी के दिन वर्जित हैं। हविष्य अन्न (जौं-चावल आदि) तथा सेंधा

मांसं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥७॥ शाकं मधु परान्नं च दशम्यामष्ट वर्जयेत् ॥ हविष्यान्नं च भुञ्जीत अक्षारलवणं तथा ॥८॥ भूमिशायी ब्रह्मचारी भवेच्च दशमीदिने ॥९॥ एकादशीदिने प्राप्तः प्रातरुत्थाय सादरम् ॥ विधाय च मलोत्सर्गं न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥१०॥ कृत्वा द्वादशगण्डूषाञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ सूर्योदये शभे तीर्थे स्नानार्थं प्रव्रजेत्सुधीः ॥११॥ गोमयं मृत्तिकां गृह्यं तिलान्दर्भाञ्छुचिस्तथा ॥ चूर्णैरामलकीभूतैर्विधिना स्नानमाचरेत् ॥१२॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णे शतबाहुना ॥ मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमन्त्रिता ॥१३॥ त्वं मे कुरु पवित्रांगं लग्ना नेत्रेशि रोरुहे ॥ हरिपूजनयोग्यं मां मृत्तिके कुरु ते नमः ॥१४॥ सर्वौषधि-

नमक का प्रयोग करें। पृथ्वी पर शयन करें, ब्रह्मचर्य से रहे और एकादशी के दिन प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत्त होकर, दन्तधावन कर पानी के बारह कुल्ले करके उत्तमतीर्थ में स्नान करने के लिये जाना चाहिये। गोबर, मिट्टी, तिल, कुशा लेकर पवित्र होकर आमले के चूर्ण को शरीर पर मलकर विधिपूर्वक स्नान करके इस मन्त्र को पढ़ें। हे मृत्तिके, शतवाहु वराह ने तुम को उठाया, तुझे ब्रह्मा को दिया गया, कश्यपमुनि ने तुम्हें अभिमन्त्रित किया, मेरे अंग, प्रत्यंग में लगाई हुई तू मुझे पवित्र कर। तुम को मेरा नमस्कार है। मुझे हरि पूजन करने के योग्य करो। समस्त औषधियों से उत्पन्न, गौ के उदर में स्थित, पृथ्वी को पवित्र करने वाला गोबर मुझे पवित्र करे। भुवन को पवित्र करने वाला धात्री (आमला)

समुत्पन्नं गवोदरमधिष्ठितम् ॥ पवित्रकरणं भूमे मां पावयतु गोमयम् ॥१५ ॥ ब्रह्मष्ठीवनसम्भूता धात्री भुवनपावनी ॥ संस्पृष्टा पावयांगं मे निर्मलं कुरु ते नमः ॥१६ ॥ देवदेव जगन्नाथ शंखचक्रगदाधर ॥ देहि विष्णो ममानुज्ञां तव तीर्थावगाहने ॥१७ ॥ वारुणांश्च जपेन्मन्त्रान् स्नानं कुर्याद्विधानतः ॥ गंगादितीर्थं संस्मृत्य यत्र कुत्र जलाशये ॥१८ ॥ पश्चात् संमार्जयेत् गात्रं विधिना नृपसत्तम ॥ मुखे पृष्ठे च हृदये बाह्वोः शिरसि चाप्यधः ॥१९ ॥ परिधाय सुखं वासः शुक्लं शुचि ह्यखण्डितम् ॥ ततः कुर्याद्धरेः पूजां महापापं विनश्यति ॥२० ॥ सन्ध्यामुपास्य विधिना तर्पयेच्च पितृन् सुरान् ॥ हरेर्मन्दिरमागत्य पूजयेत्कमलापतिम् ॥२१ ॥ स्वर्णमाषकृतं

को नमस्कार है। स्पर्श करने से मेरे शरीर को पवित्र करो। हे शंख, चक्र, गदाधारी, जगत के पति, हे देव देवेश, हे विष्णु, मुझे अपने तीर्थ में स्नान करने की आज्ञा प्रदान करो। ऐसा कहकर वरुण के मन्त्र का जप करके तथा गंगादि तीर्थों का स्मरण करके, जहां कहीं भी जलाशय हो उसमें विधिपूर्वक स्नान करें। हे नृप श्रेष्ठ, इसके बाद मुख, पीठ, हृदय, बाहु, सिर और शरीर का मार्जन करें। फिर जो फटा हुआ न हो, धोया गया हो या नवीन वस्त्र (सफेद) धारण करें। फिर सन्ध्या, वन्दन करके पितरों का तर्पण कर, विष्णु भगवान् के मन्दिर में आकर विधिपूर्वक लक्ष्मी सहित विष्णु का पूजन करें। फिर पार्वती सहित महादेव का विधिपूर्वक पूजन करें। मिट्टी या तांबे के कलश पर उत्तम वस्त्र रखकर उसमें देवता को बैठावें। वहां

देवं राधिकासहितं हरिम्॥ पार्वत्या सहितं देवं पूजयेद्विधिपूर्वकम्॥२२॥ कुम्भोपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रेऽथ मृण्मये॥ दिव्यवस्त्रसमायुक्ते दिव्यगन्धानुवासिते॥२३॥ तस्योपरिन्यसेत्पात्रं ताम्ररौप्यहिरण्मयम्॥ तस्मिन् संस्थाप्येद्देवं विधिना पूजयेत्ततः॥२४॥ संस्थाप्य सलिलैः श्रेष्ठैर्गन्धधूपादिवासितैः॥ चन्दनागरुकर्पूरैः पूजयेद्देवमीश्वरम्॥२५॥ नानाकुसुमकस्तूरीकुङ्कुमेन सिताम्बुजैः॥ तत्कालजातैः कुसुमैः पूजयेत्परमेश्वरम्॥२६॥ नैवेद्यैर्विविधैः शक्त्या तथा नीराजनादिभिः॥ धूपैः दीपैः सकर्पूरैः पूजयेत्केशवं शिवम्॥२७॥ नृत्यं गीतं तदग्रे तु कुर्याद्-भक्तिपुरःमरम्॥ नालपेत्पतितान् पापांस्तस्मिन्नहनि न स्पृशेत्॥२८॥ नानृतं हि वदेद्वाक्यं

धूप, दीप, चन्दन, अगर, कपूर और जल से, स्थापित किये हुए भगवान् की पूजा करें। नाना प्रकार के पुष्प, श्वेत कमल, ऋतु में उत्पन्न पुष्पों से परमेश्वर की पूजा करें। शक्ति के अनुसार विविध प्रकार के नैवेद्य समर्पण करें, धूप, दीप, कर्पूर से केशव भगवान् तथा शिव जी का पूजन करें। नृत्य, गीत, कीर्तन करें। मिथ्या बात न करें। वैष्णवों सहित विष्णु भगवान् के सम्मुख बैठ कर मलमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी की कथा को सुनें। इस एकादशी का व्रत निर्जल रह कर करना चाहिए। केंवल दुग्ध का आहार करें। रात्रि में जागरण करें। प्रथम प्रहर में नारियल का अर्घ्य देकर द्वितीय प्रहर में श्रीफल से अर्घ्य दे। तीसरे प्रहर में बीज पूरक (विजौरा) और चौथे प्रहर में सुपारी से अर्घ्य दें। अर्थात् पूजन करें या अर्पण

सत्यपूतं वचो वदेत् ॥ रजस्वलां न स्पृशेच्च न निन्देद्ब्राह्मणं गुरुम् ॥२९ ॥ पुराणे पुरतो विष्णोः शृणुयात् सह वैष्णवैः ॥ निर्जला सा प्रकर्तव्या या च शुक्ले मलिम्लुचे ॥३० ॥ जलपानेन वा कर्यादद्दुग्धहारेण नान्यथा ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रसंयुतम् ॥३१ ॥ प्रथमे प्रहरे पूजा नारिकेलार्घमुत्तमम् ॥ द्वितीय श्रीफलैश्चैव तृतीये बीजपूरकैः ॥३२ ॥ चतुर्थे पूजयेत् पूगैर्नारंगैश्च विशेषतः ॥ प्रथमे प्रहरे पुण्यमग्निष्टोमस्य जायते ॥३३ ॥ द्वितीये वाजपेयस्य तृतीये हयमेधजम् ॥ चतुर्थे राजसूयस्य जाग्रतो जायते फलम् ॥३४ ॥ नातः परतरं पुण्यं नातः परतरा मखाः ॥ नातः परतरा विद्या नातः परतरं तपः ॥३५ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राण्यायतनानि च ॥ तेन

करें। प्रथम प्रहर में जागरण से अग्निष्टोम यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। दूसरे प्रहर में वाजपेय, तीसरे में अश्वमेध और चौथे में राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। इस व्रत से बढ़कर न कोई पुण्य है न ही कोई यज्ञ है। न ही कोई विद्या है, न ही कोई तप है। इस प्रकार सूर्योदय पर्यन्त जागरण करके सूर्य के उदय हो जाने पर उत्तम तीर्थ में जाकर स्नान करने के पश्चात् विष्णु की पूजा करें। पूजा करने के पश्चात् कलश एवं कलश पर स्थापित विष्णु की प्रतिमा को दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को अर्पित कर दें। फिर व्रत का पारणा करना चाहिए। हे नृप श्रेष्ठ, मलमास के कृष्णपक्ष की जो एकादशी है, उसकी भी यही विधि है। इस एकादशी की मनोरम कथा को मैं तुम से कहता हूं, जिस को पुलस्त्य मुनि ने नारद जी के पूछने

स्नानानि दृष्टानि येनाकारि हरेर्व्रतम् ॥३६॥ एवं जागरणो कुर्याद्यावत् सूर्योदयो भवेत्॥ सूर्योदये शुभे तीर्थे गत्वा स्नानं सामचरेत् ॥३७॥ स्नात्वैवागत्य भावेन पूजयेद्देवमीश्वरम्॥ पूर्वोदितेन विधिना भोजयेद्ब्राह्मणान् शुभान् ॥३८॥ कुम्भादिकं च यत्सर्वं प्रतिमां केशवस्य च॥ पूजयित्वा विधानेन ब्राह्मणाय समर्पयेत् ॥३९॥ एवं विधं व्रतं यो वै कुरुते भुवि मानवः॥ सफलं जायते तस्य व्रतं मुक्तिफलप्रदम् ॥४०॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लाया विधिमुत्तमम् ॥४१॥ व्रतानि तेन चीर्णानि सर्वाणि नृपनन्दन॥ पद्मिन्याः प्रीतियुक्तो यः कुरुते व्रतमुत्तमम् ॥४२॥ कृष्णायाः मलमासस्य विधिस्तस्यापि तादृशः॥ परमा सा तु विज्ञेया सर्वपापक्षयंकरी ॥४३॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेकां

पर कहा था। कारागर में कार्तवीर्य द्वारा कैद किये हुए रावण को पुलस्त्य मुनि ने उस राजा से याचना करके छुड़ा दिया था। तब यह आश्चर्य सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद जी से भक्ति पूर्वक पूछने लगे कि इन्द्र के साथ देवताओं को जिस रावण ने जीत लिया था, उस बलशाली रावण को कार्त्तवीर्य ने किस प्रकार जीत लिया, नारद जी का वचन सुनकर पुलस्त्य मुनि कहने लगे, हे वत्स, सुनो, कार्तवीर्य की उत्पत्ति मैं तुमसे कहता हूं। पहले त्रेता युग में हैहय नामक राजा के वंश में कृतवीर्य उत्पन्न होकर महिष्मतीपुरी का राजा बना। उस राजा की एक हज़ार स्त्रियां थीं, परन्तु उनमें किसी भी स्त्री के राजा के भार को संभालने वाला

मनोरमाम् ॥ नारदाय पुलस्त्येन विस्तरेण निवेदिताम् ॥४४॥ कार्तवीर्येण कारायां निक्षिप्तं वीक्ष्य रावणम् ॥ विमोचितः पुलस्त्येन याचयित्वा महीपतिम् ॥४५॥ तदाश्चर्यं तदा श्रुत्वा नारदो दिव्यदर्शनः ॥ पप्रच्छ च यथा भक्त्या पुलस्त्यं मुनिपुंगवम् ॥४६॥ नारद उवाच॥ दशाननेन विजिताः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ कार्तवीर्येण विजितः कथं रणविशारदः ॥४७॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा पुलस्त्यो मुनिरब्रवीत॥ पुलस्त्य उवाच॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कार्तवीर्यसमुद्भवम् ॥४८॥ पुरा त्रेतायुगे राजन् माहिष्मत्यां बृहत्तरः ॥ हैहयानां कुले जातः कृतवीर्यो महीपति ॥४९॥ सहस्त्रं प्रमदास्तस्य नृपस्य प्राणवल्लभाः ॥ न तासां तनयं कञ्चिल्लेभे राज्यधुरन्धरम् ॥५०॥ यजन्देवान् पितृन् सिद्धान् प्रतिपूज्य बृहत्तरान् ॥ तेषां वाक्याद् व्रतं

पुत्र नहीं हुआ। देवता, पितर, सिद्ध तथा बड़े-बड़े श्रेष्ठों का पूजन और उनकी आज्ञानुसार व्रतों को करने पर भी राजा को पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। तब पुत्र के बिना राजा को राज्य का कुछ भी सुख अनुकूल नहीं लगता था। जिस प्रकार क्षुधित मनुष्य को भोग-विलास उपयुक्त नहीं लगते, उस प्रकार बिना पुत्र के राजा को राज्य भी सुखदायी प्रतीत नहीं लगते, उस प्रकार बिना पुत्र के राजा को राज्य भी सुखदायी प्रतीत नहीं होता था। तब उस राजा ने वन में तपस्या करने का विचार बना लिया। इस प्रकार सोचकर उसी समय चीर वस्त्र पहन कर जटा बनाकर अच्छे मन्त्री को घर एवं राज्य का भार सौंपकर तपस्या करने के निमित्त यात्रा

कुर्वन्नलब्धस्तनयस्तदा ॥५१॥ सुतं विना तदा राज्यं न सुखाय महीपतेः॥ क्षुधितस्य यथा भोगा न भवन्ति सुखप्रदाः ॥५२॥ विचार्य चित्ते नृपतिस्तपस्तप्तुं मनो दधे॥ तपसैव सदा सिद्धिर्जायते मनसेप्सिता ॥५३॥ इत्युक्त्वा स हि धर्मात्मा चीरवासा जटाधरः॥ तपस्तप्तुं गतः सद्यो गृहे न्यस्य सुमन्त्रिणम् ॥५४॥ निर्गतं नृपतिं वीक्ष्य पद्मिनी प्रमदोत्तमा॥ हरिश्चन्द्रस्य तनया इक्ष्वाकुकुलसम्भवा ॥५५॥ पतिव्रता प्रियं दृष्ट्वा तपस्तप्तुं कृतोद्यमम्॥ भूषणानि परित्यज्य चीरमेकं समाश्रयत् ॥५६॥ जगाम पतिना सार्द्धं पर्वते गन्धमादने॥ गत्वा तत्र तपस्तेपे वर्षाणामयुतं नृपः ॥५७॥ न लेभे तनयं राज्ये ध्यायन्देवं गदाधरम्॥ अस्थिस्नायुमयं कान्तं

की। पति को इस प्रकार घर से निकलते देखकर, इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न स्त्रियों में श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र राजा की कन्या पद्मिनी नामक उस राजा की रानी पति को तपस्या में लगे जानकर अपने शरीर में पहने हुए आभूषणों को उतारकर एक वस्त्र को धारण कर गन्धमादन पर्वत पर पति के साथ रहने लगी। वहां रहते हुए राजा ने अनेक वर्षों तक तप किया। गदाधर देव का ध्यान करते रहे, परन्तु पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। हाड-मांस और नसों वाले दुर्बल शरीर वाले पति को देखकर वह पतिव्रता स्त्री विनयपूर्वक साध्वी अनुसूया से पूछने लगी, हे साध्वी, मेरे पति को तप करते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गये हैं, मगर क्लेश को नाश करने वाले भगवान् केशव हम पर प्रसन्न नहीं हुए, हे महामाये, मुझ से यथार्थ व्रत को कहो,

दृष्ट्वा सा प्रमदोत्तमा ॥५८॥ अनुसूयां महासाध्वीं पप्रच्छ विनयान्विता ॥ भर्तुः प्रतपतः साध्वि वर्षाणामयुतं गतम् ॥५९॥ तथापि न प्रसन्नोऽभूत्केशवः कष्टनाशनः ॥व्रतं मम महाभागे कथयस्व यथातथम् ॥६०॥ येन प्रसन्नो भगवान् मम भक्त्या प्रजायते ॥ येन मे जायते पुत्रश्चक्रवर्ती बृहत्तरः ॥६१॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं पतितव्रतपरायणा ॥ या प्रव्रजन्तं नृपतिं स्वयं वव्राज दीक्षितम् ॥६२॥ तदा प्रोवाच संहृष्टा पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ॥ स्नात्वा मलिम्लुचे सुभ्रु मासद्वादशसंमते ॥६३॥ त्रिंशद्दिनैश्च भवति मासः पूर्ण शुभानने। तन्मध्ये द्वादशीयुग्मं पद्मिनी परमा तथा ॥६४॥ उपोष्य तत्प्रकर्तव्यं विधिना जागरैः समम् ॥ शीघ्रं प्रसन्नो भगवान्भविष्यति सुतप्रदः ॥६५॥ इत्युक्त्वाऽकथयत्सर्वं मया पूर्वोदितं नृप ॥ विधिं व्रतस्य

जिस व्रत से मेरी भक्ति से भगवान् प्रसन्न हों और मुझे चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हो। पातिव्रत्य परायण, पति को तप के लिये जाते देखकर स्वयं भी पति के साथ तप करने के लिये आई हुई उस पद्म लोचना पद्मिनी से साध्वी अनुसूया ने कहा, हे सुभ्रु, बारह मास के बीच जो मलमास आता है, उसमें पद्मिनी नाम की एकादशी आती है, हे शुभानने, तीन दिन में एक मास पूरा होता है उसके मध्य में द्वादशी युक्त दो एकादशी आती हैं, एक पद्मिनी तथा दूसरी परमा। जागरण सहित उन दोनों एकादशियों का विधि पूर्वक व्रत करो। उस व्रत के प्रभाव से भगवान् आप पर प्रसन्न होंगे, और पुत्र की प्राप्ति होगी। हे नृप, कर्दम ऋषि की पुत्री

विधिवत्प्रसन्ना कर्दमांगजा ॥६६ ॥ श्रुत्वा व्रतविधिं सर्वं यथोक्तमनसूयया ॥ चार्वंग्यकृतंतत्सर्वं पुत्रप्राप्तिमभीप्सति ॥६७ ॥ एकादश्यां निराहारा सदा जाता च निर्जला ॥ जागरेण युता रात्रौ गीतनृत्यसमन्विता ॥६८ ॥ पूर्णे व्रते च वै शीघ्रं प्रसन्नः केशवः स्वयम् ॥ बभाषे गरुडारूढो वरं वरय शोभने ॥६९ ॥ श्रुत्वा वाक्यं जगद्धातुः स्तुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता ॥ ययाचेऽद्य वरं देहि मम भर्तुर्बृहत्तरम् ॥७० ॥ पद्मिन्यास्तद्वचः श्रुत्वा प्रीत्या शुचिस्मिता ॥ ययाचेऽहं तोषितो भद्रे प्रत्युवाच जनार्दनः ॥७१ ॥ मलिम्लुचश्च मासोऽसौ नाऽन्यो मे प्रीतिदायकः ॥ तन्मध्यैकादशी रम्या मम प्रीतिविवर्धिनी ॥७२ ॥ सा त्वयोपोषिता सुभ्रु यथोक्तविधिनाऽमुना ॥ तेन त्वया प्रसन्नोऽहं कृतोऽस्मि शुभगानने ॥७३ ॥ तव भर्तुः प्रदास्यामि वरं यन्मनसेप्सितम् ॥

अनुसूया ने प्रसन्न होकर व्रत करने की पूरी विधि बतला दी। साध्वी अनुसूया द्वारा बतलाई गई विधि को सुनकर सुन्दर अंग वाली उस रानी पद्मिनी ने व्रत करना आरम्भ कर दिया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा वाली उस रानी ने एकादशी के दिन निराहार रह कर रात्रि जागरणपूर्वक व्रत किये। व्रत के पूर्ण होने पर शीघ्र ही प्रसन्न हो गरुड़ पर आरूढ़ होकर केशव भगवान् आकर बोले, हे शोभने, मैं तुम पर प्रसन्न हूं। यथेप्सित वर को मांग। श्रीभगवान् के वचन सुनकर मन्दहास्य वाली उस रानी ने भगवान् की स्तुति करके शुद्ध मन से कहा, हे भगवन् मेरे पति को आप वर दीजिये। पद्मिनी रानी का यह वचन सुनकर भगवान् नारायण

इत्युक्त्वा नृपतिं प्राह विष्णुर्विश्वार्ति नाशनः ॥७४॥ वरं वरय राजेन्द्र यत्ते मनसि कांक्षितम् ॥ सन्तोषितोऽहं प्रियया तव सिद्धिर्चिकीर्षया ॥७५॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णोः प्रसन्नो नृपसत्तमः ॥ बव्रे सुतं महाबाहुं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥७६॥ न देवैर्मानुषैर्नागैर्दैत्यदानव राक्षसैः ॥ जेतुं शक्ये जगन्नाथ विना त्वां मधुसूदन ॥७७॥ इत्युक्तो बाढमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ नृपोऽपि सुप्रसन्नात्मा हृष्टः पुष्टः प्रियायुतः ॥७८॥ समयात्स्वपुरं रम्यं नरनारी-मनोरमम् । स पद्मिन्यां सुतं लेभे कार्त्तवीर्यं महाबलम् ॥७९॥ न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु मानवः ॥ तस्मा-त्पराजितः संग्ख्ये रावणो दशकन्धरः ॥८०॥ न तं जेतुं समर्थोऽस्ति त्रिषु लोकेषु कश्चन ॥

बोले, हे भद्रे, मैं तुमसे प्रसन्न हूं। मल मास मुझे सब से प्यारा मास है, उस मास में मेरी प्रीति बढ़ाने वाली सुन्दर एकादशी है, हे सुभ्रु, तुमने जो एकादशी का शास्त्र विधि से व्रत किया है। हे शुभानने, इसलिये मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तेरे पति को मन चाहा वर दूंगा। ऐसा कहकर विश्व का दुःख हरने वाले भगवान् विष्णु ने राजा से कहा, हे राजन्, तुम मुझ से जो चाहते हो, वह मुझ से मांगो, तुम्हारे कार्य की सिद्धि के लिये मैं तुम्हारी पत्नी द्वारा प्रसन्न किया गया हूं। भगवान् विष्णु के ऐसे शुभ वचनों को सुनकर प्रसन्न हुए राजा ने सब लोकों द्वारा वन्दित, महाबाहु पुत्र को मांगा। हे मधुसूदन, वह पुत्र ऐसा हो, जो देवता, मनुष्य नाग, दैत्य, दानव, राक्षस आदि से वन्दित हो। इनमें से किसी से भी न हारे, केवल तुम्हारे द्वारा ही जीता जाये।

विना नारायणं देवं चक्रपाणिं गदाधरम् ॥८१॥ न त्वया विस्मयः कार्यो रावणस्य पराजये ॥ मलिम्लुचप्रसादेन पद्मिन्याश्चाप्युपोषणात् ॥८२॥ दत्तो दैवाधिदेवेन कार्तवीर्यो महाबलः ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥८३॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य शुक्लायाः सम्भवो महान् ॥८४॥ ये करिष्यन्ति मनुजास्ते यास्यन्ति हरेः पदम्॥ त्वमेवं कुरु राजेन्द्र यदि चेष्टमभीप्ससि ॥८५॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा धर्म राजोऽति-हर्षितः॥ चक्रे व्रतं विधानेन बन्धुभिः परिवारितः ॥८६॥ सूत उवाच॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं पुरा द्विज॥ पुण्यं पवित्रं परमं किं भूयः श्रोतु-मिच्छसि ॥८७॥ एवं विधं येऽपि व्रतं मनुष्या भक्त्या करिष्यन्ति मलिम्लुचस्य॥ उपोषिता

भगवान् आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये। प्रसन्न आत्मा वाला राजा अपनी पत्नी के साथ नर-नारियों से भरे हुए सुन्दर अपने नगर में आ गया। समय पाकर उस राजा के कार्त्तवीर्य नामक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ। हे राजन्, तीनों लोकों में उसके समान बलशाली कोई मनुष्य नहीं था। दशकन्धर रावण उस से हार गया। चक्रपाणी गदाधर नारायण देव के बिना तीनों लोकों में उसे जीतने में कोई समर्थ नहीं था। मलमास के प्रभाव से और पद्मिनी के व्रत के कारण रावण को हराने में आश्चर्य नहीं करना चाहिये। देवाधिदेव भगवान् विष्णु के वर के प्रभाव से कार्त्तवीर्य महाबली था। ऐसा वृत्तान्त नारद से कहकर प्रसन्न हृदय से

यैस्तु सुखप्रदात्री या शुक्लपक्षे भुवि तेऽपि धन्याः ॥८८॥ श्रोष्यन्ति ये तस्य विधिं समग्रं तेऽप्यंशभाजा मनुजाः प्रशस्ताः॥ ये वै पठिष्यन्ति कथां समग्रां ते वै गमिष्यन्ति हरेर्निवासम् ॥८९॥

पुलस्त्य ऋषि आश्रम को गये। श्री कृष्ण बोले, हे अनघ, जो तुमने पूछा, वह सब आप के समक्ष विस्तार से कह दिया है। यह हरि वासर पुण्यप्रद है, परम पवित्र है। जो भी मनुष्य इस मल मास का व्रत करेंगे, वे लोग इस पृथ्वी पर धन्य हैं। उनका जीवन सफल है।

मलमास के शुक्ल पक्ष की पद्मिनी एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ॥

२६. मलमास कृष्णपक्ष परमा एकादशी

युधिष्ठिर उवाच॥ मलिम्लुचस्य मासस्य कृष्णा का कथ्यते विभो॥ किं नाम को विधिस्तस्याः कथयस्व जगत्पते ॥१॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ परमेति समाख्याता पवित्रा पापहारिका॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां भोगदा च युधिष्ठिर ॥२॥ पूर्वोक्तविधिना कार्यं शुक्लायाः

युधिष्ठिर बोले, जगत् के स्वामी, मलमास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी आती है। उसकी क्या विधि है। कृपा करके कहिये। श्री कृष्ण बोले, हे युधिष्ठिर, पापों को हरने वाली, भोग और मोक्ष को देने वाली

सदृशेन वै। पूजयेत्परया भक्त्या नाम्ना देवं नरोत्तमम् ॥३ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि कथामेतां मनोरमाम् ॥ काम्पिल्यनगरे जातां मुनीनामग्रतः श्रुताम् ॥४ ॥ आसी द्द्विजवरः कश्चित्सुमेधा नाम धार्मिकः ॥ तस्य पत्नी पवित्राख्या पातिव्रत्यपरायणा ॥५ ॥ कर्मणा केनचिद्विप्रो धन-धान्यविवर्जितः ॥ न क्वापि लभते भिक्षां याचन्नापि नरान् बहून् ॥६ ॥ न भोज्यं लभते तादृङ् न वस्त्रं नैव मण्डनम् ॥ रूपयौवनमाधुर्यं नारी शुश्रूषते पतिम् ॥७ ॥ अतिथिं पूजयेत्क्वापि तदा सा क्षुधिता गृहे ॥ तिष्ठत्येव विशालाक्षी न म्लानमुखपङ्कजा ॥८ ॥ विलोक्य भार्यां सुदतीं

इस पवित्र एकादशी का नाम परमा है। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की एकादशी की विधि कही गई है, उसी विधि से इस एकादशी को करना चाहिये। परम भक्ति से नरोत्तम देव की पूजा करनी चाहिये। इस कथा को आप से कहता हूं। जो काम्पिल्य नगर में हुई थी, जो मुनियों से सुनी थी। पहले समय में सुमेधा नाम के एक धर्मात्मा ब्राह्मण हुए। उनकी पतिव्रता स्त्री, धर्म पारायण थी। उसका नाम पवित्रा था। किसी कर्म से वे धन-धान्य से रहित हो गये। बहुत लोगों से मांगने पर भी उन्हें भिक्षा नहीं मिलती थी। जिससे न अनुकूल भोजन मिल पाता, न ही अनुकूल-वस्त्र मिल पाते। रूप, यौवन एवं माधुर्य की मूर्ति वह ब्राह्मणी अपने पति की फिर भी सेवा में संलग्न रहती थी। यदि कोई अतिथि आ जाता तो भूखी ही रह जाती थी। फिर उसका मुख मलिन नहीं होता था। सुन्दर दांतों वाली वह भार्या शरीर से कृश होने लगी। उसने यह कभी नहीं कहा कि घर में अन्न नहीं है।

कर्शन्तीं स्वकलेवरम् ॥ न भर्त्तारं क्वचिच्चैव नास्त्यन्नमिति भाषते ॥९ ॥ विचार्य ब्राह्मणश्चित्ते भार्यायाः प्रेमबन्धनम् ॥ निन्दन्भाग्यं स्वकं विप्रः प्रोचे वाक्यं प्रियंवदाम् ॥१० ॥ कान्ते करोमि किं कार्यं न मया लभ्यते धनम् ॥ याचयामि नरान् भव्यान्न यच्छन्ति च मे धनम् ॥११ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्वं मे कथय शोभने ॥ विना धनेन सुश्रोणि गृहकार्यं न सिध्यति ॥१२ ॥ देह्याज्ञां परदेशाय गच्छामि धनलब्धये ॥ तस्मिन्देशे च यद्भाव्यं भाग्यं तत्रैव लभ्यते ॥१३ ॥ उद्यमेन विना सिद्धिः कर्मणां नोपलभ्यते ॥ तस्माद् बुधाः प्रशंसन्ति सर्वथैव शुभोद्यमम् ॥१४ ॥

वह ब्राह्मण भार्या के दृढ़ प्रेम के कारण अपने भाग्य को कोसने लगा। अपनी प्रियतमा भार्या से बोला, हे कान्ते, मैं क्या काम करूं, मुझे धन नहीं मिल रहा। उत्तम मनुष्य से याचना करने पर भी मुझे कोई धन नहीं देता। क्या करूं, कहां जाऊँ? हे शोभने, तू मुझ से कह। हे सुश्रोणी, धन के बिना घर का काम नहीं चलता। मुझे परदेश जाने की आज्ञा दो, मैं धन की प्राप्ति के लिये जाऊँ। बिना उद्यम के कार्य में सिद्धि नहीं होती, बुद्धिमान् लोग सदैव उद्यम की प्रशंसा करते हैं। उस विदेश में जो भाग्य में लिखा होगा, मिल जाएगा। पति के ऐसे वचनों को सुनकर वह सुलोचना आंखों में आंसु भर कर दोनों हाथ जोड़ कर विनम्रता से बोली, हे पतिदेव, आप से अधिक कोई ज्ञानी नहीं है, आप की कही गयी बात को भी कहती हूं। विपत्ति में सदैव स्थिर बुद्धि से ही रहना चाहिये, ऐसा हितैषी लोग कहते हैं। भूतल में बिना दान के सुवर्ण मेरू पर्वत में भी नहीं मिलता, पूर्व की दी

श्रुत्वा कान्तस्य वचनं साश्रुनेत्रा विचक्षणा ॥ प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयानतकन्धरा ॥१५ ॥
त्वत्तो नास्ति सुविज्ञाता त्वयाऽऽज्ञप्ता ब्रवीम्यहम् ॥ हितैषिणो नरा ब्रूयुः शश्वदापद्गता अपि ॥१६ ॥ पूर्वदत्तं हि लभते यत्र कुत्र महीतले ॥ विना दानं न लभ्येत मेरौ कनकपर्वते ॥१७ ॥
पूर्वदत्ता हि या विद्या पूर्वदत्तं हि यद्धनम् ॥ पूर्वं दत्ता हि या भूमिरिह जन्मनि लभ्यते ॥१८ ॥
यद्धात्रा लिखितं भाले तत्तत्रैव हि लभ्यते ॥ विना दत्तेन किं क्वापि लभ्यते नैव किञ्चन ॥१९ ॥
पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र न मया न त्वया क्वचित् ॥ सत्पात्राणां करे दत्तं स्वल्पं भूर्यपि सद्धनम् ॥२० ॥
इह देशे परे वापि दत्तं सर्वत्र लभ्यते ॥ अन्नमात्रं तु विश्वेशो विना दत्तं च यच्छति ॥२१ ॥
तस्मादत्रैव भो विप्र स्थातव्यं भवता मया ॥ भवद्विना न तिष्ठामि क्षणमात्रं महामुने ॥२२ ॥

हुई जो विद्या है और पूर्व में जो दिया हुआ धन है और पूर्व में दी हुई जो भूमि है वही इस जन्म में मिलती है। विधाता ने माथे पर जो लेख लिख दिया है वही मिलता है। क्या बिना दिये भी कुछ मिलता है? हे द्विज श्रेष्ठ, पूर्व जन्म में आपने या मैंने सत्पात्रों को कभी धन नहीं दिया है। इस देश में अथवा परदेश में दिया हुआ सर्वत्र मिलता है। मगर जगत् पिता, विश्वेश्वर बिना मांगे भी अन्न दे देते हैं। हे विप्रवर, आपको यहीं रहना चाहिये, हे श्रेष्ठ, आपके बिना मैं क्षण भर भी अकेली नहीं रह सकती। जो स्त्री पति से बिछुड़ती है, उसका माता-पिता, भाई-बन्धु, सास-ससुर, अन्य कोई व्यक्ति आदर नहीं करता। बल्कि पति से विहीन स्त्री को लोग दुर्भगा कहते

माता न पिता भ्राता न श्वश्रूः श्वशुरो जनाः॥ न सत्कुर्वन्ति केऽपि स्त्रीं स्वजनाश्च पुरे कुतः॥२३॥ भर्तृहीनां विनिन्दन्ति दुर्भगेति वदन्ति ताम्॥ तस्मादत्र स्थिरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम्॥२४॥ भवतां भाग्ययोगेन प्राप्तिश्चात्र भविष्यति॥ श्रुत्वा तस्यास्तु वचनं स्थितस्तत्र विचक्षणः॥२५॥ तावत्तत्र समायातः कौण्डिन्य मुनिसत्तमः॥ दृष्ट्वा समागतं हृष्टं सुमेधा द्विजसत्तमः॥२६॥ सभार्यः सहसोत्थाय ननाम शिरसाऽसकृत्॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम॥२७॥ यद्दृष्टोऽसि महद्भाग्यादित्युवाच मुनीश्वरम्॥ दत्त्वा सुविष्टरं तस्मै पूजयामास तं द्विजम्॥२८॥ भोजयित्वा विधानेन पप्रच्छ प्रमदोत्तमा॥ विद्वन्केन प्रकारेण दारिद्र्यस्य क्षयो भवेत्॥२९॥ विना दत्तं कथं लभ्येद्धनं विद्यां कुटुम्बिनीम्॥ मां भर्त्ता च

हैं। उसकी निन्दा करते हैं। इसलिये स्थिर मन से यहीं पर रहकर विहार करो, आपके भाग्य में जो लिखा है, वह यहां भी मिल सकता है। भार्या के वचनों को सुनकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण सुमेधा बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ समय पश्चात् वहां कौण्डिन्य नाम के श्रेष्ठ मुनि आये। उन मुनिवर को आया देखकर वह ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। पत्नी सहित सुमेधा ब्राह्मण मुनिराज के समीप गया, दण्डवत प्रणाम करके बोला, मैं धन्य हूं, कृतार्थ हुआ हूं, आज मेरा जन्म सफल हो गया है जो बड़े भाग्य से आपके दर्शन हुए हैं। उस ब्राह्मण ने मुनिवर का सत्कार किया, बैठने को आसन दिया, उन का पूजन किया। फिर विधि पूर्वक भोजन कराकर, वह उत्तम स्त्री

परित्यज्य गन्तुकामोऽद्य वर्त्तते ॥३० ॥ अन्यदेशं परांल्लोकान् याचितुं परपत्तने ॥ रक्षितोऽस्ति मया विद्वन् हेतुभिः कैर्महत्तरैः ॥३१ ॥ नादत्तं लभ्यते किञ्चिदित्युक्त्वा स निवारितः ॥ मम भाग्यान्मुनीन्द्राद्य त्वमत्रैव समागतः ॥३२ ॥ दारिद्र्यं त्वत्प्रसादान्मे शीघ्रं नश्यत्यसंशयम् ॥ केनोपायेन विप्रेन्द्र दारिद्र्यं नश्येत् ध्रुवम् ॥३३ ॥ कथयस्व कृपासिन्धो व्रतं तीर्थं तपादिकम् ॥ श्रुत्वा तस्याः सुशीलाया भाषितं नश्यति मुनिपुंगव ॥३४ ॥ प्रोवाच प्रवरं चित्ते विचार्य व्रतमुत्तमम् ॥ सर्वापापौघशमनं दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥३५ ॥ परमा नाम विख्याता विष्णोस्तिथि-रनुत्तमा ॥ मलिम्लुचे तु या कृष्णा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥३६ ॥ तस्या उपोषणं कृत्वा धनधान्य-युतो भवेत् ॥ विधिना जागरैः साकं गीतनृत्यादिकं चरेत् ॥३७ ॥ धनदेन पुराचीर्णं व्रतमेतत्सुशो-

पूछने लगी, हे मुनिवर किस कार्य के करने से दरिद्रता का नाश हो, यह कहो? पूर्व जन्म के बिना दान से, धन और विद्या को न दिये बिना जो ऐसा घोर संकट आया है, वह कैसे दूर होगा? मेरे पति मुझे छोड़ कर विदेश जाने की इच्छा करते हैं। दूसरे देश में, पराये नगर में मांगने को जाना चाहते हैं, मगर मैंने उन्हें समझा कर रोक रखा है। अदत्त कुछ नहीं मिलता, ऐसा कहकर उन्हें रोका है। हे मुनीन्द्र, मेरे भाग्य से आपका यहां आगमन हुआ है। आपके आशीर्वाद से मेरा दरिद्र सर्वथा दूर हो जायेगा। हे मुनि श्रेष्ठ, कौन से उपाय से मेरा दरिद्र दूर होगा, निश्चय करके कहिये। ऐसा व्रत, तप, तीर्थ कहिये। मुनि श्रेष्ठ ने सुशीला के वचनों को सुनकर मन में उत्तम व्रत का विचार करके और सब पापों के समूह को शान्त करने वाला,

भनम् ॥ तदा तुष्टेन रुद्रेण धनानामधिपः कृतः ॥३८ ॥ हरिश्चन्द्रेण च कृतं धनानामधिपःकृतः ॥ पुनः प्राप्ता प्रिया तेन राज्यं निहतकण्टकम् ॥३९ ॥ तस्मात्कुरु विशालाक्षि व्रतमेतत्सुशोभनम् ॥ विधिना विधियुक्तेन समं जागरणेन च ॥४० ॥ इत्युक्त्वा तद्विधिं सर्वं कथयामास पाण्डव। प्रीत्या परमसंतुष्टस्ततो भक्त्या प्रसादतः ॥४१ ॥ पुनः प्रोवाच तं विप्रं पञ्चरात्रव्रतं शुभम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण भुक्तिमुक्तिश्च प्राप्यते ॥४२ ॥ परमादिवसे प्रातः कृत्वा पौर्वाह्निकं विधिम् ॥ कुर्यात्सुनियमाञ्छक्त्या पञ्चरात्रव्रतादरात् ॥४३ ॥ प्रातः स्नात्वा निराहारो यस्तिष्ठेद्दिन-पञ्चकम् ॥ स यच्छेद्वैष्णवं स्थानं पितृमातृप्रियासमम् ॥४४ ॥ एकाशनस्तु यो भूयाद्दिनानां पञ्चकं नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥४५ ॥ स्नात्वा यो भोजयेद्विप्रं दिनानां पञ्चकं नरः ॥ भोजितं तेन विधिना सदेवासुरमानुषम् ॥४६ ॥ पूर्णकुम्भं सुतो येन यो ददाति

दुःख तथा दारिद्रय का नाश करने वाले व्रत को कहा। मुनि ने कहा, हे विप्रवर, मलमास के कृष्ण पक्ष में परमा नाम की एकादशी आती है जो मुक्ति-भुक्ति को देने वाली है। उसका व्रत करने से मनुष्य धन-धान्य से युक्त हो जाता है। उत्तम सुव्रत को पहले कुबेर ने किया था। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे धन का स्वामी बना दिया था। राजा हरिश्चन्द्र ने किया तो उसे राज्य की प्राप्ति हो गयी। हे विशालाक्षि, ऐसे उत्तम व्रत को विधिपूर्वक करो, रात्रि को जागरण करो। हे राजन्, उस मुनिवर ने उस ब्राह्मण दम्पत्ति को पंचरात्रि व्रत करने का आदेश दिया। प्रातः काल स्नान करके, प्रातःकालका

द्विजातये ॥ दत्तं तेनैव सकलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥४७ ॥ तिल पात्रं तु यो दद्यात्स्नात्वा पञ्चदिनं नरः ॥ स भुक्त्वा विपुलान् भोगान्सूर्यलोके महीयते ॥४८ ॥ ब्रह्मचर्येण यस्तिष्ठेद्दिनानां पञ्चकं नरः ॥ स स्वर्गे भुञ्जते भोगान् स्ववेंश्याभः समं मुदा ॥४९ ॥ एवंविधं व्रतं साध्वि कुरु त्वं पतिना शुभे ॥ धनधान्ययुता भूत्वा स्वर्गं यास्यसि सुव्रते ॥५० ॥ इत्युक्ता सा व्रतं चक्रे कौण्डिन्येन यथोदितम् ॥ भर्त्रा समं भावयुता स्नात्वा मासि मलिम्लुचे ॥५१ ॥ पञ्चरात्रव्रते पूर्णे परायाः प्रियसंयुता ॥ साऽपश्यद्राजभवनादायान्तं नृपनन्दनम् ॥५२ ॥ दत्त्वा नवीनं भवनं भव्यं वस्तु-समन्वितम् ॥ वासयामास विधिना विधिना प्रेरितः स्वयम् ॥५३ ॥ दत्त्वा ग्रामं वृत्तिकरं ब्राह्मणाय

कृत्य करके, पंचरात्रि व्रत को आदर एवं शक्ति के अनुसार करें। प्रातःकाल स्नान करके जो मनुष्य पांच दिन तक निराहार रहता है, वह माता-पिता सहित विष्णुलोक को प्राप्त करता है। जो मनुष्य पांच दिन निरन्तर एक बार भोजन करके रहे, वह सब पापों से छूट कर स्वर्ग लोक में आनन्द से रहता है। जिसने पांच दिन तक स्नान कर ब्राह्मणों को भोजन करवाया उसने विधिपूर्वक देवता, असुर, मनुष्य समेत त्रिलोकी को भोजन करवा दिया। जो मनुष्य जल से भरे हुए कुम्भ को ब्राह्मण को देता है, उसने मानो चराचर सहित ब्रह्माण्ड का दान दिया। जो मनुष्य पांच दिन तक स्नान करके तिल पात्र को देता है, वह सम्पूर्ण भोगों को भोग कर सूर्य लोक में आनन्द करता है। जो मनुष्य पांच दिन तक स्नान करके ब्रह्मचर्य से रहता है, वह स्वर्ग में अप्सराओं के साथ भोगों को भोगता है। हे शुभे, पति समेत ऐसे व्रत को करके धन-धान्य से युक्त होकर स्वर्ग

सुमेधसे ॥ प्रसन्नस्तपसा राजा तं स्तुत्वा स्वगृहं ययौ ॥५४॥ मलिम्लुचस्य मासस्य पराया: परमादरात् ॥ उपोषणात्स कृष्णाया: पञ्चरात्रव्रतेन च ॥५५॥ सर्वपापविनिर्मुक्त: सर्वसौख्य-समन्वित: ॥ भुक्त्वा भोगान् प्रियासार्द्धमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥५६॥ ये करिष्यन्ति मनुजा: पराया व्रतमुत्तमम् ॥ पञ्चरात्रभवं पुण्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥५७॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्या सरितस्तथा ॥ धेनुमुख्यानि दानानि तेन चीर्णानि सर्वथा ॥५८॥ गयाश्राद्धं कृतं तेन पितर: परितोषिता: ॥ व्रतानि तेन चीर्णानि व्रतखण्डोदितानि वै ॥५९॥ द्विपदां ब्राह्मण: श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ देवानां वा.ान: श्रेष्ठस्तथा माता मलिम्लुच: ॥६०॥ मलिम्लुचे पञ्चरात्रं महापापहरं स्मृतम् ॥ पञ्चरात्रे च परमा पद्मिनी पापशोषणी ॥६१॥ साऽप्यशक्तै: प्रकर्तव्या यथाशक्त्या

को प्राप्त करोगी। इस प्रकार वह कौण्डिन्य के कहने पर पति समेत स्नान करके मलमास में व्रत को करने लगी। पांच रात्रि व्रत पूर्ण होने पर राज भवन से आते हुए राजा के पुत्र को देखा। विधाता द्वारा प्रेरित उस राज पुत्र ने सब उपकरणों से युक्त ब्राह्मण को मकान बनाकर दिया। जीविका के उपार्जन के लिये सुमेधा को एक गांव देकर और ब्राह्मण की स्तुति करके वह राजा अपने घर को चला गया। हे राजन्, मलमास के पांच रात्रि व्रत को करने एवं परमा एकादशी का व्रत करने से वह ब्राह्मण दम्पति सब पापों से छूटकर, सब सुखों से युक्त सब भोगों को भोगकर अन्त में पत्नी समेत स्वर्ग को गया। इस परमा एकादशी के सेवन से पितर प्रसन्न हो जाते हैं। हे राजन्, जैसे द्विपदों में वेदपाठी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, चतुष्पादों में गौ श्रेष्ठ

विचक्षणैः ॥ मानुषं जनुरासाद्य न स्नातो यैर्मलिम्लुचः ॥६२॥ ते जन्मघातिनो नूनं नोपोष्य हरिवासरे ॥ चतुराशीति लक्षाणि लभन्ते योनिसङ्कटे ॥६३॥ प्राप्यते मानुषं जन्म दुर्लभं पुण्य-सञ्चयैः ॥ तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन परमाया व्रतं शुभम् ॥६४॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ मलिम्लुचस्य मासस्य परमायाः समुद्भवम् ॥६५॥ तत्सर्वं ते समाख्यातं कुरुष्वावहितो नृप ॥६६॥ माहात्म्यं यदुपतिनोदितं निशम्य तच्चक्रे व्रतमथ स प्रियासमेतः ॥ भुक्त्वाऽसौ दिवि भुवि दुर्लभांश्च भोगान्नीतोऽसौ सुरवरमन्दिरं सुहृष्टः ॥६७॥ येऽप्येवं भुवि मनुजाः मलिम्लुचस्य सुस्नाताः शुभविधिना समाचरन्ति ॥ ते भुक्त्वा दिवि विभवं सुरेन्द्रतुल्यं गच्छेयुस्त्रिभुवनवन्दितस्य गेहम् ॥६८॥

है, देवताओं में इन्द्र हैं, वैसे ही सभी मासों में मलमास श्रेष्ठ है और मलमासों में पापों को हरने वाले पांच दिन और उसमें भी परमा और पद्मा एकादशी उत्तम है। जिसने हरिवासर का व्रत कभी नहीं किया वे चौरासी लाख योनियों में घूमता रहता है। श्री कृष्ण बोले, हे निष्पाप राजन्, मलमास और परमा का जो फल तुमने पूछा वह मैंने कह दिया है। इसलिये हे नृप सावधान होकर व्रत को करो। यदुपति श्री कृष्ण द्वारा ऐसा कहने पर युधिष्ठिर सहित सभी पाण्डवों एवं द्रौपदी ने व्रतों को किया। सब भोगों को भोगकर उन्होंने अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त किया। परमा एकादशी का माहात्म्य सम्पूर्ण हुआ।

एकादशी माहात्म्यं सम्पूर्णम्

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।१ ।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।२ ।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।३ ।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।४ ।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।५ ।।

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६ ॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७ ॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८ ॥

मङ्गलगीतम्

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए। कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥१ ॥
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए। मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥२ ॥
कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए। यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥३ ॥
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए। सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए। त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए। समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥६॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए। श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए। कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥८॥

श्रीजयदेवककवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्। मङ्गलमञ्जुलगीतं जय जय देव हरे ॥९॥

श्रीविष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

किं नु नाम सहस्राणि जपते च पुनः पुनः।
यानि नामानि दिव्यानि तानि चाचक्ष्व केशव ॥१॥

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनम्।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम् ॥२॥

पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालिं हलायुधम्।
गोवर्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३॥

विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायणं हरिम्।
दामोदरं श्रीधरं च वेदाङ्गं गरुडध्वजम्।।४।।
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम्।
गवां कोटिप्रदानस्य अश्वमेधशतस्य च।।५।।
कन्यादानसहस्त्राणां फलं प्राप्नोति मानवः।
अमायां वा पौर्णमास्यामेकादश्यां तथैव च।।६।।
सन्ध्याकाले स्मरेन्नित्यं प्रातःकाले तथैव च।
मध्याह्ने च जपन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।७।।

१. भजन

ऐसी कर कृपा गुरु देव मेरा मन कदे वी डोले न
ऐसा रस रसना बिच भर दे कौड़ा शब्द बी बोले न

दुखियां नूं देख दुखी मन होवे, दुख अपना किसे अगे न रोवे
करके दूजे दा नुकसान कदे सुख अपना होवे न
ऐसी कर कृपा गुरु देव मेरा मन कदे वी डोले न..........

मेरी जीवा हंस बन जाये, सुच्चे मोती चुग-चुग लयावें
विषय विकारां बाली गठरी कोए बांग फरोले न
ऐसी कर कृपा गुरु देव मेरा मन कदे वी डोले न..........

माया पल पल ते भरमाये, काल कराल तों जी घबरावें
सुन्दर रूप तेरा अखियां तो ओहले होवे कदे वी न
ऐसी कर कृपा गुरु देव मेरा मन कदे वी डोले न..........

दास न दास दे सतगुरु ताई डोलन कोलो सदा बचाई
भक्ति प्रेम तेरे दा सौदा इह घट कदे बी तोले न
ऐसी कर कृपा गुरु देव मेरा मन कदे वी डोले न..........

२. भजन

तेरी मुरली की धुन सुन के मैं वृन्दावन चली आई........
मैं वृन्दावन चली आई........

सुना मैंने मोहन प्यारे के तुम मुरली बजाते हो........
तेरे मुरली बजाने को मैं मुरली साथ लाई हूं।
तेरी मुरली की धुन सुन के मैं वृन्दावन चली आई........

सुना मैंने मोहन प्यारे, कि तुम माखन ही खाते हो
तेरे माखन खाने को, मैं माखन साथ लाई हूं।
तेरी मुरली की धुन सुन के मैं वृन्दावन चली आई........

सुना मैंने मोहन प्यारे के तुम गुऊएं चराते हो
तेरे गऊएं चराने को मैं गऊएं साथ लाई हूं।
तेरी मुरली की धुन सुन के मैं वृन्दावन चली आई........

सुना मैंने मोहन प्यारे कि तुम रास रचाते हो
तेरे रास रचाने को मैं सखियां साथ लाई हूं।
तेरी मुरली की धुन सुन के मैं वृन्दावन चली आई........

३. भजन

लुट्टी-लुट्टी बथेरी मौज लुटी जदो दा तेरा लड़ फड़िया..........
जदो दी निहारी दाती तेरी तस्वीर सी
सुध बुध भुल गई मैं अपने शरीर दी
मेरी घर दे कमा तो हो गई, छुट्टी जदो दा तेरा लड़ फड़िया
लुट्टी-लुट्टी बथेरी मौज लुटी..........
अपने बेगानिया ने फेर लईया अखियां
असी ता उन्मीदा दाती तेरे उते सुटिया
जिन्द जान हवाले तेरे किती, जदो दा तेरा लड़ फड़िया
लुट्टी-लुट्टी बथेरी मौज लुटी..........
जदो दा मैं दाती तेरा दर्शन पा लिया
रोग अवलड़ा मैं जिन्दगी नू ला लिया
मैं ता नाम बाली पी लई घुट्टी, जदो दा तेरा लड़ फड़िया
लुट्टी-लुट्टी बथेरी मौज लुटी..........
जदो दी मैं दाती तेरे दर उते आ गई
झोलियां मैं भर एथो सब कुछ लै गई
होई अमीर मैं गरीबीयां तो छुट्टी, जदो दा तेरा लड़ फड़िया
लुट्टी-लुट्टी बथेरी मौज लुटी..........

आरती ओ३म् जय जगदीश हरे!

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे। भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥१॥
जो ध्यावे फलपावे, दुख बिनसे मन का, स्वामी। सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥२॥
मात-पिता तुम मेरे शरण गहूं किसकी, स्वामी। तुम बिन और न दूजा, आस करूंमैं जिसकी ॥३॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी, स्वामी तुम। पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥४॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता, स्वामी तुम। मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥५॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति, स्वामी सब। किस विधि मिलूं दयामय! तुमको मैं कुमति ॥६॥
दीनबन्धु दुख हर्ता, तुम रक्षक मेरे, स्वामी तुम। अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥७॥
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा, स्वामी पाप। श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥८॥
तन, मन, धन जो कुछ है, सब ही है तेरा, स्वामी सब। तेरा तुझको अर्पित, क्या लागे मेरा ॥९॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे। भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे।



